

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178899

UNIVERSAL
LIBRARY

सं

एक रोचक सामाजिक उपन्यास

घ

ष

ले०--विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

प्रकाशक

साहित्य निकेतन—कानपुर

निवेदन

‘सधर्प’ उपन्यास पाठको के सम्मुख है। इसके गुण-दोषों की विवेचना वे स्वयं करेंगे। मुझे केवल इतना निवेदन करना है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन (शिमला अधिवेशन) के प्रस्तावानुसार उर्दू शब्दों के नीचे बिन्दु नहीं लगाया गया। यत्र-तत्र जहाँ उर्दू उच्चारण को पूर्णरूपेण व्यक्त करना अभीष्ट था—केवल वहाँ अपवादतः बिन्दु लगा दिया गया है। ‘ज्योत्सना’ शब्द इस उपन्यास में एक पात्री का नाम है अतः उसे ‘सरलो चारणसाध्य बनाने के लिए अधिकांश ‘ज्योत्सना’ ही लिखा गया है। ऐसा मैंने किसी नियमके अनुसार नहीं, वरन् अपनी इच्छा से जिसे ‘सनक’ भी कहा जा सकता है—किया है।

इनके अतिरिक्त यत्र-तत्र प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। पाठक कृपया उन्हें सुधार लें।

बंगमाली मुहाल
कानपुर

}

निवेदक
विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

* संघर्ष *



(१)

शाम के चार बज चुके थे । विश्वविद्यालय के होस्टल में बड़ी बेहल पहल दिखाई पड़ रही थी । कारण यह था कि जिन विद्यार्थियों की परीक्षाएँ हो चुकी थीं, वे अपने अपने घर जाने की तैयारी कर रहे थे । होस्टल के एक कमरे में एक युवक, जिसकी चयन बीस वर्ष की होगी, अपना असबाब बांधने में व्यस्त था । यह युवक छरहरे बदन का था, इसका वर्ण गौर और मुखाकृति साधारण तथा सुन्दर थी । यह युवक अपना ट्रंक खोले बैठा था कि इसी समय एक दूसरे युवक ने कमरे में प्रवेश किया । यह युवक भी पूर्वोक्त युवक का समवयस्क था । इसका बदन दोहरा, वर्ण गेहुँआ और मुखाकृति यद्यपि बुरी न थी परन्तु तौ भी उस पर एक प्रकार की ऐसी कर्कशता थी जिसके कारण कभी-कभी वह क्रूरपन दिखाई देता था ।

नवांगंतुक युवक ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा—“अस-बाब-वसबाब बांधने से फुरसत मिल गयी या कोई कसर बाकी है ?”

“कहाँ फुरसत मिल गयी, अभी तो बहुत कुछ करना” पहले युवक ने ट्रंक में कपड़े रखते हुए कहा “तुम बड़े ढीले आदमी हो !” यह कहता हुआ नवांगंतुक चारपाई पर बैठ गया। तत्पश्चात् पुनः बोला “आखिर अब तक करते क्या रहे ? मैं तो दो घंटे हुए सब सामान लैस करके फुरसत पा चुका हूँ।

“क्यों नहीं ! आई. सी. एस. के लिए जा रहे हो, उसमें तुम्हारे जैसे फुरतीले आदमियों का ही काम है।”

“यह खूब कही। आई. सी. एस. में न जाना हो तो मुंह पर बैठी हुई मक्खी भी न उड़ावें ?”

“वाह, यह नतीजा आप ने कैसे निकाल लिया ? मेरा तो तात्पर्य केवल इतना ही था कि आप जैसे फुरतीले हैं ऐसे ही फुरतीले आदमियों का आई. सी. एस. में काम है। इतना कहकर युवकने ट्रंक बंद किया। “इस काम से तो फुरसत पाई। अब सिर्फ बिस्तर लपेटना है।” यह कहकर युवक उठ खड़ा हुआ। नवांगंतुक ने कुछ मुस्कराकर पूछा :—“उससे मुलाकात हुई कि नहीं ?” युवक मुखपर कुछ आश्चर्य का भान लाकर बोला “किससे ?”

“क्या, नाम भी बताना पड़ेगा ?” युवक कुछ मुस्कराकर बोला “सचमुच मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझ पाया।”

“परन्तु तुम्हारा चेहरा तो साफ साफ कह रहा है कि तुम मेरा मतसब समझ रहे हो। क्या, बातें हुई ?”

“पहेलियां बुझाते हो क्या ? पहले यह भी मातूम हो कि किससे बातें हुईं।”

“यार, मदन कभी कभी कभी तुम इतना बनने लगते हो जिसका कोई हद नहीं।”

मदन मोहन हँस पड़ा और बोला “अच्छा, शायद तुम्हारा मतलब मिस स्नेहलता से है ?”

“ओहो ! स्नेहलता का नाम बड़ी देर में याद आया । अभी तो वह यहीं मौजूद है । यहां से जाने के बाद क्या दशा होगी ?”

“मेरी समझ में नहीं आता कि आप को इतनी चिन्ता क्यों है ?”

“भाई ! तुम मेरे मित्र हो, इसलिये जिन बातों में तुम्हें दिल-चस्पी है उनके सम्बन्ध में मेरा चिन्ता करना स्वाभाविक ही है ।”

“तो फिलहाल इस बात की चिन्ता कीजिये कि भविष्य में मुझे क्या करना चाहिये ।”

“अरे ! यह कौन बड़ी बात है । इतना तो तुम खुद भी सोच सकते हो ।”

“हां, क्यों नहीं तुम्हारा तो आई. सी. एस. में जाना निश्चित हो चुका है न, इसलिए तुम तो निश्चिन्त हो और उसी निश्चिन्तता का प्रतिबिम्ब तुम्हें अपने चारों ओर दिखाई पड़ता है । मेरे हृदय से पूछो, मुझपर क्या बीत रही है । मेरी समझ में नहीं आता कि यहां से जाकर क्या करना होगा ।”

“अजी, यह कौन बड़ी बात है । जब तक मैं आई. सी. एस. पास करके न लौटूं तब तक कोई नौकरी-वौकरी करके तुम गुजर करना । पीछे मैं तुम्हें अपने पास ही रखूंगा ।”

“यह तुम्हारा प्रेम और स्नेह है” मदन मोहन ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा—

“अच्छा, अब ये बातें बहुत हो चुकी । यह बताओ. स्नेहलता से क्या बात हुई ?”

“कोई खास बात नहीं हुई । मैंने उससे जाकर यह कहा कि मैं आज जा रहा हूं । इस पर उसने खेद प्रकट किया और स्टेशन पर मुझसे मिलने का वादा किया ।”

“बस ! और कोई बात नहीं ? ”

“और, क्या बात होती ?

“तुम्हारे जाने का समाचार सुनकर उसके मुख पर कैसे भाव उत्पन्न हुए थे ? ”

“कुछ उदास तो अवश्य हुई थी । ”

“तब तो ऐसा जान पड़ता है, उसे भी तुम से कुछ प्रेम है । ”

“अब यह तो परमात्मा जाने ! ”

“तो विवाह का प्रश्न कैसे हल होगा ? ”

“तुम भी विचित्र आदमी हो ! अभी विवाह का प्रश्न आहो कैसे सकता है ? अभी दो वर्ष तो उसे बी. ए. पास करने में ही लगेंगे उसके पश्चात् कदाचित् एम. ए. भी पास करे । इसके अतिरिक्त पहले मैं भी तो उससे विवाह करने के योग्य बन लूं । अभी तो मेरा अपना ही कोई ठिकाना नहीं । व्याह करके भी क्या करूं ? वह बड़े घर की बेटी है । मेरे जैसे गरीब के साथ उसका विवाह होना कैसे संभव हो सकता है ? ”

“क्या, बकते हो ? प्रेम-अंधा है । वह गरीब और अमीर का अन्तर नहीं जानता । ”

“होता होगा । मेरा प्रेम तो इतना अंधा नहीं कि वह यह न देख सके कि म्नेहलता से विवाह करके उसे सुखी भी रख सकूंगा या नहीं । ”

“जहां सच्चा प्रेम होता है वहां ऐसी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता । सच्चे प्रेमी सूखे चने खाकर भी सुखी रहते हैं । ”

“परन्तु यहां तो अभी सूखे चनों का भी डौल नहीं है उस्ताद ! पेट की ज्वाला प्रेम से भी अधिक बलवान है । इसके सामने सब का रंग फीका हो जाता है । ”

“इससे प्रकट होता है कि तुम्हारा प्रेम अभी कच्चा है । ”

“भाई, जयनारायण ! गरीबों के हर काम में कच्चापन होता है । पक्के काम तो केवल संपत्तिशालियों के होते हैं ।”

जयनारायण ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया और अपनी रिस्टवाच देखकर कहा “तुम्हारी ट्रेन छूटने में अब केनल दो घंटे का समय रह गया है ।”

“मैं भी तैय्यार हूँ, केवल बिस्तर बांधना है । पांच मिनट में बंध जायगा । तुम्हारी ट्रेन किस समय छूटती है ?”

“मेरी ट्रेन करीब नौ बजे छूटती है ।”

“तब तो तुम मेरे साथ स्टेशन चल सकोगे ।”

“अवश्य चलूंगा । जाता हूँ और शॉच इत्यादि से निवृत्त होकर तैय्यार होता हूँ ।” इतना कहकर जयनारायण चला गया ।

× × × ×

स्टेशन के प्लेटफार्म पर मदनमोहन अपनी ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था । उसके समीप जयनारायण तथा अन्य दो, तीन युवक खड़े हुए थे । सहसा जयनारायण बोल उठा “स्नेहलता अभी तक नहीं आई, क्या कारण है ? उसने वादा तो किया था न ?”

“हां, वादा तो जरूर किया था ।”

जयनारायण ने किंचित व्यंग्यपूर्वक कहा “जब अभी से यह हाल है तो आगे का ईश्वर हां मालिक है ।”

जयनारायण के वाक्य से मदनमोहन मर्माहत हुआ और कुछ लज्जित होता हुआसा बोला “भविष्य में क्या होगा, यह कौन जान सकता है, भाई ।”

“यह ठीक है, परन्तु बहुधा वर्तमान को देखकर भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है ।” मदनमोहन म्लानमुख होकर निहत्तर रहा । इसी समय अन्य युवकों में से एक बोला “लो, देखो वह आ गई ।” सब की दृष्टि युवक के संकेत की ओर गई । सामने से एक युवती आती

हुई दिखाई पड़ी। इसकी वयस १८ वर्ष के लगभग होगी। नख-शिख की सुन्दर थी। उसे देखते ही मदनमोहन का चेहरा खिल उठा। उसने कुछ गर्वपूर्वक जयनारायण से कहा “तुम्हारा अनुमान गलत निकला, उस्ताद !”

जयनारायण कुछ भोंप कर बोला “अनुमान तो था ही, गलत निकल गया।”

इतनी ही देर में वह युवती इन लोगों के निकट आगयी और किञ्चित मुस्करा कर बोली “क्षमा करना मुझे कुछ विलम्ब हो गया। रास्ते में तांगे का घोड़ा कुछ गिगड़ गया था।”

मदनने मृदस्वर में कहा “नहीं, ऐसा कुछ अधिक विलम्ब भी नहीं हुआ। अभी तो मेरी ट्रेन भी नहीं आई। तांगे का घोड़ा बिगड़ने से तुम्हें तो कुछ चोट-बोट नहीं लगी ?”

“नहीं, मुझे चोट नहीं लगी। तांगे वाले ने उसे संभाल लिया।”

अभी तक जयनारायण खूब हँस हँसकर बातें कह रहा था, स्नेहलता के आते ही एक दम गम्भीर हो गया परन्तु वह गम्भीरता स्त्री की उपस्थिति के कारण उत्पन्न हुई शिष्टता की वजह से नहीं बरन रोष की थी। इसी समय ट्रेन के आने की घड़घड़ाहट सुनाई पड़ी।

तीसरे दर्जे में अपना असबाब रखवा कर मदनमोहन पुनः प्लेटफार्म पर आ गया। जयनारायण बोला “देखो भाई, तुम से कब और कहां मुलाकात हो।”

मदनमोहन ने विषाद पूर्ण स्वर में कहा “जीवित रहे तो कभी न कभी भेंट हो ही जायगी। परन्तु आई० सी० एस० हो कर तुम आपने इस गरीब दोस्त को याद रख सकोगे, इसमें मुझे कुछ सन्देह है।”

“अरे, यार ! इन बातों में क्या धरा है। बरसों तुम्हारा हमारा साथ रहा है। तुम मुझे और मैं तुम्हें भूल जाऊँ, यह बिल्कुल असम्भव है।”

“हाँ, लोग भूलते तो नहीं हैं परन्तु बहुधा भूल जाने का बहाना करते हैं।”

“मैं उन आदमियों में नहीं हूँ यह विश्वास रखिये।”

“और मुझे विश्वास है कि तुम भी मुझे न भूलोगी।” मदनने स्नेहलता को सम्बोधन करके कहा।

स्नेहलता ने उत्तर दिया “आशा तो ऐसी ही है।”

स्नेहलता का उत्तर सुनकर जयनारायण कुछ मुस्कराया।

“और आप लोग भी इस गरीब को याद रखेंगे, ऐसी आशा है” मदनमोहन ने अन्य उपस्थित युवकों से कहा।

उब एक साथ ही दृढ़ता पूर्वक बोले “यह असम्भव है कि हम तुम्हें भूल जाँय”

इसी समय गार्ड ने सीटी बजाई। मदनमोहनने सबसे हाथ मिलाया परन्तु स्नेहलता से इतना ही कहा “इस गरीब को भूल न जाना, बस इतनी ही प्रार्थना है।”

इसी समय ईजनने सीटी दी। मदनमोहन लपककर अपने दर्जे में चढ़ गया। गाड़ी चल दी। मदनमोहन खिड़कीसे सर निकालकर प्लेट फार्म की ओर ताकता रहा। प्लेट फार्म अदृश्य हो जाने पर जब वह अपने स्थान पर बैठा तब उसके नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे।

मदनमोहन उचित समय पर घर पहुँचा। मदनमोहन के पिता पण्डित शारदामोहन शर्मा ८०) इय्या मासिक पेंशन पाते थे। शर्मा जी के परिवार में केवल तीन प्राणी थे। एक तो वह स्वयं, दूसरा उनका लड़का मदनमोहन और तीसरी उनकी एक विधवा बहिन। पण्डित शारदामोहन शर्मा अपने एकलौते पुत्र मदनमोहन को प्राणों से अधिक चाहते थे और उनकी यह महत्वाकांक्षा थी कि उच्च शिक्षा प्राप्त करके मदनमोहन किसी अच्छे पद पर आरूढ़ हो। मदनमोहन से प्रथम भेंट होने पर उन्होंने पहला प्रश्न जो किया वह यह था कि परचे कैसे किये ? मदनमोहन ने उत्तर दिया—“परचे तो अपनी समझ में अच्छे ही किये हैं। आगे ईश्वर मालिक है। परन्तु पास तो निश्चय हो जाऊँगा। यह बात दूसरी है कि कोई पोजीशन न मिले।”

शर्मा जी मुंह बना कर बोले—“कम से कम द्वितीय श्रेणी में तुम्हें अवश्य पास होना चाहिये।”

“आशा तो मुझे भी ऐसी ही है” मदनमोहन ने कहा।

शर्मा जी कुछ देर विचार करने के पश्चात् बोले “पास होने के बाद तुम्हारा क्या करने का विचार है ?”

“जो आप कहेंगे, वह करूँगा” मदन ने उत्तर दिया।

“तुम्हारी बचि किस ओर है ?”

“अभी मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ।”

“तो निश्चय कर डालो। परन्तु यह ध्यान रखना कि अब तुम्हें आगे बढ़ने की शक्ति मुझमें नहीं है।”

“वह तो मैं स्वयं जानता हूँ। इतना भी आपने किया बहुत किया।”

शर्मा जी बातसल्य पूर्ण मृदुल स्वर में बोले “इतनी शिक्षा दिलाना मेरा कर्तव्य था । परन्तु अब आगे तुम्हें अपना मार्ग स्वयं निश्चित करना चाहिये ।”

“नौकरी के सिवाय और कौन मार्ग हो सकता है । यदि आपके प्रयत्न से कोई सरकारी जगह मिल जाय तो बड़ी अच्छी बात है ।”

“मैं तो प्रयत्न करूँगा ही परन्तु तुम भी तलाश में रहो ।”

“मैं तो प्राण प्रण से चेष्टा करूँगा” मदनमोहन ने आवेश के साथ कहा ।

“अभी तो फिलहाल तुम आराम करो । परीक्षा फल मालूम हो जाने के बाद प्रयत्न किया जायगा । क्योंकि जब तक यह निश्चय न हो जाय कि तुम पास हो गये हो तब तक प्रयत्न भी कैसे किया जा सकता है ।”

“पास तो मैं हो ही जाऊँगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।”

“ठीक है परन्तु प्रमाण पत्र तो दिखाना ही पड़ेगा । बिना प्रमाण पत्र दिखाये नौकरी कैसे मिल सकेगी ?”

“बेशक ! आपका कथन ठीक है ।”

परन्तु मोहन को चैन कहाँ था । उसे तो यह धुन सवार थी कि किसी प्रकार वह शीघ्र से शीघ्र इस योग्य बन सके कि स्नेहलता के माता पिता को उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने में कोई आपत्ति न हो और विवाह होने के पश्चात् वह स्नेहलता का भरण पोषण भली भाँति कर सके । अतएव वह घर पहुँचने के दूसरे दिन से ही वह इस बात का पता लगाने लगा कि निकट भविष्य में कहीं कोई जगह खाली होनेवाली है या नहीं । इस प्रकार एक मास व्यतीत हो गया । उधर ज्यों परीक्षा फल प्रकट होने का समय निकट आता जाता था त्यों त्यों मदनमोहन की उत्सुकता तथा अधीरता बढ़ती जाती थी । यद्यपि अपने पास होने का उसे पूर्ण विश्वास था परन्तु तब भी भाग्य का फैसला परीक्षकों के हाथ में

होने के कारण वह बिलकुल ही निश्चिन्त नहीं था और इसके अतिरिक्त उसे सब से बड़ी उत्सुकता इस बात के जानने की थी कि वह किस श्रेणी में पास होता है। क्योंकि प्रथम या द्वितीय श्रेणी में पास होने से भावी उन्नति की अच्छी आशा रहती है।

एक दिन मदनमोहन घर की ओर आ रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक रास्ते चलते व्यक्ति पर पड़ी। उसे देखते ही मदनमोहन ने अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक पुकारा “दीनानाथ ! दीनानाथ !” दीनानाथ ने घूम कर देखा और मदनमोहन पर दृष्टि पड़ते ही उसका चेहरा खिल उठा। उसने कुछ विस्मय के साथ कहा ‘अरे, तुम हो !”

मदनमोहन बोला “हाँ, मैं ही हूँ। क्यों, तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ ?” यह कहते हुए मदनमोहन दीनानाथ के निकट पहुँच गया। दोनों ने प्रेमपूर्वक हाथ मिलाया। दीनानाथ ने कहा “मुझे आशा न थी कि तुम यहाँ मौजूद होगे।”

“क्यों” मदन ने प्रश्न किया। “मेरा ख्याल था कि अभी कदाचित्त न आये हो।” दीनानाथ ने कहा।

“मुझे आये तो एक मास से अधिक हो गया, तुम कब आये ?”

“मुझे आये दो तीन दिन हुए।”

“वहीं शक्कर मिल में हो न !”

“हाँ, वहीं हूँ।”

“उसी पद पर।”

“हां, उसी पद पर।”

“मुझे भी नौकरी की तलाश है।”

“पढ़ना छोड़ दिया, क्या ?”

“हां, छोड़ना ही पड़ेगा। बी० ए० की परीक्षा दे आया हूँ। पास हो जाने की पूरी आशा है। आगे पढ़ने की न सामर्थ्य है और न इच्छा है। अब तो चार पैसे कमाने का प्रबन्ध होना चाहिये।”

“तुमने रसायनशास्त्र पढ़ा है ?”

“नहीं मैं तो कालेज में इतिहास लिये हुए था ।”

“यदि रसायन शास्त्र पढ़ा होता तो मैं तुम्हारे लिये शक्कर मिल में प्रयत्न करता । एक शक्कर मिल में रासायनिक की जगह खाली है ।”

“कितने वेतन की जगह है ?”

“आरम्भ में तो सौ, सवासौ मिलेंगे । बाद को तरक्की होगी ।

“जगह तो अच्छी थी” मदनमोहन लालायित्व प्रदर्शन करते हुए बोला ।

“हां परन्तु तुम तो रसायन शास्त्र जानते नहीं हो ।”

“यही तो खराबी है । ऐसा जानता तो मैं रसायनशास्त्र जरूर पढ़ता । और कहीं कोई जगह हो तो बतलाना ।”

“अवश्य बतलाऊंगा ।”

“अभी यहाँ कितने दिन रहोगे ?”

“दस ग्यारह रोज रहूँगा । पन्द्रह दिन की छुट्टी लाया था । ; उसमें तीन रोज व्यतीत हो चुके ।”

“अच्छा, तो मेरा खयाल रखना ।”

“अवश्य रखूँगा ।”

“अभी जब तक यहाँ रहोगे मुलाकात होती ही रहेगी ।

“निश्चय”

“किसी रोज तुम्हारे घर पर आकर पिताजी के दर्शन करूँगा । उनसे भेंट हुए बहुत दिन हो गये । अच्छे तो हैं ?”

“हां, अच्छे हैं परन्तु शिथिल बहुत हो गये हैं ।”

“बृद्धावस्था है न, इसी से ।”

दीनानाथ से विदा हो कर मदनमोहन घर पहुँचा । घर के अन्दर प्रवेश करते ही पहले बुआ से साक्षात् हुआ । वह उस समय कुछ खबरायी हुई थी । मदन को देखते ही बोली “मदन ! भाईजी की तबि-

यत बड़ी खराब है। तीन चार दस्त हुए हैं बहुत शिथिल हो गये। जल्दी किसी डाक्टर को लाओ।”

मदन मोहन कुछ घबराकर पिताजी की चार पाई के निकट पहुँचा और पिता को आंखें बन्द किये हुए पड़े देखा। उनका चेहरा एक दम बदल गया था। ऐसा प्रतीत होता था मानो महीनों के बीमार हों। मदनमोहन ने किंचित व्याकुल हो कर पुकारा “पिताजी ! पिताजी !” शर्माजी ने धीरे से आंखें खोली मानो आंखें खोलने में उन्हें कुछ परिश्रम पड़ता था। मदनने पूछा “कैसा जी है ? क्या बात है ?”

शर्मा जी क्षीण स्वर में बोले “कुछ नहीं। दस्तों के कारण कुछ कमजोरी आगयी है। पैरों में ऐंठन हो रही है, पेट में सूइयां मी चुभ रही हैं।

“घबराइये नहीं। अभी सब ठीक हो जायगा। मैं अभी जाके डाक्टर लाता हूँ।” इतना कहकर मदन शीघ्रतापूर्वक घर से बाहर निकला।

बीस मिनट के अन्दर मदन डाक्टर को लेकर घर पहुँचा। डाक्टरने शर्माजी की परीक्षा करके मदन से अंग्रेजी में कहा “तुम्हारे पिताको हैजा हुआ है और मेरा विचार यह है कि इन्हें अब खतम हुआ ही समझो।”

मदनमोहन नेत्र विस्फारित करके बोला “क्या कहते हैं ! अभी घंटा डेढ़ घंटा हुआ मैं इन्हें अच्छा भला छोड़ गया था।”

“इससे क्या हुआ। मैंने हट्टे-कट्टे जवानों को आध घंटे में खतम होते देखा है। अच्छा, इन्हें पाखाना कितने बार और किस रंग का हुआ ?”

“मुझे तो मालूम नहीं। मैं बुआजी से पूछ कर बताता हूँ।”

अपनी बुआ से पूछकर मदनमोहन ने डाक्टर से बताया “छः सात मर्तबे पाखाना हुआ है। बिलकुल पतला और सफेद रङ्ग का।”

डाक्टर ने मुँह बनाकर कहा “बड़ा तीव्र हैजा है। आशा तो

बहुत कम है परन्तु फिर भी मैं प्रयत्न करता हूँ।” यह कहकर डाक्टर ने अपना हेंडबैग खोला और आवश्यक सामग्री निकाल कर एक इंजेक्शन लगाया। साथ ही एक नुस्खा लिखकर दिया और कहा “इसे बनवा लाइये और पन्द्रह पन्द्रह मिनिट पर पिलाइये।”

डाक्टर फीस लेकर बिदा हुआ। मदनमोहन आध घंटे के अन्दर दवा ले आया। परन्तु दवा की दो ही खुराकें पिलाई गई थी और तीसरी खुराक पिलाने का समय हो गया था कि उसी समय शर्माजी इस असार संसार को छोड़कर स्वर्गधाम सिधार गये।



(३)

पिता की मृत्यु से मदनमोहन पर वज्रपात सा हुआ। क्योंकि उसके पिता को जो पेनशन मिलती थी उसी से सब का निर्वाह होता था। पिता की मृत्यु से पेनशन द्वारा जो आय होती थी वह बन्द हो गई। मदनमोहन घबरा उठा। पिता ने इतनी सम्पत्ति भी न छोड़ी जिससे कुछ भी स्थाई आय होती। पिता के सन्दूक से केवल चार सौ रुपया नकद और थोड़ा सोने-चांदी का जेवर निकला। मदनमोहन को यह आशा न थी कि उसके पिता के पास इतनी थोड़ी सम्पत्ति निकलेगी। उसने अपनी बुझा से कहा कि “क्या पिता जी के पास कुल इतना ही रुपया था ?”

बुझा ने उत्तर दिया “मुझे तो पता नहीं, इतना ही होगा। और होता तो कहाँ चला जाता ?”

“बैंक या डाकखाने में तो वह रखते नहीं थे ?”

“यह भी मैं नहीं जानती।”

“बैंक या डाकखाने में कुछ होता तो उसकी पास बुक भी अवश्य होती। इसके अलावा और सन्दूक तो नहीं है ?”

“और कोई सन्दूक तो नहीं है।”

“गहना भी कम निकला ! मेरी माता जी का काफी गहना था। वह सब कहाँ चला गया ?”

“मैं क्या जानूँ, कहाँ चला गया। वही सब धरते-उठाते थे।”

मदनमोहन चुप हो गया। फिर उसके बाद उसने अपनी बुझासे कोई बातचीत नहीं की। एक बार उसके हृदय में यह शंका भी उठी कि कहीं उसकी बुझा ने तो कुछ गड़बड़ नहीं किया ? परन्तु फिर उसने सोचा कि बुझा गड़बड़ करके क्या करेगी। उन्हें तो केवल रोटी कपड़े से मतलब है।

पिता की क्रिया कर्म करने के पश्चात् उसके पास केवल दो सौ रुपया और गहना बचा । गहना हजार, आठ सौ से अधिक का नहीं था । गहना तो उसने अपनी बुआ को सौंप दिया और रुपये अपने पास रख लिये ।

पिता की मृत्यु के पन्द्रह दिवस पश्चात् उसका परीक्षा फल प्रकाशित हुआ । वह द्वितीय श्रेणी में पास हुआ । अब उसे शीघ्र नौकरी प्राप्त करने की चिन्ता हुई । क्योंकि केवल दो सौ रुपये से कितने दिनों गुजारा हो सकता था । उसने पन्द्रह दिन खूब दौड़ धूप की, अनेक जगह अर्जियाँ भेजी परन्तु कहीं स्थान खाली न मिला । उसका चित्त बहुत घबराने लगा । उसकी उमंगे, उसकी महत्वाकांक्षाएँ निराशा की प्रचण्ड ज्वाला में भस्मीभूत होने लगी । एक दिन रात को अपनी चारपाई पर पड़े पड़े सोचने लगा कि स्नेहलता से विवाह होना अब असम्भव है । क्या सोचा था और क्या हो गया । बड़ी आशा थी, दो चार वर्ष में मैं उससे विवाह करने योग्य हो जाऊँगा । और यदि पिता जी जीवित रहते तो ऐसा होना संभव भी था परन्तु अब तो कोई आशा नहीं । यदि दो चार महीने यही दशा रही तो भोजनों तक के लाले पड़ जायेंगे । क्या यही उच्च शिक्षा है ? क्या, इसी परिणामके लिये माता पिता अपनी गाढ़ी कमाईका हजारों रुपया खर्च करके अपने लड़कों को शिक्षा दिलाते हैं ? मेरी अपेक्षा तो मजदूर ही कहीं अच्छे हैं जो सुबह से शाम तक मजदूरी करके अपना पेट भर लेते हैं । मुझसे तो मजदूरी भी नहीं हो सकती । भला, स्नेहलता मुझ जैसे कंगाल से विवाह क्यों करने लगी, यद्यपि उसे मुझसे प्रेम है । जिस समय मैं उससे विदा मांग रहा था उस समय वह कितनी उदास हो गयी थी ! उसे उदास होने की क्या आवश्यकता थी ? मेरे जैसे वहाँ सैकड़ों थे जो उसकी एक एक मन्द मुस्कान पर अपना सर्वस्व उसके चरणों में अर्पण करने के लिये लालायित घूमते थे । ऐसी दशा में मेरे लिये उदास होना, क्या अर्थ रखता है ? यही कि मुझसे उसे प्रेम अवश्य है । यदि प्रेम है तो

इसके अर्थ यह नहीं है कि वह प्रत्येक दशा में मुझसे विवाह करने के लिए उद्यत हो जाय और यदि वह उद्यत हो भी जाय तब भी मैं स्वयं उससे विवाह करने का विचार भी नहीं ला सकता। किस बिरते पर विवाह करने की आशा बांधू। उसे गरीबी और दरिद्रता में फँसाने के लिए ! वह मेरी प्रतीक्षा तो अवश्य ही करेगी। उसने बातों बातों में मुझ पर यह प्रकट कर दिया कि वह अभी कम से कम पांच वर्ष तक विवाह न करेगी। मुझ पर यह बात प्रकट करने की क्या आवश्यकता थी ? और किसी से तो उसने ऐसी बात नहीं कही। इसमें अवश्य कुछ रहस्य है। और यदि कोई रहस्य हो सकता है तो वह यही हो सकता है कि उसने स्पष्ट न कह कर इस प्रकार यह बात प्रकट की कि कम से कम पांच वर्ष तक वह मेरी प्रतीक्षा करेगी। इस बीच में यदि मैं अपने को उससे विवाह करने योग्य बना सका तो.....परन्तु यह सब हवाई किले हैं। यहां तो अभी भोजनों का ठिकाना भी नहीं। जिसमें अपना उदर पोषण करने की भी योग्यता न हो, वह आगे क्या कर सकता है ? “मदनमोहन इसी प्रकार की बातें सोचता रहा।”

दूसरे दिन प्रातःकाल एक व्यक्ति मदनमोहन के मकान पर आया और उससे बोला “मैंने सुना है कि आप नौकरी की तलाश में हैं।”

मदनमोहन ने उत्तर दिया “हां, आपने ठीक सुना। क्या, कोई जगह खाली है ?”

“हां, नेशनल बैंक में ६०) मासिक का एक स्थान खाली है ?”

“काम क्या करना होगा ?” मदन ने पूछा।

“यही हिसाब किताब रखने का, बैंक में और क्या हो सकता है।”

मदनमोहन ने कुछ क्षण तक मोच कर कहा “मैं उस जगह पर काम करने लिए तैयार हूँ।”

“तो मैं आपके लिए कोशिश करूँ।”

“आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप कोशिश कर दें।”

“तो आप एक अर्जा लिख दें।”

“किसके नाम लिखे?”

“मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर के नाम लिख दीजिये।”

मदनमोहन ने उसी समय अर्जा लिख कर दे दी। वह व्यक्ति अर्जा जब में रखता हुआ बोला ‘यदि हम इसमें कुछ खर्च की आवश्यकता पड़ी तो आप करेंगे?’

“खर्च कैसा?” मदन ने पूछा।

“बात यह है कि खजान्ची बड़ा रिश्वतखोर है। बिना कुछ दक्षिणा लिये वह रिकमेण्ड न करेगा।”

मदनमोहन ने एक क्षण विचार करके कहा “रिश्वत देना तो मुझे पसन्द नहीं है?”

“बेशक रिश्वत देना बुरी बात है। परन्तु जनाब, आजकल इसके बिना काम नहीं चलता।”

“यह ठीक है, परन्तु मेरी आत्मा इसे स्वीकार नहीं करती।”

“तब तो आप को स्थान मिलना कठिन है। खजान्ची बिना कुछ लिये बात भी नहीं करेगा।”

मदन विचार में पड़ गया। उसके अन्तःकरण और मस्तिष्क में खीचातानी होने लगी। मस्तिष्क कहता था यदि कुछ देने से यह स्थान मिलता है तो क्या हर्ज है। जब बिना दिये काम ही नहीं चल सकता तब इसमें कोई बात ही नहीं है। अन्तःकरण कहता था ‘नहीं, अपने स्वार्थ के लिए ऐसा करना पाप ही कहा जायगा।’ विपद और विवशता सिद्धांत और नीति के बंधन ढीले कर देती है। अतएव मदनमोहन ने भी यही निश्चय किया कि इस समय किसी को कुछ देकर अपना काम निकाल लेने में कोई दुष्कार्य नहीं। यह सोच कर मदन ने कहा “अच्छी बात है। यदि कुछ देना पड़ेगा तो दे दूंगा। परन्तु पहिले यह मालूम हो कि कितना देना पड़ेगा।”

“मैं कम से कम के लिए कोशिश करूँगा।”

“फिर भी कुछ अन्दाज तो मिलना ही चाहिये जिससे कि मैं यह जान सकूँ कि मैं इतना दे सकूँगा या नहीं । ”

“अधिक से अधिक ५०) और कमसे कम २५) । ”

“५०) मैं नहीं दे सकूँगा । हाँ, २५) दे सकता हूँ । ”

“अच्छी बात है । मैं कोशिश करूँगा कि आप को २५) से अधिक न देना पड़े । ” यह कहकर वह व्यक्ति विदा होने लगा । मदन-मोहन बोल उठा “ हाँ आप का शुभ नाम पूछना मैं भूल ही गया । ”

“मेरा नाम हरस्वरूप है । आप मुझे नहीं जानते हैं परन्तु आप के पिता मुझसे भली भाँति परिचित थे । ”

“आप की बड़ी कृपा है जो आप मेरे लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं । ”

“इसमें कष्ट की कौन बात है । यह तो मनुष्य का धर्म है, कि समय पड़ने पर दूसरों की सहायता करें । ” इतना कहकर वह व्यक्ति चला गया ।

दो दिन पश्चात् वह पुनः मदनमोहन से मिलकर बोला “ भाई ३०) पर मामला तय हो गया । तुमसे २५) कहे थे परन्तु ५) मैंने अपनी ओर से बढ़ा दिये । वह दुष्ट ४०) से कम पर किसी तरह राजी ही नहीं होता था परन्तु ३०) पर फैसला हो गया । मैंने भी मोचा जैसे २५) वैसे ही ३०), कोई विशेष अन्तर नहीं है । जगह अच्छी है और अभी तरकों का भी बहुत गुञ्जाइश है । ”

“अच्छी बात है, मैं ३०) दे दूँगा । ”

“रुपये तो आज ही देने पड़ेंगे, यदि आप आज ही रुपये दे देंगे तो आज ही मंजूरी मिल जायगी । कल से आप काम शुरू कर दीजिये । ”

“तो मैं रुपया लेकर आपके साथ चलूँ ? ”

“आप चलेंगे तो मामला बिगड़ जायगा । आपके सामने तो वह रिश्वत का नाम सुनकर ही आग बगुला हो जायगा । रिश्वत लेने

वाले प्रत्यक्ष रूप से नहीं लेंगे। यह काम सदैव किसी मध्यस्थ के द्वारा होता है। ”

मदनमोहन मुस्कराकर बोला “ठोक है, मैं समझ गया। ”

“मैं शाम को आऊँगा तब आप मेरे साथ खजांची के यहाँ चालियेगा। वह आपसे कह देंगे आप की अर्जा मंजूर हो गयी कल से काम शुरू कीजियेगा। ”

मदन ने कहा “अच्छी बात है। आज शाम को किस समय आवेंगे ? ”

“मेरे संभवतः ७-८ के बीच में आऊँगा। ”

“तो उस समय मैं घर पर उपस्थित रहूँगा। ”

हरस्वरूप रुपये लेकर चला गया। मदन ने रात के नौ बजे तक उसकी प्रतीक्षा की किन्तु वह नहीं आया। मदनने सोचा, कल आवेगा। परन्तु वह दूसरे दिन भी नहीं आया। मदन ने तीसरे दिन पर आशा लगाई परन्तु जब तीसरे दिन भी उसके दर्शन नहीं हुए तब मदन को चिन्ता हुई कि क्या मामला है।

चौथे दिन मदन खजांची में उनके घर पर मिला। खजांची से उगने पूछा “मैंने आप के यहाँ एक अर्जा दी थी। ”

खजांची मृकुटो चढ़ाकर पूछा “कैसी अर्जा ! ”

“आप के बेक में एक स्थान खाली है उसी के लिये अर्जा दी थी। ”

“मेरे बैंक में तो कोई स्थान खाली नहीं। ”

मदन का कलेजा धड़कने लगा। उसने घबराकर पूछा “क्या मेरी अर्जा आपको नहीं मिली ? ”

“मुझे तो कोई भी अर्जा नहीं मिली। ”

“आपको पूर्ण रूप से निश्चय है कि आपको कोई अर्जा नहीं मिली ? ”

“मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरे यहाँ कोई जगह ही खाली नहीं है।”

अब मर्ज समझ गया कि वह ठगा गया, परन्तु खजौंची के सम्मुख उससे यह बात प्रकट नहीं की। अपनी बेवकूफी को दूसरो पर प्रकट करके उपहासपात्र बनना उसने उचित नहीं समझा, चुपचाप उठकर चला आया।

उपर्युक्त घटना से मदनमोहन को बड़ी निराशा हुई। उसने समझ लिया कि यहाँ नौकरी मिलना कठिन है। अतएव कहीं बाहर चलकर नौकरी की तलाश करना चाहिये। इस विचार से उसने एक दिन अपनी बुआ से कहा “बुआ, यहाँ तो कहीं नौकरी लगती नहीं। जान पड़ता है, बिना बाहर जाये काम न चलेगा।”

बुआ बोली “तू बाहर जायगा तो मैं यहाँ किसके भरोसे रहूँगी ?”

“यही तो सोचना है। यदि तुम्हारी सलाह हो तो मैं तुम्हारे जेठ को चिट्ठी लिखूँ।”

“क्या लिखेगा ?”

“यही कि वह तुम्हें ले जाँय और जब तक मेरा कहीं ठिकाना न हो तब तक तुम्हें अपने यहाँ रख लें।”

“मैं वहाँ न जाऊँगी” बुआ ने दृढ़तापूर्वक कहा।

“क्यों” मदन ने आश्चर्य से पूछा !

“मेरी उनकी एक छिन भर के लिए भी न पड़ेगी। जो पटती तो मैं वहीं न रहती।”

यह सुनकर मदनमोहन विचारमग्न हो गया। कुछ देर पश्चात् बोला “यह तो आपत्काल है, बुआजी। कुछ दिन वहीं व्यतीत कर लो फिर तो मैं बुला ही लूँगा।”

“चाहे जो कुछ हो, मैं वहाँ न जाऊँगी।”

“तो फिर और ठिकाना ही कहाँ है ?”

अब बुआ भी सोच में पड़ गयी। कुछ क्षणों तक दोनों मौन धारण किये बैठे रहे। सहसा बुआ बोल उठी “तुम्हें अधिक से अधिक कितने दिनों तक बाहर रहना है ?”

“महीना भर तो लग ही जायगा।”

“तो महीना भर मैं यही अकेली रहकर काट लूँगी। महीना भर का खाने पीने का सामान इकट्ठा हो जाय तो फिर मुझे और चाहिये ही क्या ? यही पड़ी रामभजन करूँगी।”

मदन प्रसन्न होकर बोला “तब तो बड़ी अच्छी बात है। मैं चंद्रशंखर से कह दूँगा, वह तुम्हारी खोज खबर लेता रहेगा।”

“तो बस ठीक है, फिर मुझे कहीं जाने की क्या जरूरत है ?”

इस प्रकार बुआ की ओर से निश्चिन्त होने पर मदनमोहन ने बाहर जाने का निश्चय कर लिया। परन्तु अब यह प्रश्न उठा, कि जाय तो कहाँ जाय ! निरुद्देश्य मारे मारे फिरने में तो समय और पैसा दोनों बर्हेंगे। बहुत कुछ सोच-विचार करने पर भी मदनमोहन कोई निर्दिष्ट स्थान निश्चय न कर सका। परन्तु इतना उसने अवश्य किया कि अपने दो चार मित्रों को, जो बाहर रहते थे पत्र लिखे और अंगरेजी दैनिक पत्रों के ‘आवश्यकता है’ स्तम्भों को देखना आरम्भ किया।

एक दिन उसने एक दैनिक पत्र में देखा। उसमें लिखा था ‘आवश्यकता है एक ऐसे ग्रेजुएट की जो एक धनाढ्य परिवार के दो बालकों को शिक्षा दे सके। प्रार्थना पत्र प्रमाणपत्रों के साथ आना चाहिये। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। रहने का स्थान मुफ्त।” मदनमोहन ने इस विज्ञापन को देखते ही समझ लिया कि यदि प्रयत्न किया जाय तो यह स्थान उसे प्राप्त हो सकेगा। अतएव उसने उसी दिन विज्ञापन में दिये हुए पते पर प्रार्थना पत्र भेज दिया और बड़ी उत्सुकतापूर्वक उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

दस दिन के पश्चात् प्रार्थना पत्र का उत्तर आया। उत्तर इस प्रकार था :—“आप का प्रार्थना पत्र स्वीकृत हुआ। फिलहाल आप को ६०) मासिक वेतन दिया जायगा। यदि आवश्यक समझा जायगा तो कार्य देखकर वेतन में वृद्धि भी की जा सकेगी। यदि स्वीकार हो तो

एक सप्ताह के अन्दर आजाइये । हस्ताक्षर—दलजीतसिंह बी० ए० एल० एल० बी० प्राइवेट सेक्रेटरी, राजा ठाकुर सुलोचन सिंह, तालुकेदार । ”

यह पत्र पाकर मदनमोहन को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने अपनी बुआ से कहा “लो, बुआजी ! नौकरी मुझे मिल गयी । इसी सप्ताह के अन्दर वहाँ पहुँच जाना है । ”

बुआ ने हँप प्रकट करते हुए कहा “तो बस, मेरा प्रबंध कर ले और तू चलाजा । ”

मदनमोहन ने दो तीन दिन के अन्दर अपनी बुआ के लिए सब प्रबंध ठीक कर दिया और स्वयं अपने निदिष्ट स्थान के लिए रवाना हुआ ।

शाम को पाँच बजे के लगभग मदनमोहन तालुकेदार साहब की कोठी के सामने एक्के पर ने उतरा । असबाब को एक्के पर ही छोड़कर वह कोठी के बरामदे में पहुँचा । बरामदे में चपरासी बैठा था । उससे मदनमोहन ने पूछा—

“प्राइवेट सेक्रेटरी साहब कहाँ हैं ? ” चपरासी ने मदन को सिर से पैर तक ध्यानपूर्वक देखा, तत्पश्चात् पूछा “क्या काम है ? ”

“मैं मास्टर हूँ । लड़के पढ़ाने के लिये बुलाया गया हूँ । ”

“अच्छा, आप मास्टर साहब हैं ? ” यह कहकर चपरासी खड़ा हो गया ।

“आप का असबाब कहाँ है ? ” चपरासी ने पूछा—

“बाहर एक्के पर है । ”

चपरासी ने आवाज दी ‘मँहँगू । ’ उसी समय एक आदमी आया । उससे चपरासी ने कहा “देखो, मास्टर साहब का असबाब एक्के पर से उतारके मेहमानखाने के पूरबवाले कमरे में रखो । ”

मँहँगू चला गया । चपरासी मदन से बोला ‘चलिये पहले अपने ठहरने की जगह देख लीजिये’ यह कहकर चपरासी चला । उसके पीछे १

मदन भी। कोठी से थोड़ी दूर पर एक मेहमानखाना था। इस मेहमान-खाने में दस कमरे थे प्रत्येक कमरे के साथ एक स्नानागार और पाखाना था। चपरासी ने इन्हीं में से एक कमरे को खोला। मदनमोहन ने देखा, इस कमरे में आवश्यक सामग्री पहले से प्रस्तुत है। भूमिपर एक दरी बिछी हुई थी। एक ओर एक मेज जिसमें कि आइना भी लगा हुआ था और दो कुर्सियाँ रखी थीं। दूसरी ओर एक पलङ्ग रखा था। चपरासी ने कहा “यह आप का कमरा है। इसी कमरे के पीछे टट्टी है और एक तरफ गुसलखाना है। आप कपड़े वपड़े उतारिये तब तक मैं जाकर सिकतर साहब को आप के आने की खबर देता हूँ।” इतना कहकर चपरासी चला गया। इसी समय मँहगू असबाब ले आया। मदन ने असबाब रखवाकर जेब से कुछ पैसे निकाले और मँहगू की ओर बढ़ाते हुए कहा “ये पैसे एक्केवाले को दे देना।”

मँहगू बोला “किराया तो दिला दिया गया।”

मदनमोहन ने मन ही मन तालुकेदार साहब के सुप्रबंध की प्रशंसा की। मँहगू के चले जाने पर मदन ने कपड़े उतार कर खूँटी पर टाँगे और हाथ मुह धोने के लिए स्नानागार में प्रवेश किया। स्नानागार में उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि स्नानागार में पाइप लगा हुआ है। वह सोचने लगा ‘यहाँ देहात में पाइप कहाँ से आया!’ फिर यह सोचकर कि ठाकुर साहब का प्राइवेट वाटर वर्क्स होगा—उसने अपनी शक्का का समाधान किया। स्नानागार में तेल साबुन और तौलिया भी रखा हुआ था। पानी की कमी न देखकर मदनमोहन ने स्नान कर डाला और कपड़े बदल कर ठाकुर साहब से भेंट करने के लिये तैयार हो गया।

थोड़ी देर में एक नौकर ने एक तश्तरी में थोड़ी मिठाई तथा नमकीन और पानी का ग्लास लाकर मेज पर रखा और मदनमोहन से कहा—“जलपान कर लीजिए!”

मदनमोहन किञ्चित् सकुचाते हुए बोले—“जलपान की तो ऐसी कुछ आवश्यकता नहीं थी।”

नौकर बोला—“मकर करके आ रहे हैं, प्यास तो लगी ही होगी।”

“रास्ते में रेल पर खाना-पीता आया हूँ।”

“खैर थोड़ा तो हर्ड है, खा लीजिए!” कहकर नौकर चला गया।”

मदनमोहन ने जल-पान किया तत्पश्चात् बैठ कर इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि तान्त्रिकेदार साहब बुलवायेंगे।

प्रतीक्षा करते करते आध घन्टा हो गया; परन्तु कोई सनका तक नहीं। मदनमोहन का जी ऊबने लगा। वह उठकर कमरे के बाहर आया और बरामदे में टहलने लगा। बरामदे से कोठी दिखाई पड़ती थी। कोठी में भी नीरवता छाई हुई थी। कभी कभी कोई नौकर इधर से उधर आता-जाता दिखाई पड़ जाता था।

सहसा मोटरकार की घण्टी सुनाई पड़ी। एक बड़ी मोटरकार आकर कोठी के “पोर्च” में खड़ी हो गई। एक नौकर ने दौड़कर गाड़ी का द्वार खोला। मोटर से एक व्यक्ति तथा दो बच्चे उतर कर सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। नौकर ने लपककर एक कमरे के द्वार की निक उठाई, तीनों व्यक्ति अन्दर चले गये। इसके पश्चात् मोटर एक ओर चली गई और फिर वही सन्नाटा। मदनमोहन सोचने लगा—“यह एकांतवास खल जायगा।। यहाँ तो बात करने तक को कोई आदमी नहीं, न कुछ पढ़ने की सामग्री है—अन्यथा उर्सा से समय काटा जा सकता।” थोड़ी देर टहल कर वह फिर कमरे के अन्दर चला आया।

कमरे के अन्दर आये थोड़ी ही देर हुई थी कि वही व्यक्ति जो जलपान लाया था आया और बोला—“चलिये ! सिकतर साहब आपको याद कर रहे हैं।”

मदनमोहन ने प्राण पाये। जल्दी से उठकर बोले—“चलो ! मैं तो बड़ी देर से इन्तज़ार कर रहा था।”

दोनों कोठी की ओर चले । मदनमोहन ने पूछा—“यह मोटर पर कौन आया ? ”

नौकर बोला—“सरकार थे ? घूमने गये थे ! ”

“सरकार से कब मुलाकात होगी ?” मदनमोहन ने पूछा ।

“आज ही रात तक हो जायगी ।”

नौकर कोठी के एक बगली कमरे में मदनमोहन को ले गया । कमरे के अन्दर प्रविष्ट होते ही मदनमोहन ने देखा कि कमरा आफिस की तरह सजा हुआ है । बीच में एक मेज के सामने एक युवा व्यक्ति बैठा हुआ था । मदनमोहन ने अनुमान से समझा कि यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी हैं । मदनमोहन ने उन्हें प्रणाम किया । सेक्रेटरी माहब सिर हिलाकर मेज के पास की एक कुर्सी की ओर हाथ करते हुए बोले—“आइये ! ”

मदनमोहन कुर्सी पर बैठ गये । सेक्रेटरी साहब की वयस २७-२८ साल के लगभग होगी । रक्त गोरा, बड़ी बड़ी आँखें, दाढ़ी, मूंछ सफाचट । आँखों पर चश्मा ! वह देखने में सुन्दर पुरुष मालूम पड़ता था । मदनमोहन से सेक्रेटरी साहब ने मुस्कराकर पूछा—“आप आ गये !”

मदनमोहन भी किञ्चित मुस्कराकर बोले—“हाँ ! आपका पत्र परसों मिला था —आज सबेरे चल दिया !”

“अपको वहाँ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ?”

“कहाँ ? ”

“वहीं, जहाँ आप ठहराये गये हैं ।”

“और तो कोई कष्ट नहीं है; परन्तु उधर सजाटा बहुत रहता है । सजाटे से ज़रा तबीयत ऊबती है । यदि कुछ लिखने पढ़ने का सामान हो तो उससे समय काटने में सहायता मिल सकती है ।

“वह तो सब कुछ हो जायगा । कोठी में लाइब्रेरी है । आप अपना फालतू समय वहाँ व्यतीत कर सकते हैं । वह स्थान तो केवल

अपके असबाब के लिए, नहाने धोने के लिए तथा रात के सोने के लिए है। आपका दिन तो प्रायः इधर ही कटा करेगा।”

“तब कोई हर्ज नहीं।”

“पढ़ाने का कार्य कल से प्रारम्भ कर दीजिए।”

“बहुत अच्छा ! कितने लड़के हैं ?”

“एक लड़का तथा एक लड़की। बात यह है कि हमारे राजा साहब आजकल की स्कूली शिक्षा के बहुत विषद हैं। इसलिए वह अपने बच्चों को प्राइवेट शिक्षा दिलाना चाहते हैं।”,

“यह तो बड़ी अच्छी बात है ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज कल की स्कूली शिक्षा कुछ दूषित है।”

“दूषित भी है और कुछ अंशों में व्यर्थ भी। छोटे छोटे बच्चों को तमाम तुनिया भर के विषय पढ़ाये जाते हैं।”

“आपका कथन बिल्कुल ठीक है। बच्चों की क्या उम्र है ?”

“लड़का तो आठ वर्ष का है और लड़की सात वर्ष की। अभी तक दोनों हिन्दी तथा गणित पढ़ते रहे हैं। दो एक पुस्तकें अंग्रेजी की भी पढ़ी हैं। अब आप जिस ढङ्ग से उचित समझियेगा पढ़ाइयेगा। अंग्रेजी, हिन्दी पर ज्यादा जोर रहना चाहिए, शेष विषय जैसे गणित, भूगोल, इतिहास यह भी थोड़े थोड़े साधारण ज्ञान के लिए पढ़ा दीजियेगा। मतलब यह कि किस ढङ्ग से और कौन कौन विषय पढ़ाने चाहिए, यह आप पर निर्भर है। जैसा उचित समझियेगा कीजिएगा। विषय थोड़े और आवश्यक हों।”

“मैं आपका तात्पर्य समझ गया। मैं “करीकूलम” बना कर आपको दिखा दूँगा।”

“यह भी ठीक है।”

अकस्मात् बिजली की रोशनी से कमरा जगमगा उठा। मदन-मोहन ने कहा—“अच्छा, यहाँ बिजली भी है। डाइनमो होगा ?”

“जी हाँ ! आपके कमरे में भी तो बिजली है ।”

“अवश्य होगी ! मैंने ध्यान नहीं दिया ।”

“यहाँ अपनी ही बिजली तथा अपना ही वाटरवर्क्स है । एक इञ्जिन है, वही कुओं से पानी खींच कर कोठी में पहुँचाता है वही डाइनमो चलाता है ।”

“पढ़ाने का समय कौन रहेगा ?” मदनमोहन ने प्रश्न किया ।

“जो समय आप उचित समझें । मेरी राय आप पूछें तो मैं तो तीन घण्टे सुबह और तीन घण्टे शाम का समय ठीक समझता हूँ ।”

“ठीक है ! इसके अतिरिक्त और कोई समय हो भी तो नहीं सकता । सुबह आठ से ग्यारह तक, शाम को छः से आठ तक ।”

इसी प्रकार कुछ देर तक बातें होती रही । तत्पश्चात् मदनमोहन ने कहा—“अच्छा तो अब चलूँ ।”

सेक्रेटरी साहब बोले—“हाँ थोड़ी देर आराम कर लीजिए । जी चाहे बाग में घूमिये । इधर बाईं तरफ बाग है ।”

—“अब आज तो क्या घूमूँगा । जरा जाकर सामान-वामान ठीक कर लूँ—बाग में तो रोज ही घूमना है ।”

इतना कहकर मदनमोहन, सेक्रेटरी साहब से विदा होकर अपने कमरे में आया । कमरे में अन्धेरा था । बत्ती का स्विच ढूँढ़ने में कठिनता हो रही थी । इसी समय एक नौकर आ गया और उसने रोशनी की । मदन मोहन से उसने पूछा—“आपका बिस्तर लगा दूँ ?”

मोदनमोहन बोला—“हाँ लगा दो ।”

नौकर बिस्तर बिछाने लगा । मदनमोहन ने द्रृक् खोल कर आवश्यक सामग्री निकाली और अलमारी में रख दी ।

नौकर अपना कार्य समाप्त करके जाते हुए बोला—“खाना कितनी देर में खाइयेगा ।”

—“जब खिला दोगे तब खा लूँगा । लेकिन अभी तो जलपान किया ही है, कम से कम एक घण्टे बाद खा लूँगा ।”

“बहुत अच्छा” कहकर नौकर चला गया ।

आध घण्टे पश्चात् वही नौकर आया और बोला—“चलिये आपको सरकार याद कर रहे हैं ।”

“कौन ! ठाकुर साहब ? ।”

“जी हाँ !”

मदनमोहन जल्दी से उठा और खूँटी पर से कोट उतारकर पहनने लगा । नौकर बोला—“कोट क्या कीजिएगा पहन के—यो ही चले चलिये ।”

— ‘अच्छा कम से कम टोपी तो पहन लूँ !’

—“टोपी भी—अच्छा टोपी पहन लीजिए ।” मदनमोहन नौकर के साथ चला । कोठी के एक कमरे की चिक उठा कर नौकर बोला— ‘जाइये ।’

मदनमोहन कमरे के अन्दर प्रविष्ट हुआ । कमरा खूब सजा हुआ था । भूमि पर मोटे कालीन बिछे हुए थे । चारों ओर गद्देदार कुर्सियाँ और कोचें लगी थी । बीच में एक गोल मेज थी उसके चारों ओर पांच गद्देदार कुर्सियाँ थी । चार पर चार व्यक्ति बैठे हुए थे उनमें से एक सेक्रेटरी साहब थे । मेजपर मद्यपानकी सामग्री चुनी हुई थी । मदनमोहन सकुचाते हुए उनके समीप पहुँचा । सेक्रेटरी साहब बोले—“आइये, मास्टर साहब !” बैठे हुए व्यक्तियों में से एक को ओर देखकर सेक्रेटरी साहब ने कहा—“हुजूर-यही मास्टर साहब हैं ।” उस व्यक्ति ने मुस्कराकर मदनमोहन से कहा—“आइये मास्टर साहब, बैठिये ।” मदनमोहन उक्त व्यक्ति को प्रणाम करके कुर्सी पर बैठ गया । मदनमोहन से सेक्रेटरी साहब बोले—“हमारे हुजूरवाला ।” इतना कहते हुए सेक्रेटरी साहब ने उक्त व्यक्ति की ओर संकेत किया । मदनमोहन ने पुनः प्रणाम किया । राजा साहब की वयस बत्तीस वर्ष के लगभग थी । गोरे-चिट्टे तथा दृष्ट पुष्ट थे । मूँछें नोकीली तथा ऊपर की ओर घुमी हुईं । आँखें बड़ी बड़ी तथा अन्तर्भेदी ।

इस समय मदारक्त होने से अँगारों की तरह जल रही थी। राजा साहब ने स्थिर दृष्टि से मदनमोहन की ओर देखा। मदनमोहन को ऐसा प्रतीत हुआ कि राजा साहब की आँखों से मिलने पर उसकी आँखें मानो जलने लगीं। मदनमोहन ने अपनी दृष्टि नीची कर ली।

राजा साहब बोले—आप आराम से तो हैं ? ”

“आपके दरबार में कष्ट का क्या काम। ”

राजा साहब ने “हूँ” कहकर शराब का ग्लास उठा लिया और “अरे भई, मास्टर साहब को भी दो,” कहकर चुस्की लेने लगे।

मदनमोहन हाथ-जोड़कर बोला—“मैं तो कर्मा पीता नहीं। ”

“तो आज से शुरू कीजिए। ” सेक्रेटरी साहब बोले।

“नहीं इसके लिए तो क्षमा ही कीजिए। ”

“अजी वाह ! क्षमा करने की एक ही कही। जरा स्वाद तो देखिये। ”

“नहीं ! ”

मदनमोहन ने नहीं कुछ ऐसी गम्भीरतापूर्वक कहा कि राजा साहब बोल उठे—“जाने दो, जिद करने का क्या जरूरत है। ”

सेक्रेटरी साहब बलान् हँसते हुए बोले “ठीक परमाया हुजूर ने खाने-पीने के मामले में जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। अच्छा लेमनेड-आइसक्रीम लीजिये। बेरा ! मास्टर साहब को—क्या पीजिगा आप ? लेमनेड-आइसक्रीम, जिजर, विमटो ? ”

“कुछ भी हो। ”

“अच्छा ! आइसक्रीम दो, या जिजर दे दो—जिजर ज्यादा अच्छा रहेगा। ”

कुछ दिन रहने पर मदनमोहन को निम्नलिखित बातें ज्ञात हुईं । राजासाहब के दो रानियाँ हैं—एक बड़ी तथा एक छोटी ! दोनों ही कुलीन घरानों की लड़कियाँ हैं । परन्तु बड़ी रानी एक राजघराने की है, और छोटी रानी एक साधारण कुलीन परिवार की । वर्तमान दोनों सन्तानें छोटी रानी से हैं । छोटी रानी का छोटा भाई चन्द्रशेखर सिंह भी राजासाहब के यहाँ रहता है और राजासाहब का 'गृह प्रबन्धक' है । राजासाहब के महल के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध करना इत्यादि चन्द्रशेखर सिंह का मुख्य कार्य है । चन्द्रशेखर के अनिश्चित रियासत की देखभाल तथा प्रबन्ध के लिए एक 'हेड मैनेजर' तथा एक सहायक मैनेजर है । एक महाशय 'शिकारी साहब' के नाम से प्रसिद्ध हैं । यह एक ईसाई अर्द्धवयस्क व्यक्ति है, नाम राबिन मूर है । इनके प्रबन्ध में राजासाहब का निजी शस्त्रागार है । राबिन बड़ा कुशल शिकारी है और राजासाहब को शिकार खेलाना इसका मुख्य काम है ।

राजासाहब के एक गुरु भी हैं । इनको सब गुरु महाराज कहते हैं । यह एक संन्यासी हैं—वयस ५० वर्ष के लगभग है । बड़े दृष्ट-पुष्ट तथा चिकने-चुपड़े हैं । भाँग तथा गाँजे के प्रेमी हैं सिगरेट भी पीते हैं । राजासाहब के महल की प्राचीर के अन्दर महल के सामने एक बहुत बड़ा घास का 'लान' है । बीच में एक संगमरमर का फव्वारा लगा है । फव्वारे के

चारों ओर संगमरमर का १५ फीट चौड़ा गोलाकार चबूतरा है। दो अन्य छोटे छोटे चबूतरे भी हैं। महल के पिछवाड़े अन्तःपुर के सामने बाग लगा हुआ है जिनमें अनेक प्रकार के पुष्प वृक्ष, शृङ्गार-वृक्ष (अर्थात् जो केवल अपनी सुन्दर बनावट के कारण लगाये जाते हैं उनके पुष्प तथा फल किसी उपयोग में नहीं आते) और फलों के वृक्ष हैं। एक छोटा घास का लान भी है। उसमें भी फव्वारा तथा चबूतरा है। इसी बाग के एक ओर 'गुरु महाराज' की कुटिया है। इस कुटिया में तीन कमरे हैं। एक बड़ा कमरा है जिसमें स्वामी जी बैठकर आगन्तुकों से वार्तालाप करते हैं। उसीसे मिला हुआ स्वामी जी का शयनागार है, शयनागार से मिला हुआ एक छोटा कमरा स्वामी जी का 'साधना-गृह' है। इनके अतिरिक्त स्नानागार, शौच स्थान भी एक ओर बने हैं, परन्तु इनकी इमारत कुटी से कुछ हटकर अलग बनी हुई है। कुटिया का बड़ा कमरा दरी, फर्श तथा मखमली कालीनों से सुसज्जित है। बीच में दीवार के निकट स्वामी जी का सिंहासन है। यह सिंहासन एक पाँठशर छोटा सा तख्त है जिस पर चाँदी का पत्र जड़ा हुआ है। इस पर एक मखमली गद्दी, तथा गद्दे पर कृष्ण मृगचर्म बिछा है। पीठ की ओर एक गावतकिया है जिस पर मृगचर्म का गिलाफ चड़ा हुआ है। मृगचर्म के ही दो छोटे-छोटे तकिये, एक दाहिनी ओर तथा दूसरा बाईं ओर रखे हुए हैं। तख्त के सामने नीचे एक शिरयुक्त बाघचर्म बिछा हुआ है। दीवारों पर कुछ देवी देवताओं के चित्र तथा काँच पर सुन्दर ढङ्ग से लिखी हुई उक्तियाँ लगी हुई हैं। ये उक्तियाँ, 'ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्व पाशैः', 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः', 'योगः कर्मसु कौशलम्' इत्यादि, उपनिषदों तथा गीता की हैं। छत के बीचो बीच बिजली का एक बड़ा पंखा और उसके दोनों ओर दो बड़े बड़े श्वेत गोले लटके हुए हैं। स्वामी जी के सिरके ऊपर दीवार में बिजली का एक ब्रेकेट लैम्प लगा हुआ है। शयनागार में एक तकिया-दार तख्त, उसपर मखमली मोटा गद्दा, गद्दे पर श्वेत चादर तथा तीन चाद

छोटे बड़े तकिये। सिर के ऊपर दीवार में ब्रॉकेट लैम्प। तख्त के ऊपर छोटासा बिजली का पंखा। तख्त के सामने दीवार की ओर चार कुर्सियाँ, इनमें से दो 'आराम कुर्सी' (इजीचेयर) तथा तख्त के सिरहाने के निकट एक छोटी गोलमेज जिस पर कुछ पुस्तकें रखी हैं। साधना गृह में केवल स्वामी जी का आसन, नीचे कुशासन उसके ऊपर ऊनी आसन तथा सब से ऊपर मृग चर्म। चाँदी के कुछ पूजापात्र एक छोटी सी चौकी पर सजे रखे हैं। इसमें केवल एक हरी बत्ती लगी है। स्वामी जी का भोजन महल की पाकशाला से जाता है।

पंचाम वर्षीय एक ब्राह्मण कोषाध्यक्ष है— नाम पं० चन्द्रधर त्रिवेदी है। यह बड़े सौम्य तथा धार्मिक प्रकृतिके ब्राह्मण हैं। राजा साहब के पिता के समय से कोषाध्यक्ष के पद पर काम कर रहे हैं। राजा साहब इन पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। महल की प्राचीर के बाहर एक बड़ा भवन है। इसमें राज्य के भिन्न भिन्न दफ्तर हैं जैसे कोषाध्यक्ष का दफ्तर, बड़े मेनेजर साहब तथा छोटे मेनेजर साहब का दफ्तर। इसी भवन के पास एक अतिथि गृह बना हुआ है। यह भवन भी यथेष्ट सुन्दर तथा सुसज्जित है। उससे कुछ दूर पर सेक्रेटरी, मेनेजर, कोषाध्यक्ष इत्यादि के बंगले तथा दफ्तर में काम करने वाले क्लर्क, मुर्नामों तथा चपरामियों के क्वार्टर हैं, महल की प्राचीर के निकट ही महल में काम करने वाले नौकरों के क्वार्टर हैं। महल में ३० पुरुष तथा २० स्त्रियाँ काम करती हैं। इनके अतिरिक्त राजा साहब के चार निजी नौकर हैं। ये केवल राजा साहब की सेवा में उपस्थित रहते हैं, महल के अन्य किसी कार्य से इनका सम्बन्ध नहीं है। महल के बाहर निकट ही राजा साहब की कचहरी है। यहां राजा साहब राज्य सम्बन्धी कार्य करते हैं। महल में एक बड़ा हाल तथा ३० मर्दाने कमरे हैं अन्तपुरः में २६ कमरे तथा एक हाल है। इनमें से कुछ ग्रीष्म ऋतु कुछ वर्षा ऋतु तथा कुछ शीत ऋतु के लिए विशिष्ट हैं। किसी में राजा साहब का पुस्तकालय, किसी में वस्त्रालय, किसी में मंदिरालय है। प्रत्येक 'आलय'

का उत्तरदायित्व एक एक नौकर पर है। सब नौकरों के ऊपर एक मुख्य नौकर है। इसका कार्य है राजा साहब अथवा रानियों के आदेशानुसार नौकरोंको काम में लगाना। नौकरों के लिए जितनी आज्ञाएँ निकलती हैं वे सब इसी मुखिया के द्वारा कार्यान्वित होती हैं और उनका उत्तरदायित्व भी इसी व्यक्ति पर रहता है। इस मुखिया का दफ्तर महल के मर्दाने भाग के कोनेमें एक छोटा सा कमरा है। इसकी सहायता के लिए एक क्लर्क भी है। इसका कमरा महल के प्रायः सब कमरों से 'बज़र' (घरेलू टेलीफोन) द्वारा सम्बन्धित है यह व्यक्ति जाति का ठाकुर है—इसका नाम शंकरसिंह है। सामान्य अंग्रेजी उर्दू जानता है—वयस ४० के लगभग है। राज्य की आय आठ लाख रुपये साल से ऊपर है।

एक माम पश्चात् मदनमोहन ने अपनी बुआ को भी अपने पास बुला लिया। अब मदनमोहनको एक बंगला रहने के लिए दिया गया। इस बंगले के दो भाग हैं, एक भाग में खजानेके बड़े मुनीम रहते हैं—यह व्यक्ति वैश्य है—अवस्था चान्दास के ऊपर, नाम ला० मिश्रालाल अप्रवाल है। दूसरा भाग मदनमोहन को दिया गया है। प्रत्येक भाग में चार चार कमरे, बरएडा, स्नानागार तथा शौचागार हैं।

संध्या का समय तथा वर्षा ऋतु का अन्त काल था। मदनमोहन अपने बंगले के प्राँगण में बैठे थे। सामने एक छोटीसी मेज तथा दो कुर्सियाँ लगी थीं। मदनमोहनने अपना एक निजी नौकर भी रख लिया था। मेज पर एक टेबिल लेम (मिट्टा के तेल का) रखा हुआ था। मदनमोहन एक पुस्तक सामने धरे पढ़ रहे थे। इसी समय ला० मिश्रालाल टहलते हुए मदनमोहन की ओर आये और निकट पहुँच कर बोले—“कहिये मास्टर साहब क्या हो रहा है ?”

“कुछ नहीं—ऐसे ही एक पुस्तक पढ़ रहा हूँ। आइये।”

“आपका कोई हर्ज तो नहीं होगा।” कहते हुए लाला साहब आकर सामने कुर्सी पर बैठ गये।

“नहीं हर्ज काहे का। मैं तो समय काटने के लिये पुस्तक ले बैठा था।”

“अङ्गरेजी की है ?”

“जी हां ! राजा साहब के पुस्तकालय से ले आया ।”

“राजा साहब के पुस्तकालय में बहुत पुस्तकें होंगी ?”

“पुस्तकें तो काफी हैं परन्तु चुनाव अच्छा नहीं है ।”

“राजा साहब को पुस्तकें पढ़ने की फुर्सत कहाँ है ।”

“हाँ ! कुछ देशी-विलायती मेगजीने और मासिक पत्र भी आते हैं । उन्हीं को उलट-पलट कर देख लेते हैं । हां समाचार पत्र तो नित्य पढ़ते हैं ।”

“वह तो समाचारों के लिए पढ़ लेते होंगे । हिन्दी के पत्र रानियाँ पढ़ती होंगी ।”

“हाँ वे सब अन्तःपुर चले जाते हैं । राजा साहब को चाहिए कि एक ‘सार्वजनिक वाचनालय’ बनवा दें ।”

“किसी ने सुझाया नहीं । आप सुझा दीजिए । आदमी बड़े अच्छे हैं; परन्तु कोई ऐसा आदमी नहीं है जो उन्हें अच्छी सलाह देता रहे । इनके पिता तो सामान्य पढ़े लिखे थे—इन्होंने अलबत्ता बी० ए० तक शिक्षा पाई है । यहाँ केवल एक आदमी अच्छा है और वह हैं हमारे खजान्ची साहब त्रिवेदी जी ! बड़े स्वामिभक्त, ईमानदार और बृद्धिमान आदमी हैं । परन्तु वह केवल अपने काम से काम रखते हैं और किसी सगाई में नहीं पड़ते ।

“क्या चेतन मिलता है त्रिवेदी जी को ।”

“हो मौं रुपये मिलते हैं । (धीमे स्वर में) पद तो ऐसा है कि यदि कोई दूसरा आदमी होता तो बन जाता, परन्तु हमारे त्रिवेदी जी एक तो ब्राह्मण-साठ बरस तक पोंगा रहने वाले—क्षमा कीजिएगा आप भी ब्राह्मण हैं—?”

“जा हाँ ! आप कहते जाइये ।” मदनमोहन ने मुस्कराकर कहा ।

“खैर—त्रिवेदी जी बड़े सात्विक आदमी हैं । उन्होंने सदैव ईमानदारी से काम किया, इस कारण धन एकत्र नहीं कर पाये ।”

“खैर धन न सही यश तो पाया । यश का आसन धन से भी ऊँचा है ।”

“हाँ ! यश बहुत बड़ी चीज है । परन्तु ऐसे आदमी भी कम नहीं हैं जो धन को यश से बड़ा समझते हैं । धन के सामने वे यश को अधिक महत्व नहीं देते ।”

“हां-आँ, ऐसे आदमी भी हैं ।” मदन मोहन मृदुहास करके बोले । संसारोऽयमतीव विचित्रः । इस संसार में अनेक प्रकृति तथा स्वभाव के लोग हैं । और यह राजगुरु कैसे हैं ?”

“संन्यासी हैं ।” मिश्रीलाल ने किञ्चित् मुस्कराकर कहा ।

“हाँ परन्तु रहते तो सन्यासियों की तरह नहीं हैं ।”

“राजा के गुरु हैं । अच्छा से अच्छा खाना खाते हैं । रेशमी वस्त्र पहनते हैं-- बढियाँ गाँजा तथा मिगरेट पीते हैं, उनके लिए जो भाँग बनती है उसमें भी बढियाँ मसाले होते हैं । इस प्रकार राजगुरु का मामला चकाचक रहता है ।”

मदन मोहन हँसने लगे । हँसते हुए बोले--“भई जो इस प्रकार रहने को मिले तो मैं आज संन्यासी होने को तैयार हूँ ।”

“परन्तु मिले तब न ! आप केवल संन्यासी बनने को तैयार हैं; मैं परमहंस बनने के लिए उद्यत हूँ ।”

मदन मोहन ने अट्टहास किया--मिश्रीलाल भी हँसने लगा । हँस चुकने पर मदन मोहन ने पूछा--“कोई सिद्धि भी है इनमें ?”

“सिद्धि ! संन्यासी होकर भी इतने ऐशोआराम का जीवन व्यतीत करते हैं--यह क्या कुछ कम सिद्धि है ? हम लोग इतना परिश्रम करते हैं, तब भी उनके सुख भोगका शतांश भी हमें प्राप्त नहीं होता—इस पर तो विचार कीजिए ।”

“खैर यह तो स्वामीजी की सिद्धि का फल नहीं है वरन् संन्यासियों के प्रति हम लोगों के अन्धविश्वास का परिणाम है ।”

“आप जो भी समझिये, परन्तु मैं तो इसे सिद्धि ही मानता हूँ।”

“आपने उनका उपदेश सुना है?”

“कई बार!”

“क्या उपदेश देते हैं?”

“वही पुरानी घिसी बातें। ‘ईश्वर का भजन किया करो,’ ‘संसार मिथ्या तथा नाशवान् है इसमें चित्त न लगाओ’—इत्यादि।”

“यदि स्वामीजी को तीन-चार दिन गौजा-भाँग-सिगरेट न मिले तो उन्हें पता लगे कि यह संसार क्या है।”

“ऐसा सुख भोग करते हुए संसार को मिथ्या कहना कितना हासास्पद है।” मिश्रीलाल ने मुँह बना कर कहा।

“आज कल ऐसे ही पाखण्डी-संन्यासी रह गये हैं। अच्छे संन्यासियों की संख्या तो अति अल्प है और उनका मिलना भी सरल नहीं है।”

“जी हाँ! वे जगत के प्रपंच से कोसों दूर रहते हैं।”

“रानियाँ तो केवल दो ही हैं न?” मदन ने पूछा।

“जी हाँ रानियाँ तो केवल दो ही हैं।” मिश्रीलाल ने मुस्कराकर कहा।

“आप मुस्कराये क्यों?” मदन ने पूछा।

“रानियों तो केवल दो ही हैं, परन्तु —” मिश्रीलाल पुनः मुस्कराया।

“कह डालिये! मुझ से कहने में कोई खतरा नहीं है।”

मिश्रीलाल ने स्वर धीमा करके कहा—“रानियाँ दो ही हैं परन्तु रखेलियों की तो कोई गिनती ही नहीं है। दो बाँदियाँ जो बड़ी रानो के साथ आई थीं वे खूबसूरत और कमसिन थीं वे दोनों राजा साहब की रखेल हैं। अब सुना जाता है कि उनकी ओर से राजा साहब उदासीन हो रहे हैं। एक वेश्या भी है।”

“वह कहाँ रहती है?”

“वह कही और रहती है—राजा साहब तीसरे चौथे उसके पास जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी न जाने कितनी आती-जाती रहती हैं।”

“स्वामी जी के शिष्य की यह दशा !”

“कहां के स्वामी और कहां के शिष्य ! स्वामी जी समझते हैं कि अच्छा चेला मूढ़ा, चेला समझता है कि राजगुरु का होना राजा के लिए आवश्यक है इस कारण उन्होंने इनको गोबर गणेश बनाकर बिठा लिया। राजसी ठाट-बाट में स्वामी जी का भी स्थान है।”

“यह कहो। स्वामी जी राजसी फेशन की सामग्री हैं।”

“बिल्कुल !”

“छोटी रानी और बड़ी रानी में कैसी पटती है ?”

“अन्दर का पूरा हाल हम लोगों को नहीं मालूम होता, परन्तु इतना ज्ञात है कि बड़ी रानी उदासीन जीवन व्यतीत करती हैं। पूजा-पाठ में अधिक रहती हैं।”

“क्या करें बेचारी। राजा साहब की करतूत सुन सुन कर विराग हो गया होगा।”

“हाँ ऐसा ही कुछ कारण होगा। छोटी रानी से भी उनकी कम पटती है, क्योंकि छोटी रानी ससन्तान हैं, बड़ी बन्ध्या हैं। इस कारण राजा साहब छोटी का लाड़-प्यार अधिक करते हैं। बड़ी रानी से वह कमसिन भी हैं—बड़ी रानी की वयस तीस वर्ष की है—छोटी की २५—२६ की। बड़ी से छोटी सुन्दर भी कुछ अधिक हैं।”

“रहती तो दोनों इसी महल में हैं ?”

“हाँ, परन्तु अलग अलग। बड़ी रानी का सब कुछ अलग है—दासियाँ, रसोई इत्यादि सब पृथक।”

“राजासाहब से तो बोलचाल होगी ?”

“सो क्यों नहीं—आखिर पति ही हैं। जब कभी—अर्थात् महीने में दो तीन बार—राजा साहब की इच्छा होती है तो बड़ी रानी के पास आते हैं।”

“बड़ी रानी जब इतनी धार्मिक प्रवृत्ति की है तो स्वामी जी की भी भक्त होगी।”

“सो बात नहीं है। बड़ी रानी तो उनके पास बहुत ही कम जाती हैं—और शायद वह भी इस डर से कि स्वामी जी कहीं रुष्ट होकर राजा साहब को उनके विरुद्ध भड़काने न लगें। हाँ छोटी रानी उनकी भक्त हैं। वे प्रायः नित्य ही उनका उपदेश सुनने जाती हैं।”

“और ?”

“और क्या बताऊँ। यहाँ बहुत से भगड़े हैं। कुछ दिन रहने पर आपको सब बातें ज्ञात हो जायेगी। यहाँ तो वही निरापद रह सकता है जो केवल अपने कामसे काम रखे—किसी अन्य पचड़े में न पड़े। पचड़े में पड़ा और मारा गया। आपके पहले राज्य के हाई स्कूल के एक टीचर राजकुमारी तथा राजकुमार को पढ़ाते थे। उन्हें पढ़ाते केवल छः मास ही हुए थे कि उनपर कुबुद्धि सवार हुई। राज्य की राजनीति में दिलचस्पी लेने लगे और इश्वर की उधर लगाने लगे। बस—निकाल बाहर किये गये। इसके पश्चात् यह निर्णय किया गया कि स्कूल का कोई टीचर न रखा जाय—इस कार्य के लिये एक आदमी अलग नियुक्त किया जाय। इसी निर्णय के परिणामस्वरूप आज आप यहाँ उपस्थित हैं।”

“यह आपने अच्छा बता दिया—धन्यवाद !”

“आपको प्रथमबार देखते ही मेरे मनमें यह आया कि आप बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। इसीलिए मैं आपसे इतना खुल गया—अन्यथा मैं किसी से ये बातें नहीं कहता। यहाँ मौन रहना ही अच्छा।”

“ठीक बात है। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे अपना विश्वासपात्र बनाने के योग्य समझा।”

“यहाँ चार आदमियों का गुट है—उसमें राजासाहब का साला छोटी रानी का भाई-प्रधान है, सेक्रेटरी साहब हैं, हेड मैनेजर है स्वामी जी हैं—।”

“अच्छा स्वामी जी भी गुट में सम्मिलित हैं।”

“यही तो आनन्द है। ये चार व्यक्ति जो चाहते हैं वही होता है। जो इनका आज्ञाकारी रहता है वह तो मजे में रह सकता है—परन्तु जो तनिक भी इनका विरोध प्रकट करता है वह किसी न किसी बहाने निकाल बाहर किया जाता है—चाहे वह राजा साहब का कितना ही प्रियपात्र हो। ये चारों मूर्तियाँ प्रियपात्र को अप्रिय बनाकर ही छोड़ती हैं।”

मदन मोहन विचार करते हुए बोले—“जब छोटा साला है तो रानी भी इस गुट में अवश्य सम्मिलित होगी।”

“बहुत संभव है कि ऐसा भी हो। इस गुट का प्रभाव केवल त्रिवेदी जी पर नहीं है। इसके दो कारण हैं—एक तो त्रिवेदी जी बहुत पुराने—राजा साहब के पिता के समय से हैं। बड़े महाराज मरते समय राजा साहब को यह आदेश दे गये हैं कि जब तक त्रिवेदी जी स्वयं ही अलग न हों तब तक उन्हें कदापि अलग न किया जाय और चाहे वे स्वयं अलग हों, चाहे अन्य किसी कारण से उन्हें अलग किया जाय—उन्हें सौ रुपये मासिक पेन्शन मिलती रहे। दूसरे वह किसी अन्य पच्चे में पड़ते भी नहीं, अपने काम के अतिरिक्त उन्हें अन्य किसी भी बात से दिल-चस्पी नहीं है। कभी कभी जब राजा साहब कोई परामर्श लेते हैं तो निर्भीकतापूर्वक उचित परामर्श देते हैं—राजा साहब चाहे उसे मानें या न मानें।

“किसी मगड़े में नहीं रहते इसी कारण बचे हुए हैं।”

“सो बात नहीं है। इस गुट ने तब भी उन बेचारों पर हाथ साफ करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। क्योंकि यह गुट अपने वश के व्यक्ति को खजांची बनाना चाहता था। परन्तु राजा साहब की इतनी प्रशंसा अवश्य करनी पड़ेगी कि उन्होंने अपने पिता के अन्तिम आदेश का पूर्णतया पालन किया है—त्रिवेदी जी के विरुद्ध किसी बात पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। यह त्रिवेदी जी का प्रताप है कि राज्य पर एक कौड़ी का श्रेण नहीं है—अन्यथा अन्य राज्यों को देखिये—श्रेण के

बोझसे दबे पड़े हैं। हां एक राज परिडत भी हैं। यह पूजा-पाठ और कर्म काण्ड करते कराते हैं-मुहूर्त्त बताते हैं तथा अन्य इसी प्रकार के कार्य करते हैं। यह रनिवास में भी आते-जाते हैं।

“अवस्था क्या है?”

“वृद्ध हैं। ५५-६० के होंगे। परन्तु एक ही धूर्त हैं। जब कहते हैं ठकुर-सुहाती ही कहते हैं। स्वामी जी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं-यद्यपि स्वामी जी से वयस में बड़े हैं। जिस समय यह स्वामी जी की प्रशंसा करने लगते हैं तो उन्हें पूर्ण ब्रह्म प्रमाणित कर देते हैं। स्वामी जी ने भी इन्हें बड़ा विद्वान तथा सात्विक ब्राह्मण प्रसिद्ध कर रखा है।”

“तो यह भी उसी गुट में सम्मिलित होंगे।”

“अवश्य होंगे। इनका नाम क्या है? मैंने उन्हें महल में आते-जाते तो देखा है।”

“अवश्य देखा होगा। वह तो एक बार नित्य ही हाजिरी देते हैं। इनका नाम रविशंकर शास्त्री है।”

इसी समय महल के घण्टे ने नौ बजाये। मिश्रीलाल ने अँगड़ाई लेकर कहा—“अब चलें भोजन-वोजन करें।”

“हाँ भोजन कीजिए—मैं भी भोजन करने जाऊँगा। आज आप से बड़ी महत्वपूर्ण बातें मालूम हुई। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपके साथ रहने का अवसर मिला—आपका परामर्श मेरे लिए लाभप्रद होगा।”

“मैं आपको उचित परामर्श देता रहूँगा। अच्छा!”

यह कह कर मिश्रीलाल उठ खड़े हुए।

(६)

एकादशी का दिवस था। प्रत्येक एकादशी को स्वाजी जी का प्रवचन हुआ करता था। इस प्रवचन में राजा साहब भी, यदि उन्हें अवकाश होता था तो, सम्मिलित हुआ करते थे। राजा साहब के अतिरिक्त राज्य के मुख्य मुख्य कर्मचारी भी उपस्थित हुआ करते थे। एक प्रवचन प्रातः ६ बजे से १० बजे तक हुआ करता था। इस प्रवचन में केवल रानियाँ और उनकी परिचारिकाएँ रहती थीं तथा मुख्य कर्मचारियों के घर की स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं।

पुरुषों के लिए सन्ध्या को प्रवचन हुआ करता था। अब स्वामी जी की आज्ञानुसार एकादशी को तीन बजे ही सब दफ्तर बन्द हो जाते थे। अतः ४ बजे के लगभग ला० मिश्रीलाल मदनमोहन से बोले—
“आज स्वामी जी का प्रवचन है सुनने चलोगे ?”

“क्या चलना आवश्यक है ?”

“कोई आवश्यक नहीं इच्छा पर है। यदि इच्छा हो तो चलना।”

“प्रवचन में तो मुझे कोई अनुराग है नहीं—हाँ वहाँ के रंग-ढंग देखने को जी चाहता है।”

“इसी दृष्टि से तो मैं भी कह रहा हूँ—अन्यथा प्रवचन में क्या धरा है—वही पुराना पिष्ट-पेषित बाते।”

“इस दृष्टि से चल सकता हूँ। वहाँ का दृश्य देखने की मेरी इच्छा तो है। क्या त्रिबेदी जी भी जायेंगे।”

“हाँ वह तो अवश्य जायेंगे—धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी हैं।”

“अच्छी बात है, चलूँगा।”

“तो बस तैयार हो जाओ—चार बज चुके हैं।”

“अभी होता हूँ।”

पौने पाँच बजे के लगभग ला० मिश्रीलाल तथा पं० मदनमोहन शर्मा स्वामी जी की कुटी में पहुँच गये। स्वामी जी तो अभी अपने आसन पर नहीं आये थे, परन्तु श्रोतागण एकत्र हो गये थे। त्रिवेदी जी बड़े मैनेजर, चन्द्रशेखर सिंह तथा कुछ अन्य कर्मचारीगण उपस्थित थे। ये दोनों भी उपस्थित व्यक्तियों को प्रणाम करके त्रिवेदी जी के निकट जा बैठे। इन लोगों के बैठने के कुछ ही क्षण पश्चात् इनके कानों में 'भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते !' की आवाज़ पड़ी। चन्द्रशेखर सिंह मुस्कराकर बोला—“शास्त्री जी आ रहे हैं।”

बड़े मैनेजर साहब ने भी मृदुहाम करके कहा—“शास्त्री जी के आगमन की सूचना तो दूर से ही मिल जाती है। कुछ न कुछ कहते ही रहते हैं।” इसी समय शास्त्री जी आ गये। अन्दर पग रखते ही बोले—“आहा ! बड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् यह दिन आता है।”

सब ने शास्त्री जी को प्रणाम-नमस्कार किया। शास्त्री जी स्वामी जीके आसनके निकट जा बैठे। दीवार पर लगी हुई उक्तियोंको देखा। एकको पढ़ा—“या मतिः स गतिर्भवति !” आ हा ! कैसी सुन्दर उक्ति है। जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है। ‘सर्वं परवशं दुःखम्’ आ हा ! परवशता में तो दुख है ही। ‘ज्ञानान्मुक्तिः’ सच है, ज्ञान से ही मुक्ति होती है। लाख लाख रुपये की एक एक उक्ति है। कुछ उक्तियाँ रामायण की भी होनी चाहिए ! क्यों त्रिवेदी जी ?”

त्रिवेदी जी बोले—“हाँ ! रामायण में भी अच्छी अच्छी उक्तियाँ हैं।”

चन्द्रशेखर सिंह बोला—“शास्त्री जी, आप कुछ उक्तियाँ छोट दीजिए तो वे भी बनवा ली जाँय।”

शास्त्री जी बोले—“अवश्य ! कल ही छोट दूँगा।”

इसी समय स्वामी जी बाहर निकले। उन्हें देखते ही सब लोग खड़े हो गये। स्वामी जी आकर अपने आसन पर बैठ गये। सबने उन्हें अपने

अपने ढंग पर प्रणाम किया। शास्त्री जी ने लम्बे लम्बे लेट कर साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी जी ने किञ्चित् मुस्कराकर पूछा—“क्या बात हो रही थी?”

शास्त्री जी बोले—“मैं यह कह रहा था कि कुछ रामायण की उक्तियाँ भी होनी चाहिए।”

स्वामी जी ने कहा—“हाँ ! हाँ ! अच्छा तो है।”

चन्द्रशेखर बोला—“मैंने शास्त्री जी से छोट देने को कह दिया है। बनवा दो जाँयगी।”

“राजा साहब आवेंगे ?”

“वह तो नहीं आ सकेंगे—किसी कार्यवश गये हैं।” चन्द्रशेखर ने कहा।

“तो आरम्भ किया जाय ?” स्वामी जी ने कहा।

“हाँ महाराज।”

स्वामी जी ने नेत्र बन्द करके ‘ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्’ इत्यादि शान्ति पाठ आरम्भ किया। शास्त्री जी स्वामी जी का साथ दे रहे थे। इसके पश्चात् ‘ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा’ इत्यादि, तत्पश्चात् ‘ॐ सह नाववतु सहनौ भुनक्तु’ इत्यादि। इस प्रकार सब शान्तिपाठों को पढ़ा। तदुपरान्त कुछ क्षण तक नेत्र बन्द किये बैठे रहे। फिर नेत्र खोल कर कहना आरम्भ किया—“आज का विषय है कर्मयोग तथा कर्मसंन्यास। आज मैं आप लोगों को बताऊँगा कि कर्मयोग तथा कर्मसंन्यास में क्या अन्तर है, दोनों में कौन श्रेष्ठ है, कौन किसके लिए उपयोगी है। क्योंकि चाहे जितनी अच्छी वस्तु हो परन्तु वह समान रूपसे सबके लिए उपयोगी नहीं हो सकती। इसी प्रकार कोई ऐसी बुरी वस्तु नहीं जो सब समय सब के लिए समानरूपेण त्याज्य हो………………।”

स्वामी जी अपना व्याख्यान जारी किये हुए थे। इस व्याख्यान को केवल दो व्यक्ति दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। एक तो त्रिवेदी जी,

दूसरे शर्मा जी (मदनमोहन) । त्रिवेदी जी श्रद्धाभाव से सुन रहे थे, शर्मा जी आलोचनात्मक बुद्धि से । शेष लोग अपने अपने विचारों में मग्न थे । चन्द्रशेखर से बड़े मैनेजर साहब धीमे स्वर में बोले—

“राजा साहब कहाँ गये हैं ?”

“शायद लखनऊ गये हैं ।”

“अच्छा ! चन्दा से मिलने गये होंगे ।”

“हाँ और क्या । कई दिन हो गये ।” चन्द्रशेखर ने मुस्कराकर कहा ।

“खूब फाँस रखा है इस चन्दा ने राजा साहब को ।”

“तबीयत ही तो है ।”

“हाँ साहब ! और राजाओं की तबीयत का क्या कहना—उमका तो पता ही नहीं लगता ।”

“त्रिवेदी जी को देखो कैसे ध्यान से सुन रहे हैं ।”

“एक ही बना हुआ है । इस पर न जाने राजा साहब क्यों इतना विश्वास करते हैं ?”

“इस पर कोई दाँव नहीं चलता ।”

“चलेगा, घबराइये नहीं ।”

“कोई युक्ति सोची है क्या ?”

“जब समय आयेगा तब युक्ति भी निकल ही आयेगी ।”

स्वामी जी कह रहे थे—“सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न परिडताः । सांख्य तथा योग-अर्थात् कर्मयोग-सांख्य कर्म संन्यास को कहते हैं और योग से यहाँ कर्मयोग का तात्पर्य है । श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि कर्मसंन्यास तथा कर्मयोग दोनों एक ही हैं—परिडत अर्थात् शास्त्र का मर्म जानने वाले इन्हें पृथक् नहीं कहते—केवल बालाः अर्थात् बालक-बालक से यहाँ अज्ञानी तथा शास्त्रमर्म न जाननेवालों से तात्पर्य है । मतलब यह है कि अज्ञानी लोग ही कर्मसंन्यास तथा कर्मयोग को पृथक् कहते हैं ।”

इतना छुन कर पुनः ये दोनों बात करने लगे। चन्द्रशेखर सिंह बोला—“यह शर्मा जी त्रिवेदी जी के नये शिष्य मालूम होते हैं।”

“शिष्य--विष्य अभी यह किसी के नहीं हैं। अभी बेचारे को आगे ही कितने दिन हुए। वैसे आदमी अच्छा मालूम होता है।”

“इसे भी अपनी मण्डली में सम्मिलित कर लेना चाहिए।”

“सब हो जायगा--घबराइये नहीं। हमारे विषय हो कर भला यहां कोई रह सकता है?”

“यह मिश्रीलाल भी बड़ा बना हुआ है।” चन्द्रशेखर सिंहने कहा।

“बना--वना चाहे जो हो, परन्तु किसी भगदे में नहीं रहता--अपने काम से मतलब रखता है।”

✓ स्वामी जी कह रहे थे--“मन तथा इन्द्रियो से कर्म का त्याग करने वाले को कर्मसंन्यासी कहते हैं। यहाँ कर्म से लौकिक कर्मों का तात्पर्य है। और केवल मन से कर्मों का संन्यास करके इन्द्रियो द्वारा केवल कर्त्तव्य बुद्धि से, आसक्ति तथा फल कामना के बिना कर्म करते रहने को कर्मयोग कहते हैं।”

“जैसे हम लोग क्यों ?” चन्द्रशेखर सिंह ने पूछा।

“और क्या हम लोग तो कर्मयोगी हैं ही।”

अन्य लोग भी अपनी अपनी रुचि के अनुसार भीमे स्वर में परस्पर बातें कर रहे थे। एक महाशय अपने निकटस्थ व्यक्ति से पूछ रहे थे—“यह स्वामी जी भी कर्मसंन्यासी हैं ?”

“संन्यासी तो हैं ही, अब कर्म संन्यासी हैं या धर्मसंन्यासी यह तो यही जानें।”

“संन्यासी नहीं, पत्थर हैं। बढ़िया माल खाते हैं, अच्छे कपड़े पहनते हैं, बिजली के पंखे तथा मसहरी में सोते हैं। संन्यासी ऐसे ही होते हैं ?”

“आज कल के संन्यासी ऐसे ही हैं।”

“इन्हें हमारे महाराज ने गुरु बना रखा है—यह सजा देखिये ।”

“अजी यह तो राजसी ठाठ हैं । गुरु भी राजसी ठाठ का अङ्ग है अन्यथा हमारे महाराज इनके भी दादा गुरु हैं । भला वह भी कोई गुरु है जिसका आध्यात्मिक प्रभाव अपने शिष्य पर न हो ।”

“आध्यात्मिकता हो तब न ! केवल कपड़े रङ्ग लेने से और मौखिक उपदेश देने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता ।”

“काहे के संन्यासी ! मौज करते हैं--अन्धभक्तों की बदौलत ।”

“यह शास्त्री जी जी बड़े बने हुए हैं, कैसे भक्ति भाव से बैठे हैं ।”

“यह भी तो संन्यासी जी के भाई-बन्धु हैं. चोर के भाई गिरह-कट !”

“दोनों में मेल भी बहुत है ।”

“हुआ हा चाहे-दोनों एक ही ‘लाइन’ के आदमी हैं ।”

इधर तो यह हो रहा था । उधर राजा साहब अपनी कार पर लखनऊ की ओर उड़े चले जा रहे थे । राजा साहब अपनी कार स्वयं चला रहे थे । उनके बगल में, अगली सीट पर, उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ठाकुर दलजीत सिंह एम० ए० एल० एल० बी० विराजमान थे । पिछली सीट पर डाइवर तथा राजा साहब के दो व्यक्तिगत नौकर बैठे थे । जब लखनऊ दसमील रह गया तो रास्ते में एक गांव मिला । राजा साहब ने कार रोक दी । नौकर को दो पेग बनाने का हुक्म दिया । नौकर ने शीशे के ग्लास में दो पेग हिस्की और सोडा डाला तथा थरमास से बर्फ निकाल कर डाली इस प्रकार ग्लास बना कर राजा साहब को दिया । “सेक्रेटरी साहब के लिए भी बनाओ ।” यह कह कर राजा साहब चुस्की लगाने लगे । थोड़ा देर में ग्लास खाली करके नौकर को दे दिया और स्वयं लघुशंका से निवृत्त होने के लिए चले । एक ओर कुछ मकानों का, जिनमें एक छोटा सा पक्का मकान भी था, पिछवाड़ा था, उसके पश्चात् चार फीट चौड़ा मार्ग । मार्ग

के पश्चात् कुछ भूमि थी जिसमें झाड़-भाँखाड़ उगा हुआ था, इसके पश्चात् खेतों की श्रेणी आरम्भ हो जाती थी। इसी स्थान पर राजा साहब एक झाड़ी की आड़ में चले गये। कुछ क्षण बाद जब बाहर आये तो खड़े होकर चारों ओर देखने लगे। इसी समय मकानों के पिछवाड़े वाले मार्ग पर एक षोड़शी जाती हुई दिखाई दी। षोड़शी मोटी परन्तु स्वच्छ धोती तथा शलूका पहने थी। राजा साहब से उसकी चार आँखें हुईं। राजा साहब तो धृष्टतापूर्वक उसे घूरते रहे परन्तु षोड़शी ने आँखें नीची कर ली। षोड़शी का वर्ण रक्तगौर था। देहाती वायुमण्डल में रहने के कारण उसके गौर वर्ण में लालिमा की पुट थी। नेत्र बड़े बड़े, शरीर साँचे का ढला हुआ था। षोड़शी पक्के मकान की गली में मुड़ गई और कुछ ही क्षणों में अदृश्य हो गई। राजा साहब कुछ क्षण तक खड़े रहे तत्पश्चात् धीरे धीरे मोटर की ओर लाँटे। मोटर के पाम आकर उन्होंने अपने एक नौकर को बुलाया और उसे साथ लिये पुनः उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ से कि उन्होंने षोड़शी को देखा था। पक्का मकान दिखा कर नौकर से राजा साहब बोले—
“यह मकान देख लो और याद रखना।

“देख लिया हुआ। इसका दरवाजा शायद उधर से है।”

“हाँ। यह तो पिछवाड़ा मालूम होता है।”

“मामला क्या है?” नौकर ने पूछा।

“इस मकान की ओर अभी एक लड़की गई है, निहायत हसीन, देख कर दिल बेचैन हो गया। उसका पता लगाना है कि वह कौन है।”

“लेकिन यह काम तो फुर्सत का है। जब यहाँ आकर दो चार दिन टिका जाय तब पता लग सकता है।”

“हाँ ! हाँ ! हमें लखनऊ पहुँचा कर तुम चले आना।”

“बहुत अच्छा ! यहाँ की किसी औरत को मिलाना पड़ेगा तब पता लगेगा।”

“तुम जो मुनासिब समझना करना।”

यह कह कर राजा साहब कार पर लौट आये और लखनऊ की ओर रवाना हुए। लखनऊ पहुँचते पहुँचते सूर्यास्त हो गया। लखनऊ में राजा साहब की एक कोठी थी। कोठी के सामने एक छोटा सा घास का 'लान' था जिसमें यत्रतत्र फूलों तथा अन्य वृक्षों के गमले सजाये हुए थे। इस कोठी में छः नौकर रहते थे। चार नौकर, एक रसोइया, तथा एक माली। राजा साहब ने कोठी के 'पोर्च' में कार रोकी। सब लोग उत्तर कर कोठी में चले गये, डाइवर कार लेकर 'गेरेज' में चला गया। राजा साहब के कुछ कपड़े इस कोठी में भी रहते थे, हाथ-मुँह धोकर तथा कपड़े बदल कर, डाइङ्ग रूम में आ बैठे। उधर दलजीतसिंह भी कपड़े बदलकर राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुए। इसी समय एक नौकर ने आकर पूछा—“हुजूर खाना क्या बनेगा ?”

राजा साहब मुँह बनाकर बोले—“चाहे जो बना लो। सेक्रेटरी साहब आप जो खाना चाहें बनवा लें।”

“जो सरकार की आज्ञा हो वह बनवाया जाय।”

“अरे भई पेट भरना है, चाहे जो बनवा लो। तुम्हीं बता दो।”

सेक्रेटरी साहब कुछ क्षण सोचकर बोले—“देखो, रोगनजोश कबाब, अण्डों का खाकीना, दो साग, कुछ बड़िया मिठाई और मलाई मँगवा लेना—और पूरियाँ या पराठे सरकार ?”

‘या पराठे सरकार’ कहते समय दलजीत ने राजा साहब की ओर देखा।

राजा साहब बोले—“पराठे बनवाओ—पूरी से पराठा अच्छा होता है। और पापड़ भी तलवा लेना।”

“कै आदमियों का खाना बनेगा ?”

राजा साहब सोचते हुए बोले—“चार-पाँच आदमियों भर का बनवा लो।”

नौकर चला गया। सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सिगार दिया। राजा साहब बोले—“यह सिगार कहाँ से आगया ?”

“यहाँ दो बक्स धरे हैं। पिछली दफा जब आये थे तब सरकार ने दो बक्स खरीदे थे। वही धरे हैं। उनमें से चार छः खर्च हुए थे-शेष सब धरे हैं।”

“हाँ ठीक है। मुझे खयाल ही न था। जरा कार भेजकर चन्दा को बुलवा लो।”

सेक्रेटरी साहब उठकर बाहर गये और थोड़ी देर में वापस आकर बोले—“कह दिया, जा रहा है।”

राजा साहब कुछ क्षण तक सिगार पीते रहे तत्पश्चात् अकस्मात् बोले—“क्या बतावें आज एक ऐसी सूरत देखी कि चित्त व्याकुल हो गया।”

“कहाँ?” सेक्रेटरी साहब ने उत्सुक होकर पूछा।

“वही जहाँ रास्ते में रुके थे।”

“अच्छा, जहाँ सरकार ने जगराज को बुलाया था।”

“हाँ! एक देहाती लड़की थी-बिल्कुल नवयुवती, लेकिन क्या सूरत और कैसा सुडौल शरीर, रंग कुन्दन की तरह दमकता था।”

“देहात में सौन्दर्य कम ही होता है, परन्तु जब होता है तो ला जबाब और बिल्कुल ठोस!”

इसमें सन्देह नहीं। उसमें पोलापन नहीं होता और बिल्कुल प्राकृतिक-बनावट का नाम नहीं।”

“शहरों में तो पाउडर और लिपस्टिक की ऐसी भरमार रहती है कि असली सौन्दर्य का पता ही नहीं लगता।”

“शहरों का सौन्दर्य बिल्कुल कृत्रिम होता है। बढ़िया साड़ी-ब्लाउज पहन लिया, पाउडर-लिपस्टिक लगा ली-बस अपने को अप्सरा समझने लगीं। बिना इन वस्तुओं के साधारणतया देखो तो घृणा हो जाय, पीला रङ्ग-मानो शरीर में रङ्ग ही नहीं है, सुखे हाथ-पैर, हों बोलबाल और नाजोन्मुखों में अलवसा बड़ी-बड़ी होती है।”

“परन्तु सरकार, जो सौन्दर्य लजाई हुई आँखों और लज्जाजन्य अल्पभाषण में है वह सौन्दर्य धृष्टतापूर्वक ताकते हुए नेत्रों तथा बेहयाई से पटर पटर बात करने में कहों। और शहर की स्त्रियों का स्वास्थ्य बड़ा पोला होता है। जरा में ही कोई न कोई ‘आइटिस’ (रोग) धर लेता है। इन शहरी तितिलियों में नब्बे प्रतिशत को कोई न कोई रोग होता है। इसका कारण यह है कि पौष्टिक तथा बलकारक चीजें जैसे घी-दूध इन्हें भाता नहीं। हल्का भोजन खाती हैं, परहेज इतना कि रोगी भी भेष जाय ! मिर्च-खट्ठाई विष, घी-दूध इत्यादि चर्बी बढ़ाते हैं, मलाई काबिज होती है। इस प्रकार परहेज कर करके ऐमी बन जाती हैं कि फिर यदि ये चीजें खाँय भी तो पचें ही नहीं। चिड़िया का चुग्गा जैसा अन्न खा लिया-कुछ फल खा लिये-शाक खा लिये, बस ! अब बताइये इन चीजों से ठोस स्वास्थ्य कैसे बनें। शारीरिक परिश्रम के नाम कभी स्वयं पानी का ग्लास भी भरकर नहीं पीतीं। यही कारण है कि उनका शरीर, सौन्दर्य, यौवन सब पोला होता है।”

राजा साहब सिर हिलाते हुए बोले-- ठोक बात है।”

“शहर की स्त्रियों की यह दशा है कि तीस वर्ष की उम्र में ही यौवन समाप्त हो जाता है। बस केवल बनाव-शृङ्गार रह जाता है।” इस प्रकार सेक्रेटरी साहब ने शहर की सब स्त्रियों को कूड़ा प्रमाणित करके अपने कर्तव्य का पालन किया।

राजा साहब बोले--“शहर की हिन्दुस्तानी स्त्रियों की अपेक्षा यूरोपियन तथा एंग्लो इण्डियन स्त्रियों का स्वास्थ्य अच्छा होता है।”

“वे मांस खाती हैं इस कारण यद्यपि अन्न वे भी कम खाती हैं, परन्तु अन्न की कमी मांस से पूरी हो जाती है।”

“ठीक कहते हो--यही कारण है। पिछली दफा जब वह एंग्लो-इण्डियन गर्ल बुलबुई थी, कितना अच्छा था उसका स्वास्थ्य ! और शरीर तो इन लोगों का ऐसा होता है मानो साँचे में ढाला गया हो।”

“ये लोग शारीरिक परिश्रम भी तो करती हैं—हिन्दुस्तानी स्त्रियों की भाँति इजीचेयर और पलंग थोड़े ही तोड़ा करती हैं।”

“कल उसी गर्ल को बुलवाना—आज तो चन्दा महारानी आ रही हैं।”

“तो कल क्या न आवेंगी?”

“हाँ आवेगी तो कल भी, कल तो वह स्वयं ही आ धमकेगी।”

“कुछ बढ़ाना कर दीजिएगा।”

राजा साहब कुछ क्षण सोचकर बोले—“यह ठीक है। कह देंगे कि कल कहीं जाना है परसों लौटेंगे।”

“बस!”

“जब चन्दा आ जाय तो मुझ से आकर पूछना कि कल किस समय चलियेगा।”

“यह ठीक है।”

ये दोनों इसी प्रकार की बातें कर रहे थे कि चन्दा आ गई। चन्दा सुन्दरी थी, वयस २४, २५ के लगभग। आते ही उसने राजा साहब के गले में बाँहें डाल दी और कहा—“इस दफा कई दिन में आये।”

“हाँ कुछ ऐसे काम लग गये कि न आ सका।” राजा साहब ने चन्दा की प्रेमचेष्टा का प्रत्युत्तर देकर कहा।

चन्दा के प्रविष्ट होते ही सेक्रेटरी साहब उठकर चले गये थे।

“कितने दिन की छुट्टी लाये हो?” चन्दा ने मुस्कराकर पूछा।

“तीन चार दिन की। कल एक जगह जाना है।”

“कहाँ?” चन्दा ने सशङ्कित होने का भाव दिखाते हुए पूछा।

“हरदोई की तरफ जाना है, परसों लौट आयेंगे।”

“गनीमत है। मैं तो समझी थी कि इस बार बाहर ही बाहर रहोगे।”

“सो कैसे हो सकता है। तुम्हारे लिए तो आये ही हैं।”

राजा साहब ने चन्दा का आलिङ्गन करते हुए कहा ।

थोड़ी देर बाद सेक्रेटरी साहब ने आकर पूछा—“सबेरे किस समय चलियेगा सरकार ?”

“वही नाश्ता-वाश्ता करके आठ बजे तक !”

“बहुत अच्छा ।”

“परसों किस समय लौटोगे ?”

“परसों ? यही दो-तीन बजे तक ।”

इसके पश्चात् टेबुल पर मदिरापान का सामान लगाया गया ।

राजा साहब चन्दा तथा सेक्रेटरी साहब सहित मदिरा पान करने लगे । मदिरापान के साथ साथ हँसी-मजाक भी होता जाता था । सहसा राजा साहब नशे में बहकते हुए बोले—“दलजीत ! हमारी चन्दा भी सैकड़ों में एक है ।”

“सैकड़ों में नहीं हजारों में एक कहिये सरकार !”

“अभी इन बेचारों ने हजारों देखी कहाँ हैं ।” चन्दा मुस्कराकर बोली । सेक्रेटरी साहब हँसने लगे । राजा साहब किञ्चित् झेंपकर बोले—“तुम्हें देख लेने के बाद हजारों को देखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती ।”

“दिखाई भी न पड़ती होंगी-आँखें चकाचौंध हो गईं ।” चन्दा ने हँसते हुए कहा ।

“भगवान जानता है यदि तुम तवायफ (वेश्या) न होतीं तो मैं तुमसे विवाह कर लेता ।”

“तब तो मुझे ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने मुझे तवायफ बनाया ।”

“क्यों ? यह किस लिए ?”

“विवाह हो जाता तो मैं भी महलों में पड़ी भूख मारा करती और सरकार यहाँ किसी दूसरी से रंगरलियाँ मनाते होते ।”

नशे में होते हुए भी राजा साहब चन्दा के इस व्यंग से कट

गये । मुख पर हँसी लाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए बोले—“तुम्हारे साथ मैं भी महल में कैद होकर रहता ।”

चन्दा भी नशे में थी । उसे इस समय यह विचार नहीं रहा था कि क्या कहना चाहिए क्या नहीं । वह बोली—“इसी तरह जैसे कि अब रहते हो ? इससे तो यह मालूम होता है कि सरकार की रानियों में कोई ऐसी नहीं है जिसके लिए सरकार महल में कैद होकर रहे ।”

राजा साहब झेंपते हुए बोले—“बड़ी शरीर हो । अच्छा अब खाना मंगाया जाय ।”

थोड़ी देर में खाना आ गया । तीनों ने एक साथ भोजन किया । चन्दा बोली—“सरकार का बाबर्ची खाना बहुत बढ़िया बनाता है । खाकीना कितना अच्छा बनाया है और परांठे - क्या कहने हैं ।”

“इन परांठों के सामने पूरी कैसी लगे ?” राजा साहब ने पूछा ।

“अजी पूरियों को गोली मारिये । पूरियों में यह बात कहाँ । मुँह में घले जाते हैं ।”

जिस समय भोजन से निवृत्त हुए उस समय रात के दस बज चुके थे ।

राजा साहब चन्दा सहित अपने शयनागार में चले गये । सेक्रेटरी साहब भी अपने कमरे में चले गये । सेक्रेटरी साहब का शयनागार राजा साहब के शयनागार के निकट ही था । राजा साहब के शयनागार के पश्चात् एक छोटा सा कमरा-उसके पश्चात् सेक्रेटरी साहब का शयनागार । छोटे कमरे में दोनों ओर द्वार थे -- अर्थात् राजा साहब तथा सेक्रेटरी साहब दोनों के शयनागार की ओर द्वार थे ।

रात के बारह बजे के पश्चात् जब कि राजा साहब मदिरा के नशे में चूर बेहोशी की सी दशा में निद्रित थे, चन्दा निःशब्दता के साथ उनके पास से उठी और शयनागार से निकल कर छोटे कमरे को लाँघती हुई सेक्रेटरी साहब के शयनागार में प्रविष्ट हो गई ।

एकादशी के दिन से, जब कि शर्मा जी स्वामी जी का प्रवचन सुनने गये थे, उनकी त्रिवेदी जी से घनिष्ठता बढ़ने लगी। प्रवचन के तीसरे दिन सन्ध्या समय शर्मा जी टहलते हुए त्रिवेदी जी के बंगले की ओर जा निकले। त्रिवेदी जी का बंगला छोटा परन्तु साफ-सुथरा था, बंगले के अहाते में फुलवारी भी लगी हुई थी।

सितम्बर मास का अन्तिम सप्ताह चल रहा था। चन्द्रोज्ज्वल आकाश पर बादलों के टुकड़े यत्र तत्र तैर रहे थे। त्रिवेदी जी अपने छोटे से लान पर मेज-कुर्सी लगाये बैठे थे। उनके समीप ही दो राज्य-कर्मचारी बैठे हुए थे। शर्मा जी को आते देख त्रिवेदी जी बोले—
“आइये शर्मा जी !”

शर्मा जी त्रिवेदी जी को प्रणाम करके एक कुर्सी पर डट गये। शर्मा जी के आसीन होते ही वे दोनों कर्मचारी विदा हो गये। त्रिवेदी जी ने पूछा—“क्या घूमने निकले हो ?”

“आप ही के पास आने का विचार करके घर से चला था। यहाँ एक आप ही हैं जिनसे कुछ अच्छी बातें की जा सकती हैं और तो सब अपने अपने मतलब की बात करते हैं।”

“ठीक कहते हो। यहाँ का हिसाब-किताब आज कल बहुत बिगड़ा हुआ है।” त्रिवेदी जी ने कहा।

“आप तो ऐसे रहते हैं जैसे लङ्का में विभीषण !” शर्मा जी ने मुस्कराकर कहा।

“जैसे बत्तीस दाँतों में जीभ ! वह तो कहो कि बड़े महाराज की अन्तिम इच्छा का राजा साहब पालन करके मुझे रखे हुए हैं। अन्यथा अब तक कभी का विदा करा दिया गया होता।”

“बड़े महाराज आपको बहुत चाहते थे ।”

“हाँ ! उन्होंने मेरा मूल्य समझा था । बड़े महाराज बड़े सज्जन थे । आज कल के राजाओं में जो दुर्गुण पाये जाते हैं उनका लेश भी राजा साहब में न था । उन्होंने केवल दो विवाह किये थे । बस ! उन दो रानियों के अतिरिक्त उन्होंने कभी किसी स्त्री को शायद बुरी दृष्टि से भी न देखा हो — ऐसे धर्मात्मा थे ।”

“उनमें से कोई रानी वियमान नहीं है ।”

“नहीं । बड़ी रानी के एक कन्या हुई थी - छोटी रानी से यह वर्तमान राजा हुए । छोटी रानी तो बड़े महाराज के जीवन काल में ही स्वर्ग सिधार गईं थीं । तब बड़ी रानी ने इन्हें पालापोसा । महाराज की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् बड़ीरानी भी स्वर्गलोक पहुँच गईं ।

“और बड़ी रानी से जो कन्या हुई थी वह ?”

“उसका विवाह हो गया — अपनी ससुराल में है ।……के राजा को व्याही गई हैं ।”

“वह राजा साहब से बड़ी होंगी ।”

“हाँ चार वर्ष बड़ी हैं ।”

“हमारे राजा साहब की भी दो रानियाँ हैं ।”

त्रिवेदी जी हँस कर बोले — “हाँ रानियाँ तो दो ही हैं ।”

“इसके अतिरिक्त भी कोई है ?”

“एक है ! अनगनित हैं ।”

“यह बेजा बात है ।”

“बेजा ! आजकल धन का यही उपयोग है । मदिरा और स्त्री, इन्हीं दो में धन का सदुपयोग समझा जाता है । मैं तो जल्दी ही रिटायर होकर अपने देश चला जाऊँगा ।”

“आप कहाँ के रहनेवाले हैं ?”

“अयोध्या का । वहाँ जाकर रामभजन करूँगा । यहाँ का पापा-चार कौन देखे ।”

“बड़ा आश्चर्य है कि स्वामी जी के होते हुए भी यह दशा है।”

“स्वामी जी बेचारे क्या करें। उनका काम तो उपदेश देना मात्र है। कोई उसे न माने तो स्वामी जी क्या करें।”

शर्मा जी ने सोचा—“तब उन्हें यहाँ रहना ही न चाहिए।”

परन्तु मुँह से कुछ न कहा; क्योंकि उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि त्रिवेदी जी स्वामी जी के अन्धभक्त हैं। अन्धभक्त की दृष्टि केवल गुणों पर रहती है, अवगुणों पर नहीं।

शर्मा जी बोले—“क्या बताऊँ, यह दशा जानता तो मैं यहाँ आता ही नहीं।”

“हाँ स्थान तो ऐसा हो है। परन्तु खैर यदि आ गये हो तो रहो। केवल इस बात का ध्यान रखना कि किसी षड्यन्त्र में सम्मिलित न होना। जब तक ऐसा करते रहोगे तब तक तुम पर कोई आँच न आयगी।”

“षड्यन्त्रों से मुझे क्या मतलब।”

“साथ ही किसी से मनोमालिन्य भी उत्पन्न न करना।”

“परन्तु यदि किसी के षड्यन्त्र में सम्मिलित न होने मात्र से ही वह मेरा शत्रु बन जाय तब क्या करूँगा?”

“ऐसा नहीं हो सकता। खामखाह तुम्हें अपने साथ कोई सम्मिलित नहीं करेगा। तुम जब स्वयं प्रयत्न करके सम्मिलित होना चाहोगे तभी सम्मिलित किये जाओगे—वैसे नहीं।”

“यही एक बचत का रास्ता है।” शर्मा जी ने सन्तोष की श्वास लेकर कहा।

त्रिवेदी जी बोले—“एक बात और है—यदि दोनों बच्चे आपसे हिल गये तो फिर कोई शक्ति आपको अलग न कर सकेगी। बच्चे आपसे प्रेम करने लगेंगे तो छोटी महाराणी भी आपसे प्रसन्न रहेंगी और छोटी रानी जिसके अनुकूल हों, उसे भला कौन निकाल सकता है।

“तो यहाँ छोटी रानी ही सर्वोपरि हैं।”

“निस्सन्देह । राजा साहब का हुक्म टाला जा सकता है परन्तु छोटी रानी का हुक्म नहीं टल सकता ।”

“राजा साहब उन्हें बहुत चाहते हैं ?”

“चाहते नहीं, दबते हैं । बड़ी रानी तो विरक्त ली हैं । छोटी रानी ही सब देखती-भालती हैं । उग्र स्वभाव की भी हैं । छोटे घर की हैं न । रानी बनने से दिमाग आसमान पर रहते हैं । इसलिए राजा साहब उनसे दबते हैं ।”

शर्माजी ने कहा—“एक बात और है, जो लोग आचरणहीन होते हैं वे प्रायः अपनी पत्नी से दबे रहते हैं ।”

त्रिवेदी जी बोले—“यह कोई नियम नहीं है । ऐसे भी बहुत लोग हैं जो आचरणहीन होते हुए भी अपनी पत्नी को दबाये रखते हैं ।”

“हाँ, परन्तु वे लोग प्रायः बड़े क्रूर स्वभाव के तथा अत्याचार प्रिय होते । अत्याचार से ही वे अपनी अर्द्धाङ्गिनी को दबाये रहते हैं । जो लोग अत्याचार-प्रिय नहीं होते अथवा अत्याचार कर नहीं पाते उन्हें तो स्वयं ही दबना पड़ता है ।”

त्रिवेदी जी ने पूछा—“आप तो कदाचित् अभी अविवाहित हैं ?”

“जी हाँ ।” शर्मा जी ने उत्तर दिया ।

“तब आप इतनी गूढ़ बात, जो केवल अनुभवजन्य है, कैसे जानते हैं ?”

“मैंने मनोविज्ञान का अध्ययन किया है, उसी के अनुसार मेरी ऐसी धारणा है ।”

“ठीक है ! आपकी धारणा अधिकाँश ठीक है ।”

“एक बात पर मुझे प्रायः आश्चर्य होता रहता है और वह यह कि राजा साहब को सभी सुख प्राप्त हैं, फिर क्या कारण है कि वह मदिरा तथा कामिनी के लिए इतने लालायित रहते हैं ।

त्रिवेदी जी मुस्कराये । उन्होंने कहा—“इसको आपने मनोविज्ञान

की दृष्टि से समझने का प्रयत्न नहीं किया ? देखिये—मनुष्य दैनिक जीवन के अतिरिक्त अपनी वचिके अनुसार कोई मनोरंजन चाहता है। जो बात दैनिक जीवन में प्रविष्ट हो जाती है वह साधारण बात हो जाती है—उससे मनोरंजन नहीं होता। हम आप राजा साहब के दैनिक जीवन को भी बड़ा आनन्द तथा सुख का जीवन समझते हैं। क्यों ? इसलिए कि राजा साहब के लिए जो बात साधारण है, दैनिक जीवन की है, वह हमारे दैनिक जीवन में न होने के कारण हमारे लिए असाधारण है, आकर्षक है। इसलिए हम समझते हैं कि यदि राजा साहब जैसा रहन-सहन हमारा हो जाय तो फिर हमें सब सुख प्राप्त हो जाँय—फिर कोई कामना न रहे। इसी प्रकार राजा साहब को भी अपने दैनिक जीवन के अतिरिक्त असाधारण बातों में आनन्द मिलता है। अतः वह उन बातों की कामना किया करते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए काफी रुपया खर्च कर देते हैं। यह मनुष्यस्वभाव है। ऐसे जीव कम हैं जो थोड़े में ही सन्तोष कर लेते हैं। जो इस प्रकृति के होते हैं वे जिस स्थिति में होते हैं उसी में मस्त रहते हैं, चाहे वे राजा हों अथवा साधारण व्यक्ति। हम साधारण भोजन करनेवाले तर माल खाने में सुख मानते हैं, केवल इसलिए कि वह हमें कभी कभी प्राप्त होता है। परंतु जिन्हें नित्य ही तरमाल खाने को मिलते हैं अर्थात् तरमाल जिनका दैनिक आहार है उन्हें कौनसी वस्तु खाने में आनन्द मिल सकता है—इसकी कल्पना करना हमारे-आपके लिए जरा कठिन काम है। सम्भवतः उन्हें अद्भुत तथा नवीन प्रकार के खाद्य पदार्थ ही सुस्वाद मालूम पड़ते हैं। इस कारण वे उनकी प्राप्ति के लिए अधिक धन व्यय करते हैं। इसी प्रकार अन्य बातों को भी समझ लीजिए।”

“ठीक है। यही बात है।”

“और वैसे जो पूछिये तो सब मनका खेल है। मन जिसमें सुख समझता है वह सुख और जिसमें दुःख समझता है वह दुःख। कहा भी है—अनुकूलवेदनीयं सुखं, प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्। किसके प्रतिकूल-

नुकूल ? मनके ! मनके जो अनुकूल है वह सुख है, मनके प्रतिकूल दुःख ।

“यथार्थ है । यही कारण है कि भिन्न लोगों की मनःकामना भिन्न भिन्न होने से सुख-दुःख भी भिन्न भिन्न हैं । एक व्यक्ति जिसमें दुःख मानता है दूसरा उसी में सुख का अनुभव करता है ।”

“बेशक ! इसीलिए संसार में कोई निश्चित सुख नहीं है ।”

“और दुःख निश्चित है ?”

“दुःख तो कुछ निश्चित है । दैविक, भौतिक, आध्यात्मिक दुःख तो सब को समान ही होते हैं । ज्वर से सबको दुःख मिलता है चाहे वह राजा हो अथवा रंक ! चोट लगने से सभी को दुःख मिलता है । दैविक दुःख वे कहलाते हैं जो अग्नि-वायु, पृथ्वी-जल से मिलते हैं, जैसे आग लग जाना, बाढ़ आ जाना, आँधी से दुःख मिलना, भूडोल इत्यादि इत्यादि ! भौतिक वे हैं जो दुष्ट मनुष्यों तथा हिंसक जन्तुओं इत्यादि से प्राप्त होते हैं । आध्यात्मिक वे हैं जो अपने शरीर में रोग उत्पन्न होने से प्राप्त होते हैं । इनका अर्थात् तीनों का नाश हो जाना ही सुख शान्ति है । यह सांख्य दर्शन का मत है । ‘त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुण्यार्थः’ अर्थात् इन तीनों के नाश का प्रयत्न ही पुण्यार्थ कहलाता है । यह सांख्य दर्शन का प्रथम सूत्र है ।”

“ठीक है !”

कुछ देर दोनों मौन रहे । तदुपरान्त शर्मा जी ने कहा—“आपके यहाँ भी बिजली नहीं है ।”

“बिजली केवल महल तथा अन्य सरकारी इमारतों तथा दफ्तरों में है और कहीं नहीं है । केवल दो डाइनमो हैं । एक दिन में चलता है दूसरा रात में । वे इतने शक्तिशाली नहीं हैं कि अधिक विद्युत् उत्पन्न कर सकें । राजा साहब का इरादा है कि दो अधिक विद्युदुत्पादन करनेवाले यन्त्र मँगवें—देखो कब मँगते हैं ।”

“राजा साहब के यहाँ घोड़े तो शायद नहीं हैं ?”

“हैं वयों नहीं। दस-बारह घोड़े हैं, बारह बैस और बीस गाय हैं।”

“मैंने राजा साहब को घोड़े पर सवार कभी नहीं देखा।”

“कभी छूटे-छुमाहे सवारी कर लेते हैं। वह भी जब शिकार-विकार को जाते हैं। अन्यथा उन्हें ‘कार’ का ही शौक है। प्रायः शिकार खेलने भी कार पर ही जाते हैं।”

“तो घोड़े बंधे ही रहते होंगे। परन्तु ‘बाजिनां बन्धनं जरा’ घोड़े बंधे रहने से नष्ट हो जाते हैं।”

“नहीं! घोड़ों के साईस नित्य सवारी लेते हैं और काफी घुमा लाते हैं।

“कारें भी कई होंगी ?”

“हाँ, छोटी बड़ी मिला कर दस कार हैं।”

“कुछ ठिकाना है। कितना रुपया व्यर्थ फूँकते हैं ये लोग।”

✓ “धन की केवल तीन गति हैं - दान, भोग और नाश! सो हमारे राजा साहब का रुपया इन तीनों बातों में व्यय होता है। वह तो कहो मैं राजा साहब को सावधान करता रहता हूँ अन्यथा राज्य पर अण हो जाय। मेरी बात राजा साहब मानते भी हैं। बस इसी लिए मैं यहाँ टिका हुआ हूँ। अन्यथा एक मिनट न रहूँ।”

“आपका व्यक्तित्व धन्य है। कम से कम राज्य में एक आदमी तो ऐसा है जो राजा साहब पर अंकुश रखता है।”

“क्या कहूँ। मैं राजा साहब से स्नेह करता हूँ -- उनका बचपन मेरे सामने ही बीता है। मैं उन्हें आपद्मस्त नहीं देख सकता। इसीलिए मुझे उन पर अंकुश रखना पड़ता है।”

“राजा साहब को भी इतना श्रेय है कि वह आपकी बात मानते हैं।”

“राजा साहब सुशिक्षित व्यक्ति हैं। परन्तु आखिर हैं तो राजा

ही। राजाओं का चित्त कुछ अव्यवस्थित रहता ही है। क्षणे क्षणे तुष्टः। इसके अतिरिक्त जो लोग रात दिन उनके चारों ओर रहते हैं वे उनकी किसी भी अच्छी बुरी इच्छा का विरोध न करके उसका अनुमोदन ही करते हैं। उनको भय रहता है कि कहीं प्रतिकूल परामर्श देने से राजा साहब क्षण न हो जाय। अन्यथा यदि उनका कोई हितैषी दृढ़तापूर्वक उनको उचित परामर्श दे तो राजा साहब सर्वथा उसकी उपेक्षा नहीं करते, उस पर ध्यान अवश्य देते हैं।”

“इतनी बात अच्छी है।”

“हाँ ! परन्तु उनकी इस अच्छाई का सदुपयोग नहीं हो पाता, अधिकतर दुरुपयोग ही होता है। उनके सहचर उनकी प्रवृत्ति को अच्छे कार्य की ओर न लगा कर बुरे कार्यों की ओर लगाते हैं; क्योंकि इसमें सहचरों का लाभ है। राजा साहब शराब पियेंगे तो सहचरों को भी मिलेगी। यदि राजा साहब शराब पीना छोड़ दें तो सहचरों को भी छोड़नी पड़ेगी। यह बात दूसरी है कि राजा साहब से छिपा कर पीलें, परन्तु राजा साहब के साथ पीने-खाने में जो स्वतन्त्रता है, जो आनन्द है वह चुरा-छिपा कर अपने-पैसे से पीने-खाने में कहाँ मिल सकता है। न वैसी बढ़िया चीज मिल सकती है और न उसे भोगने की स्वतन्त्रता।”

“स्वामी जी की तो बात मानते होंगे।”

“स्वामी जी कुछ राजा साहब के सहचर नहीं हैं। स्वामी जी से तो उनकी भेंट प्रायः दिन में एक बार सबेरे कुछ क्षणों के लिए होती है। वह जब यहाँ रहते हैं तो नित्य सबेरे स्वामी जी के चरण छूने जाते हैं—केवल दस-पन्द्रह मिनिट के लिए। उतनी देर में स्वामी जी का क्या प्रभाव पड़ सकता है। कभी कभी प्रवचन सुनने चले आते हैं, केवल इतने से स्वामी जी का क्या प्रभाव पड़े। इधर उपदेश सुन कर गये उधर सहचरों ने पुनः उनके मनको भटक दिया।”

रामा जी ने सोचा —“स्वामी जी कुछ हैं नहीं, केवल जबानी जमा खर्च करना जानते हैं। यदि उनमें कुछ आध्यात्मिक शक्ति होती तो राजा साहब पर अवश्य प्रभाव पड़ता। प्रकट में त्रिवेदी जी से कहा— ‘कोरे उपदेशों से क्या होता है। यदि कोरे उपदेशों से सुधार हो जाना सम्भव होता तो आज संसार का रूप कुछ और ही होता कोरे उपदेश से केवल जिज्ञासु को ही लाभ पहुँचता है - अर्थात् जो इस बात की खोज में रहता है कि उसे कोई सदुपदेश देने वाला मिले। वह अपना लक्ष्य जानता है परन्तु उस तक पहुँचने का उपाय नहीं जानता। अतः जब कोई उसे उपाय बताता है, चाहे वह कोरा उपदेश रूपी ही हो, तो वह उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करता है।’

“यही बात है। राजा साहब में जिज्ञासा का तो सर्वथा अभाव ही है।”

ये लोग ये बातें कर रहे थे कि आकाश में बादल घने हो गये और बूँदें पड़ने लगीं। त्रिवेदी जी ने नौकर को पुकारा और स्वयं खड़े होकर कहा—“पानी आ गया। बरामदे में बैठें।”

मदन मोहन ने आकाश की ओर देखकर कहा—बादल घने हो रहे हैं। मुझे भी आज्ञा दीजिए ! अभी भोजन-बोजन करना है।

“जाइयेगा ? अच्छा ! आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।”

“मुझे आप पर बड़ी श्रद्धा है त्रिवेदी जी और मेरा विश्वास है कि आप के सत्सङ्ग से मुझे बड़ा लाभ पहुँचेगा।”

त्रिवेदी जी विनम्रतापूर्वक बोले—‘यह आपका अनुग्रह है। मेरे अनुभव से यदि आप को लाभ हो तो मुझे बड़ी खुशी होगी।’

“अवश्य लाभ होगा। बड़े-बूढ़ों के अनुभव बड़े मूल्यवान होते हैं। अच्छा प्रणाम !”

रामाजी घर आये तो विचारमग्न थे। उसी अवस्था में भोजन किया और लेट गये। लेटते तब भी विचारमग्न थे। सोच रहे थे कि यदि

वह राजा साहब के अधिक निकट पहुँच सकें तो राजा साहब का सुधार करने में अपनी सारी शक्ति लगा दें। इसी विचार में अनेक प्रकार की योजनाएँ बना डालीं। यदि राजा साहब उनका परामर्श मानने लगे तो फिर ऐसा प्रबन्ध किया जाय, इस तरह कार्य किया जाय, ऐसे सुधार किये जाँय। इसी प्रकार बहुत रात गये तक पड़े सोचते और करवटें बदलते रहे। इसके पश्चात् सो गये।

प्रातःकाल उठे तो रात के अन्धकार में जो दवाई किले बनाये थे दिन के प्रकाश में वे सब विलीन हो गये और वास्तविकता सामने दिखाई पड़ने लगी कि वह केवल एक प्राइवेट डॉक्टर हैं और इन अवस्था में राजा साहब के इतना निकट पहुँच जाना जिससे कि राजा साहब पर बुद्ध प्रभाव डाला जा सके यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इस ज्ञान के उदय होते ही उन्होंने सोचा--“हमें क्या करना है। जब तक हैं तब तक हैं--न जाने किस दिन अलग कर दिये जाँय। अतः अपने काम से काम रखना चाहिए।”

इधर उनकी बुआ जी ने जो रात में उन्हें विचारमग्न तथा करवटें बदलते देखा तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसका अर्थ लगाकर मदन मोहन से बोलीं--“बेटा मदन, अब तो भगवान की दया से हमें रहने-दौठने का ठिकाना हो गया, अब तुझे अपना विवाह कर डालना चाहिए। भाई जी होते तो क्या तू इतने दिन कुँवारा बैठा रहता। बेटा अब तो तुम्हीं को सब करना पड़ेगा।”

मदन मोहन ने मुस्कराकर कहा--“बिवाह की क्या जल्दी है बुआ जी, जब कोई लड़की ठीक-ठिकाने की मिल जायगी तो कर डालूँगा।”

यह कहते हुए मदन को स्नेहलता का ध्यान आया। उसने सोचा कौन जाने उससे अब भेंट भी या नहीं--बिवाह की बात तो बहुत दूर की है। कालेज जीवन की बातें, स्नेहलता से किये हुए अपने वादे,

अपने प्रति उसकी भावनाएँ इत्यादि सब हासास्पद बच्चों का खेल प्रतीत हो रही थीं। परन्तु स्नेहलता के प्रति उसका प्रेम अब भी वैसा ही था।

उसकी बुआ ने कहा—“लड़की तो हूँ देने से मिलेगी।”

“लड़की तो कोई हूँ देता नहीं बुआजी, लड़का ही हूँ देता जाता है।”

“यह तो ठीक है, पर अपनी अपनी गरज भी तो होती है। जिसे गरज होती है वह हूँ देता है चाहे लड़की वाला हो या लड़के वाला।”

“तुझे अभी ऐसी गरज नहीं है।”

“गरज होनी चाहिए—फिर क्या बुढ़ापे में बिवाह करेगा?”

“ओहो! तो कौन साल दो साल में मैं बुढ़ा हुआ जा रहा हूँ। साल दो बरस में हो ही जायगा।”

“खैर जैसा तुझे उचित जान पड़े। मेरा तो यही विचार है कि अब तुझे व्याह कर लेना चाहिये।”

“तो किससे कर लूँ कोई है सामने?”

“जब करना चाहेगा तो सामने भी आजायगी।”

“जब आजायगी तब कर डालूँगा।”

बुआजी चुप हो गईं। मदन मोहन ने सोचा—“आज बुआजी को मेरे बिवाह की इतनी चिन्ता कैसे उत्पन्न हो गई।” सोचते सोचते उसे ध्यान आ गया कि रात को उसे जागते और करवटें बदले देख बुआजी कदाचित् यह समझीं कि स्त्री के अभाव के कारण मेरी यह दशा है। यह विचार आते ही वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। बुआजी ने पूछा—“क्यों, हँसने की क्या बात थी।”

मदन मोहन बोला—“एक और बात याद आ गई।” यह कह कर वह बुआ के सामने से टल गया।

बड़ी रानी महल के जिस भाग में रहती थी उसमें आठ कमरे थे। इन्हीं आठ कमरों में रानी का निवास था। इन आठ कमरों के अतिरिक्त एक पूजागृह भी था, जिसमें रानी ने कृष्ण भगवान की एक सुन्दर मूर्ति स्थापित कर रखी थी। इसी पूजा गृह में बैठकर रानीजी भजन-पूजन किया करती थीं।

छोटी रानी का भाग बड़ी रानी से अधिक था-उसमें बारह कमरे तथा एक पूजा गृह था। इन कमरों में एक बच्चों का ब्रीड़ा-गृह भी था। इस ब्रीड़ा-गृह में अनेक प्रकार के खिलौने सजे हुए थे। गुड़ियाँ, मकान बनाने के लकड़ी तथा पत्थर के सेट, बेगटेल, बिजली की रेलगाड़ी, चाबीदार मोटरें तथा अन्य खिलौने, मिक्लेनो सेट, मेजिक लालटेन तथा अन्य अनेक प्रकार के खेल खिलौने थे। चीजें एक बड़ी मेज पर लगी हुई थी, कुछ अल्मारियों में रखी थीं। कमरा काफी लम्बा चौड़ा था इस कारण बच्चों को खेलने की खूब सुविधा थी। इस प्रकार यह कमरा बच्चों का स्वर्ग था। यह उगी समय तक खुला रहता था जब तक कि इसमें बच्चे खेला करते थे-उसके पश्चात् यह बंद कर दिया जाता था। बच्चों का साथ होने के कारण छोटी रानी ने अधिक कमरे अपने अधिकार में ले रखे थे। बड़ी रानी अकेली थी अतः वह आठ कमरों से ही संतुष्ट थी। एक कमरा शयनागार था। इसमें दो मसहरीदार मूल्यवान पलंग थे। दो छोटी मेजें और चार कुर्सियाँ थीं। कुर्सियाँ मखमली गद्देदार थीं। कमरे में चारों ओर खिड़कियाँ थी, जिनमें फागड (अपार दर्शक) शीशे बने हुए थे और पर्दे लगे थे। इस कमरे में हरी तथा सफेद बिजली की

वस्तियाँ थीं। एक शृङ्गार गृह था। इस शृङ्गार गृह में एक ओर एक बड़ी शृङ्गार मेज जिस पर अनेक प्रकार के सुगंधित तेल, क्रीम, पाउडर, सेंट इत्यादि सजे हुए थे, लगी हुई थी। एक ओर बड़े बड़े अनेक ट्रंक रखे थे। शृङ्गार मेज तथा अलमारियों में तो दर्पण थे ही इनके अतिरिक्त एक पाँच फीट लम्बा, तथा तीन फीट चौड़ा आइना अलग रखा था। इसी कमरे से लगा हुआ स्नानगृह था। इस स्नान गृह में दो द्वार थे, एक शृङ्गार गृह की ओर तथा दूसरा शयनागार की ओर। एक कमरे में, जो छोटा था, दो गाडरेज सेक तथा दो गाडरेज अलमारियाँ थीं। इस कमरे में रानी के जेवर तथा रुपया रहता था। इस कमरे में केवल एक खिड़की थी। वैसे तो अन्तःपुर की सब खिड़कियों में लोहे की सलाखें (सीखचे) लगी हुई थीं, परन्तु इस कमरे की खिड़की के सीखचे मोटे तथा सुदृढ़ थे। इसका प्रवेश द्वार भी लोहे का और काफी मजबूत था। एक बड़ा कमरा बैठने-उठने के लिए था। इसमें मूल्यवान कुर्सी तथा कौच के सेट लगे हुए थे। छोटी छोटी सुन्दर मेजें जिनपर गुलदस्ते सजाए हुए थे-यथास्थान रखी थीं। एक ओर दो अलमारियाँ थीं जिनमें इसी कमरे की सजावट का कुछ सामान था। फर्नीचर, कालीन, द्वार तथा खिड़कियों के पर्दे कमरे की दीवारों; सब एक रंग अर्थात् हल्के नीले रंग के थे। छोटी रानी के कमरे का रंग हल्का नारंगी था। इस कमरे के अतिरिक्त एक छोटा कमरा रानी की निजी बैठक थी। इसमें केवल एक कौच तथा दो कुर्सियों का सेट लगा हुआ था। दो छोटी षट्कोण मेजें रखी थीं। एक ओर दो अलमारियाँ थीं जिनमें पुस्तकें चुनी हुई थीं। छोटी रानी के कमरे में चार अलमारियाँ थीं, क्योंकि उन्हें पढ़ने का शौक बड़ी महारानी से अधिक था। बड़ी महारानी धार्मिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकें पढ़ती थीं। बड़ी महाराणी अँगरेजी भी जानती थीं। इसलिए अङ्गरेजी पुस्तकें भी उनके पास थीं। छोटी महाराणी भी थोड़ी थोड़ी अङ्गरेजी पढ़ लेती थी। महाराजा साहब ने उनको पढ़ाने के लिए कुछ दिन एक प्रोज्युएट हिन्दू महिला रखी थी।

उसने छोटी रानी को साधारण अंग्रेजी पढ़ना-लिखना सिखा दिया था। बड़ी रानी की योग्यता अधिक थी। वे अङ्ग्रेजी की साहित्यिक पुस्तकें भी समझ लेती थी। छोटी रानी को अङ्ग्रेजी पुस्तकों से प्रेम नहीं था। केवल अङ्ग्रेजी पत्र तथा मेगजीन (मासिक-पत्र) देख लिया करती थीं। उन्हें हिन्दी उपन्यास पढ़ने का शौक अधिक था।

छोटी रानी तथा बड़ी रानी में कोई व्यावहारिक मनोमालिन्य नहीं था। दोनों परस्पर मिलती थीं, बैठ कर बात करती थीं। दोनों चच्चे भी बड़ी रानी से खूब हिले हुए थे। ये सब बातें थीं, तथापि कुछ आन्तरिक खिचावट भी थी। इसका एक कारण यह भी था कि छोटी रानी में कुछ दर्प तथा अहङ्कार का भाव था। बड़ी निरभिमान सीधी तथा सरल थीं—यद्यपि गुरुता का जो तेज बड़ी रानी के मुख पर था उसका छोटी रानी में अभाव था। छोटी रानी के सुन्दर मुख पर कुछ छिछोरापन झलकता था। सुन्दर बड़ी रानी भी थीं; परन्तु बड़ी रानी का सौन्दर्य एक देवी का सौन्दर्य था जिसके सामने कामवासना के पैर काँपने लगते थे और छोटी रानी का सौन्दर्य एक कामिनी का सौन्दर्य था जिसके सन्मुख काम वासना को बल तथा स्फूर्ति मिलती थी।

दो पहर का समय था। बड़ी रानी अपने प्राइवेट रूम में बैठी श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर रही थी। इसी समय एक दासी ने आकर कहा—“छोटी महाराणी आ रही हैं।”

“आने दो।” कह कर बड़ी रानी अपने कार्य में लगी रहीं।

कुछ क्षण पश्चात् छोटी रानी आ गईं। आते ही उन्होंने किञ्चित् मुस्कराकर पूछा—“क्या हो रहा है जीजी?”

बड़ी रानी प्रन्थ बन्द करते हुए बोलीं—“कुछ नहीं, ऐसे ही जरा भागवत पढ़ रही थी।”

छोटी रानी कौंच पर फैल कर बैठ गईं और बोलीं—“मेरा जी ऐसी पुस्तकों में नहीं लगता, न जाने क्या बात है।”

बड़ी ने मुस्कराकर कहा—“जब भगवान की दयादृष्टि होगी तब भी लगेगा ! बिना उनकी कृपा के कुछ नहीं होता ।”

छोटी रानी ने कोई उत्तर न दिया । वह विचार मग्न हो गई । उनके मुखमण्डल पर कुछ उद्विग्नता का भाव था । इसको लक्ष्य करके बड़ी रानी ने पूछा — “क्या बात है ज्योत्सना - कुछ चिन्तित दिखाई पड़ता हो ?”

छोटी का असली नाम तो कुछ और था परन्तु राजा साहबने उनका नाम ज्योत्सना कुंवरी रख दिया था । ज्योत्सना बोली — “क्या बताऊँ जीजी, कुछ कहते नहीं बनता ।”

“क्या बात है कुछ मालूम भी तो हो ।” बड़ी ने आप्रद पूर्वक कहा ।

“कल लखनऊ गये हैं ।”

“कोई काम आ गया होगा ।”

“काम-वाम तो क्या, उसी कल मुँहा चन्दा से मिलने गये होंगे ।”

“गये हैं तो जाने दो । हम-तुम कर हाँ क्या सकते हैं बहिन ।”

“तुम जीजी सहन कर सकती हो, भगवान ने तुम्हें शान्ती दी है, परन्तु मुझ से सहन नहीं होता - ध्यानमात्र से तन-बदन में आग सा लग जाती है ।”

“व्यर्थ मैं अपना रक्त जलाती हो ज्योत्सना ! हम रानियों का प्रारब्ध ही ऐसा है । हमारे श्रेणी की स्त्रियों में कदाचित ही कोई ऐसी भाग्यवान निकले जिसे सौत का जलापा न सहन करना पड़ता हो—अन्यथा सब जगह यही दशा है ।”

“क्या बताऊँ ! और सब तरह का सुख प्राप्त है, कोई अभाव नहीं, परन्तु यह एक ऐसा घुन है जो सुख-शान्ति से बैठने नहीं देता इस यत्रन्णा के आगे यह सब सुख तथा वैभव नीरस प्रतीत होता है ।”

“सो तो अवश्य होता होगा ।”

“परन्तु इसका कुछ उपाय भी है जीजी ?”

“उपाय है, परन्तु तुम्हारे लिए वह कष्टसाध्य है। उपाय यह है स्वामी के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए ईश्वर भजन में ध्यान लगाओ, फिर देखो कैसी सुख शान्ति प्राप्त होती है। यह जीवन नाशवान है, जगत नाशवान है। इसमें चित्त लगाने से दुःख ही मिलेगा। चित्त उसमें लगाना चाहिए जिसका कभी नाश न हो और वह केवल ईश्वर है।”

“बात तो ठीक कहती हो जीजी ! स्वामी जी भी ऐसे ही उपदेश देते रहते हैं परन्तु मैं क्या करूँ - ये सब मेरे गले के नीचे नहीं उतरते। मेरे चित्त में लालसाएँ हैं - उमंगें हैं। जब तक चित्त से वे न निकल जाँय तब तक उसमें दूसरे को स्थान नहीं मिल सकता।”

“ठीक कहती हो, पर उनको निकालने का प्रयत्न करो बहिन।”

“मैं उनकी हत्या नहीं कर सकती, मैं उन्हें अपनी मौत मरने देना चाहती हूँ।”

“अपनी मौत तो वे तभी मरेंगी जब तुम्हारी तृप्ति हो जायगी।”

“बात तो यही है।”

“परन्तु ऐसा होना बड़ा कठिन दिखाई पड़ता है। तुम एक असम्भव बात की कामना कर रही हो।”

“मैं कोई असंभव बात नहीं चाहती जीजी ! मैं केवल इतना चाहती हूँ कि वह तुम्हारे और मेरे हो कर रहें - तीसरी किंसा पर दृष्टि न डाले।”

“यही बात तो असम्भव है बहिन।”

“मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें असंभावना क्या है।”

“असंभावना यही है कि महाराज ऐसे कभी न बन सकेंगे।”

“क्यों नहीं बन सकते ? जब वह मेरा इतना लाव-प्यार करते हैं, मेरी बात मानते हैं, मुझे उन्होंने पूरे अधिकार दे रखे हैं तब इतनी बात करने में क्या कठिनाई है। यदि वह इतना नहीं कर सकते तो मुझे यह मानने के लिए विवश होना पड़ेगा कि वह मुझ से प्रेम नहीं करते—केवल प्रेम का नाटक खेलते हैं।”

“अनेक स्त्रियों की आकांक्षा करने वाला प्रत्येक पुरुष प्रेम का नाटक ही खेलता है -- सच्चा प्रेम किसी से भी नहीं करता।”

“यही सोच कर तो मेरा रक्त खौलता है।”

“व्यर्थ रक्त खौलाती हो। ऐसा करने से तुम्हीं को क्लेश होगा, तुम्हारे ही स्वास्थ्य को धक्का लगेगा। महाराज का क्या बिगड़ेगा?”

छोटी का मुख मरडल रक्तवर्ण हो गया। वह आवेश के साथ बोली—“उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा, मैं दुःखी रहूँगी, उदास रहूँगी, मेरा स्वास्थ्य गिरेगा -- तब भी उनका कुछ न बिगड़ेगा?”

“मेरा तो ऐसा ही विचार है कि न बिगड़ेगा। वह तुम्हारी ओर से उदासीन हो कर किसी अन्य से जी बहलायेंगे। जिस कार्य के लिए उन्होंने तुम से विवाह किया, वह कार्य पूरा हो गया -- अर्थात् राज्य का उत्तराधिकारी उत्पन्न हो गया। इसी लिए मैंने भी उन्हें तुम से विवाह करने की अनुमति दी थी -- अन्यथा मैं उन्हें दूसरा विवाह ही क्यों करने देती। ऐसी दशा में अब उन्हें हमारी-तुम्हारी आवश्यकता हो क्या रह गई, यह बताओ।”

“बात तो ठीक कहती हो जीजी!” ज्योत्सना ने दीर्घश्वास लेकर कहा।

“जब बात ठीक है तो उसके लिए चिन्ता करना भी व्यर्थ है। इस परिस्थिति में रह कर जिस प्रकार सुख शान्ति मिले वह करना चाहिए।”

“प्रयत्न करूँगी जीजी!” छोटी ने नैराश्यपूर्ण स्वर में कहा।

“ईश्वर तुम्हें सफलता दे। मुझी को देख लो। मुझसे तो यहाँ रहने पर भी वह कभी मिलते हैं, तुमसे तो नित्य भेंट होती है, तुम्हारे पास रहते ही हैं; परन्तु इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। जब कभी मेरे पास आ जाते हैं तो मैं उनकी सेवा करती हूँ, एक पत्नी की भाँति उनका चित्त प्रसन्न करने का प्रयत्न करती हूँ। जब नहीं आते तो मुझे कोई दुःख तथा क्लेश भी नहीं होता। वह प्रसन्न रहें, चिरंजीव रहें, चाहे जहाँ रहे। बस,

इतनी मेरी कामना अवश्य रहती है और किसी बात से मुझे सरोकार नहीं। वह चाहे जो करें, चाहे जहाँ रहें।”

‘मुझे भी अपने जैसा बना दो जीजी, तुम्हारा जन्मभर एहसान मानूँगी।’

‘इसमें एहसान की क्या बात है ज्योत्सना—इसे तो मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ; परन्तु अभी समय नहीं आया है। तुम निराश नहीं हुई हो। तुम्हें अब भी आशा है कि तुम उनको अपनी इच्छानुकूल बना सकोगी। जिस दिन तुम्हें इस ओर से पूर्ण निराशा हो जायगी उस दिन तुम मेरे जैसी बनने के योग्य हो जाओगी।’

‘हाँ जीजी ! यह तो तुम ठीक कहती हो। अभी मैं पूर्णतया निराश नहीं हुई हूँ।’

बड़ी मुस्कराकर बोली—‘मैं यह बात समझती हूँ इसीलिए मैंने कहा कि अभी समय नहीं आया है।’

ज्योत्सना ने कोई उत्तर न दिया, विचारमग्न हो गई।

बड़ी ने बात का प्रसङ्ग बदलने के लिए पूछा—‘बच्चे क्या सो रहे हैं?’

‘खेलगृह में घुसे हैं।’

‘पढ़ते तो सुबह-शाम हैं।’

‘हाँ सुबह नौ बजे से बारह बजे तक, शाम को चार बजे से छः बजे तक।’

‘मास्टर तो अच्छा ही होगा।’

‘हाँ ! मालूम तो अच्छा होता है। बच्चे उससे हिल गये हैं।’

‘बालबच्चेदार होगा?’

‘सो तो सुना है कि अभी विवाह तक नहीं हुआ। अभी २२-२४ वर्ष की उम्र है। वह है और उसकी विधवा बुआ—बस।’

‘तब तो लड़का ही समझो।’

‘हाँ और क्या । परन्तु पढ़ाता बड़े प्यार से है—बच्चे उससे खूब हिल गये हैं ।’

“भलामानस है ?”

“हाँ, आदमी तो भला है !”

‘तब ठीक है । भला आदमी होना चाहिये, चाहे जवान हो या बुढ़ा ।’

“इसी बात का ध्यान रख कर उसे रखा है ।”

कुछ क्षण दोनों मौन रही । तत्पश्चात् छोटी रानी बोली—“हम लोगों का जीवन भी क्या जीवन है । कोई स्वतन्त्रता नहीं । न कहीं स्वतन्त्रतापूर्वक आजा सकती हैं, न घूम फिर सकते हैं । हाँ घर के अन्दर का सुख प्राप्त है । परन्तु केवल इतने से ही सन्तोष नहीं होता । हमारे आदमी तक हमारे वश के नहीं ।” यह कह कर छोटी ने लम्बा साँस छोड़ा । बड़ी रानी बोली—“जैसा प्रारब्ध होता है, वैसा ही भोग मिलता है ।”

“तुम प्रारब्ध को मानती हो जीजी ?”

“क्यों न मानूँगी ।”

“बहुतेरे तो नहीं मानते । उनका कहना है कि भाग्य कोई चीज नहीं ।”

“भाग्य वास्तव में कोई चीज नहीं ।”

“तब प्रारब्ध क्यों मानती हो ?”

“प्रारब्ध तो बात ही दूसरी है । प्रारब्ध तो उन कर्मों को कहते हैं जिनका फल मिलना आरम्भ हो चुका है । प्रारब्ध हमारे अपने कर्मों से ही बनता है । जैसे अच्छे-बुरे कर्म किये जाते हैं वैसा ही अच्छा-बुरा प्रारब्ध बनता है । कर्म तीन प्रकार के होते हैं—संचित, प्रारब्ध तथा कियमाण । संचित कर्म उनको कहते हैं जो हमने वर्तमान अथवा पूर्व जन्म में किये हैं और जिनका फलभोग मिलना है । प्रारब्ध कर्म संचित कर्मों का वह अंग है जिनका भोग आरम्भ हो चुका है ।

क्रियमाण वे हैं जो हम आगे करेंगे। प्रारब्ध कर्मों को कोई भी नहीं टाल सकता—ईश्वर भी नहीं। भाग्य बात दूसरी है। लोग भाग्य उसे मानते हैं जो ईश्वर की इच्छानुसार हमारे लिए निश्चित हो चुका है। परन्तु सच पूछो तो हमारा भाग्य ईश्वर स्वेच्छापूर्वक नहीं बनाता, बल्कि वह तो हमारे कर्मों के अनुसार बनता है। ईश्वर उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता।”

“तब तो ईश्वर सर्वशक्तिमान न हुआ।”

“सर्वशक्तिमान तो वह है।”

“तब फिर हमारा भाग्य अथवा प्रारब्ध वह क्यों नहीं बदल सकता।”

“इसलिए कि कर्मफलप्राप्ति का नियम उसी का बनाया हुआ है। नियम बनानेवाला स्वयं ही अपने नियम क्यों तोड़ेगा?—विशेषतः जबकि नियम तोड़ने में ईश्वर का अपना कोई स्वार्थ नहीं है।”

“परन्तु स्वामी जी तो एक दिन कह रहे थे कि भगवान् भक्तों के लिए अपना नियम बदल देते हैं।”

“ऐसा प्रकट में प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में उन भक्तों का प्रारब्ध ही ऐसा होता है—लोग समझते हैं कि भगवान् ने सहायता की। यदि भक्त के लिए भगवान् नियम बदलते होते तो ईसा मसीह को शून्नी न दी जाती, मन्सूर का शरीर टुकड़े-टुकड़े न किया जाता, सन्तजान का सिर न काटा जाता, वशिष्ठ जी के पुत्र विश्वामित्र द्वारा न मारे जाते, सीता को रावण के गृह में तथा राम द्वारा त्यक्त होने पर बनवास में न रहना पड़ता। ये सब भगवान् के परम भक्त थे। ऐसे पचासों उदाहरण हैं।”

“ईसा मसीह और मन्सूर भी भगवान् के भक्त थे?”

“हाँ क्यों?”

“ये लोग तो विधर्मी थे।”

“तो इससे क्या हुआ। ईश्वर को तो मानते थे। ईश्वर किसी

धर्मविशेष की बपौती नहीं है। सच्चे, भले, ईमानदार, दयालु इत्यादि गुणों से विभूषित मनुष्य सब धर्मों में होते हैं, इसीलिए कृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है—‘स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः’ अपने धर्म में मरना भी अच्छा है, परधर्म भयानक है। अर्थात् अपने धर्म में रहने से यदि मृत्यु का भी सामना करना पड़े तो अच्छा है, परधर्म में यदि सर्वसुख भी प्राप्त हों तब भी वह अच्छा नहीं है। यह बात सब धर्मों पर लागू है। इससे प्रमाणित होता है कि सब धर्मों में रहकर आत्मकल्याण किया जा सकता है।”

“येरी समझ में तो ये बातें कुछ नहीं आती।”

बड़ी रानी हँस पड़ी; हँसते हुए बोलीं—“समय आने पर सब समझ में आने लगेगा। अभी समय नहीं आया है।”

“कभी आयेगा?”

“तुम्हारे प्रारब्ध में होगा तो अवश्य आयेगा।”

“मुझे तो बड़ा कठिन मालूम होता है।”

“संसार में कठिन कुछ नहीं है बहिन! क्या तुम्हें या तुम्हारे माता-पिता को स्वप्न में भी कभी यह आभास मिला था कि तुम्हारा विवाह एक राजा से होगा?”

“नहीं! उस समय कोई कहता भी तब भी विश्वास न आता। और कहा भी था। एक ज्योतिषी ने मेरी जन्मपत्री देखकर बताया था कि ‘यह लड़की बड़ी भाग्यवान् है इसको बड़ा धनवान् पति मिलेगा।’ परन्तु इस बात पर मेरे माता पिता को पूर्ण विश्वास नहीं हुआ था।”

“अब तुम्हीं सोचो कि उस समय जिस बात को तुम असम्भव अथवा बड़ा कठिन समझ रही थीं वह कैसी सरलता से हो गई।”

“हाँ, यह बात तो है।”

“बस! इसीलिए इस जगत में कुछ भी कठिन नहीं है। न जाने किसका कैसा प्रारब्ध है।”

इसी समय एक दासी ने आकर छोटी रानी से कहा—“कुँवर जी कुछ बात करना चाहते हैं।” कुँवर जी से तात्पर्य चन्द्रशेखर सिंह (छोटी रानी के भाता) से था। सब उन्हें कुँवर जी कहते थे। छोटी रानी ने कहा—“अच्छा।” यह कह कर वह बड़ी से बोली—“जाऊँ, देखूँ क्या बात है।”

यह कहकर छोटी रानी बिदा हुई।

राजा साहब चार दिवस पश्चात् संध्या समय लखनऊ से लौटे । आते ही पहले उन्होंने स्नान किया और कपड़े बदले । इसके पश्चात् टहलते हुए छोटी रानी की ओर गये । इधर छोटी रानी को जो सूचना मिली कि राजा साहब आगये हैं तो उनके मुख पर रोष का भाव आ गया । अतः जब राजा साहब उनके पास पहुँचे तो उनका भारी मुख देखकर वह समझ गये कि ज्योत्सना रुष्ट है । उन्होंने रानी से पूछा—
“कोई नई बात ?”

रानी ने रुखाई से उत्तर दिया—“कोई नई बात नहीं ।”

राजा साहब ने फिर कुछ न कहा, उलटे पैरों लौट पड़े । बाहर आकर वह अपने कमरे में पहुँचे और उन्होंने मेज पर रखी हुई घंटी बजाई । तुरंत एक नौकर उपस्थित हुआ । उससे उन्होंने कहा—“आज हम बड़े महल में भोजन करेंगे ।” बड़े महल से तात्पर्य था बड़ी रानी के महल में ।

नौकर के चले जाने पर राजा साहब ने पुनः घंटी बजाई । इस बार दूसरा आदमी उपस्थित हुआ । उससे राजा साहब बोले—“दो पेग विहस्की बना लाओ ।” उसके जाने के पश्चात् राजा साहब ने ‘रेडियो’ खोला । कुछ देर में वही नौकर चौंदी की ट्रे में चौंदी का ग्लास रखे हुए लाया, उसी ट्रे पर ‘साइफन बोतल’ रखी हुई थी । राजा साहब के सामने की छोटी मेजपर ट्रे रखकर वह चला गया । राजा साहब ने साइफन का लिबर दबाकर ग्लास में सोडा डाला—विहस्की तथा बर्फ उसमें पहले से ही थी—और चुस्की लगाने लगे । इसी समय दोनों बच्चे दौड़ते हुए आये और राजा साहब से बोले—“कहाँ गये थे, पिता जी !”

राजा साहब ने बाँये हाथ से दोनों को अपनी ओर घसीटते हुए कहा—“एक काम से गये थे । आज तुम दोनों घूमने नहीं गये ? ”

लड़की बोली—“भइया का मन घूमने का नहीं था--यह नहीं गये तो मैं भी नहीं गई । ”

दोनों बच्चे सुन्दर थे । गौर वर्ण बड़े बड़े नेत्र, गालों पर हल्की लालिमा । लड़का कानों में हीरे की लौंगे तथा कन्या हीरे के इयरिङ्ग पहने हुई थी । शरीर पर श्वेत रेशम की कमीज तथा पाजामा, लड़की गुलाबी रेशम की फ्राक पहने थी । राजा साहब ने लड़के से पूछा--“आज घूमने क्यों नहीं गया सुदर्शन ! ”

“आज मेरा मन नहीं था । ”

कुछ क्षण चुप रह कर सुदर्शन बोला—“आज हम आपके साथ खायेंगे पिता जी । ”

“अच्छा ! तो बड़ी माता जी के महल में चलना, आज हम वहीं खायेंगे । ”

“अच्छा ! कब चलोगे ? ”

“ बस अब थोड़ी देर में चलते हैं । ”

“तो हम बड़ी अम्माँ से जाकर कह आवें । ” कन्या ने पूछा ।

“उनसे कहला दिया है । ”

राजा साहब ने ग्लास समाप्त करके घंटी बजाई ।

नौकर आकर ट्रे उठा ले गया । राजा साहब उठ खड़े हुए -- कन्या ने राजा साहब के हाथ की उँगली पकड़ ली । सुदर्शन से राजा साहब बोले -- ‘रेडियो बन्द कर दे । ’

कन्या तुरन्त राजा साहब की उँगली छोड़ कर यह कहती हुई रेडियों की ओर दौड़ी - ‘मैं बन्द करूँगी । ’

सुदर्शन राजा साहब से बोला—देखिये पिताजी, यह कहीं तोड़-ताड़ देगी । ”

कन्या ने रेडियो बन्द कर दिया और यह कहती हुई लौटी--“तो बैसे दूँगी, क्या मुझे बन्द करना नहीं आता।”

राजा साहब बोले -- ‘चन्द्रकला सब जानती है।’

“मैंने ही तो इसे सिखाया है।” सुदर्शन बोला।

“हूँ, इन्होंने सिखाया है, बड़े सिखानेवाले। मैं तो अपने आप ही सीख गई।”

“अपने आप भी कोई सीख सकता है—देखिये पिता जी।”

“देखते देखते सीख लिया। क्यों पिता जी क्या देख कर कोई नहीं सीख सकता।”

“सीख क्यों नहीं सकता” राजा साहब ने उत्तर दिया।

“लेओ” चन्द्रकला सुदर्शन को चिढ़ाती हुई बोली। सुदर्शन ने चन्द्रकला को घूँसा दिखाया।

“देखिये पिता जी भइया घूँसा दिखाते हैं।”

“कहाँ दिखाते हैं भूठ बोलती है।” सुदर्शन ने कहा। राजा साहब बोले -- “अच्छा चलो, लड़ो नहीं।”

राजा साहब दोनों बच्चों को लेकर बड़े महल की ओर चले। सहसा सुदर्शन बोला--“मैं बड़ी अम्माँ से जाकर कहता हूँ।”

यह कह कर वह भागा। चन्द्रकला भी उसके पीछे दौड़ी।

राजा साहब अन्दर पहुँचे। दोनों बच्चे बड़ी रानी के बाहुपाश में थे। राजा साहब को देखते ही बड़ी रानी उठ खड़ी हुई और मुस्कराकर बोली--“आइये! स्वागतम्!” राजा साहब ने अपनी दाहिनी बाँह रानी के गले में डालकर कहा--“कहो रानी।” राजा साहब बड़ी को ‘रानी’ कहकर सम्बोधन किया करते थे। बड़ी रानी ने बच्चों की ओर सङ्केत करके दाँतों तले जीभ दाबी। राजा साहब ने अपनी बाँह हटा ली और कौच पर बैठ गये। रानी भी उनके समीप उसी कौच पर बैठ गई। सामने रेडियो रखा था। सुदर्शन बोला--“रेडियो खोल दूँ पिताजी?”

“खोल दे, लेकिन धीमा रखना ।” राजा साहब ने कहा ।

सुदर्शन ने जाकर रेडियो खोला और पूछा—“कहाँ लगाऊँ—
लखनऊ ?”

“चाहे जहाँ लगा दे ।”

रानी ने पूछा—“लखनऊ गये थे ?”

“हाँ ऐसे ही एक काम आ गया था, इस कारण जाना पड़ा ।”

यह कहकर राजा साहब ने रानी के मुख को ध्यानपूर्वक देखा—कदाचित्त इसलिए कि उनके उत्तर से रानी को सन्तोष हो गया या नहीं । रानी ने अपने मुखपर कोई भाव न आने दिया, उसी प्रकार प्रसन्नमुख रहकर कहा—“आज मैं सोचती रही कि कदाचित्त श्रीमान् मुझ पर कृपा करें ।”

“कृपा ! तुम पर कृपा या अपने ऊपर ।”

“मुझ पर ! अपने पर काहे को ।”

“मैं जब तुम्हारे पास आता हूँ रानी तो मैं यही समझता हूँ कि मैं अपने ऊपर कृपा कर रहा हूँ ।”

रानी हँस पड़ी । हँसते हुए बोली -- “क्यों बातें बनाते हो राजा ।”

“बातें नहीं बना रहा हूँ रानी, हृदय की बात कह रहा हूँ । ऐन्द्रिक तृष्णा शान्त करने के लिए तो दूसरा ठिकाना भी है, परन्तु हृदय की प्यास तुम्हारे पास आकर ही बुझती है और जब हृदय की प्यास बुझ जाती है तो कितना सुख, कितनी अनुपम शान्ति मिलती है । आह ! परन्तु ऐसा वास्तविक सुख तो कभी कभी ही प्राप्त होता है ।”

इसी समय रानी ने घण्टी बजाई । तुरन्त एक दासी आई । रानी ने उससे कहा—“मेज पर भोजन लगावाओ ।”

दासी सिर झुका कर चली गई ।

राजा साहब रानी का हाथ अपने हाथों में लेकर बोले.. “आज कल काहे का अध्ययन हो रहा है ?”

रानी हँस कर बोली - “ऐसे ही धार्मिक पुस्तकें पढ़ा करती हूँ और किसी विषय में जी नहीं लगता। धार्मिक अथवा दर्शनशास्त्र की पुस्तकें अच्छी लगती हैं।”

“दर्शन तो बड़ा शुष्क विषय है।”

“शुष्क नहीं राजा, बड़ा मनोरंजक विषय है। एक बार मन लग जाय और समझ में आने लगे तो इससे अधिक मनोरंजक और कोई विषय नहीं।”

“अपनी अपनी रुचि है। मेरा जी नहीं लगता।”

“पढ़ो तब लगे। जब पढ़ते ही नहीं तब क्या लगे।”

“जी लगे तो पढ़ूँ। जब जी ही नहीं लगता तब क्या पढ़ूँ। मुम पढ़ना सिखा दो।”

“मैं सिखा दूँ!” रानी ने मुस्कराकर कहा।

“क्यों? कोई हर्ज है क्या?”

“आप पढ़ना चाहें तो स्वयं पढ़ सकते हैं, मेरे सिखाने की कोई आवश्यकता ही नहीं।”

इसी समय दासी ने प्रविष्ट होकर निवेदन किया—“भोजन लग गया महारानी जी।”

“चलिये भोजन कर लीजिये।”

“चलो।” कहकर राजा साहब उठ खड़े हुए।

दोनों बच्चे पहले से ही दौड़कर भोजन के कमरे में पहुँच गये। मेजपर दो बड़े थाल तथा दो छोटे थाल धरे हुए थे। बीच में एक फलपात्र रखा हुआ था जिसपर कई प्रकार के ऋतुफल चुने हुए थे। एक लवणपात्र भी था जिसमें बढ़िया कटग्लास की चार शीशियाँ थीं। इनमें से एक में लवण, दूसरी में कालीमिर्चका चूर्ण, तीसरीमें सिरका तथा चौथी में राई का चूर्ण भरा था। एक थाल में मांस का सामान था, दूसरा थाल निरामिष भोजन का था। बच्चों के दोनों थालों में भी मांस की चीजें थीं। दो

दासियाँ वहाँ उपस्थित थीं। राजा साहब तथा रानी के पहुँचते ही दासियों ने छत में लगे हुए दो पंखों के स्विच खोल दिये। राजा साहब मांसभोजी थे, रानी शाकभोजी ! पहले रानी भी मांस खाती थीं, परन्तु इधर एक वर्ष से वह निरामिष भोजी हो गई थीं। राजा साहब अपने थाल के सामने बैठे उनकी बाँई ओर रानी बैठी। दासियों ने सिलफची में दोनों के हाथ धुलाये। सुदर्शन बोला—“लाउड स्पीकर खोल दूँ पिता जी।”

राजा साहब के बोलने के पूर्व ही रानी बोल उठी—“खोल दे।”

एक और छोटी सी मेजपर एक छोटा लाउड स्पीकर रखा था। इसका संबंध दूसरे कमरे में रखे हुए रेडियो सेट से था। सुदर्शन ने जाकर उसका स्विच खोल दिया। लाउड स्पीकर बोलने लगा। चन्द्रकला बोली—“यह तो मैं भी खोल लेती हूँ।”

“खोल लेने में कौन बड़ी कारीगरी है।” यह कहता हुआ सुदर्शन अपनी थाली के सामने आ बैठा। दोनों दासियों ने इन दोनों के भी हाथ धुलाने चाहे। चन्द्रकला ने तो हाथ धो लिये परन्तु सुदर्शन बोला—“मैं हाथ-वाथ नहीं धोता।”

चन्द्रकला बोली—“देखो बड़ी अम्माँ भाई जी हाथ नहीं धोते।”

रानी बोली—“हाथ धो, सुदर्शन।”

चन्द्रकला सुदर्शन से बोली—“बड़ी अम्माँ के साथ हाथ धोकर खाया जाता है, इतना भी नहीं जानते।”

सुदर्शन ने भी हाथ धो लिये।

भोजन से निवृत्त होकर सब पुनः पहिले कमरे में आ बैठे। इनके आने के पाँच मिनट पश्चात् ही दीवार पर लगे हुए ‘क्लाक’ ने दस बजाये। इसी समय रेडियो से आवाज आई—“हम लखनऊ से बोल रहे हैं। अब आपकी खिदमत में जनाब—का लिखा हुआ डामा ‘नेक बीबी’ पेश किया जाता है। नेक बीबी—और उसका ऐय्याश खाविन्द। जब किसी नेक बीबीका पाला ऐय्याश खाविन्द से पक जाता है—”

राजा साहब सुदर्शन से बोले — “सुदर्शन रेडियो बन्द कर दे । मैं यहाँ रेडियो सुनने नहीं आया हूँ ।”

अन्तिम वाक्य राजा ने रानी की ओर देखकर कहा ।

रेडियो बोल रहा था—“नेक बीबी अपने ऐग्याश खाविन्द को किस तरकीब से——“इसी समय सुदर्शन ने स्विच बंद कर दिया । रानी के ओठों पर मृदु-मुस्कान की एक क्षीण-रेखा आकर बिलीन हो गई ।

राजा साहब ने मुँह का पान पीकदान में उगलकर कहा — “सिगरेट पिलाओ रानी !”

रानी ने घंटी बजाई और दासी के आने पर उससे कहा—“सिगरेट निकालो ।”

एक अलमारी खोलकर दासी ने एक पात्र निकाला । इसमें सिगरेट केस, दियासलाई की डिब्बी लगाने का ‘स्टैण्ड’ तथा ऐश ट्रे तीनों सम्मिलित थे । मेजपर पात्र रखकर दासी जाने लगी । मोटे गद्दों की स्प्रिङ्गदार कुर्सियों में दोनों बच्चे डूबे हुए से बैठे ऊँघ रहे थे । रानी ने उनसे कहा—“तुम्हें नींद आरही है, अब जाओ सोओ जाकर ! इन्हें पहुँचा आओ ।” अन्तिम वाक्य रानी ने दासी से कहा । दासी दोनों बच्चों को लेकर चली गई । राजा साहब ने सिगरेट ली, रानी ने दियासलाई जलाकर सिगरेट सुलगा दी । राजा साहब मुँह का धुआँ छोड़कर बोले—“क्या बताऊँ रानी ! यदि राज्य के उत्तराधिकारी का प्रश्न न होता तो मैं दूसरा विवाह कदापि न करता ।”

“मैंने भी तो इसी कारण आप को विवाह करने की अनुमति दी थी ।”

“मैं जानता हूँ रानी । तुमने मेरे हित के लिए ही अपने स्वार्थ का बलिदान किया है । जब कभी मैं इस बात पर विचार करता हूँ तो मेरा हृदय तुम्हारे इस त्याग पर रो देता है ।” यह कहकर राजा ने रानी

को घसीट कर अपने वक्षस्थल से लगा लिया। रानी ने अपनी दोनों बाँह राजा साहब के गले में डाल दीं और प्रेमपूर्ण मधुर स्वर में बोलीं—
“विवाह करने से हानि ही क्या हुई ?”

“वसे तो कोई बड़ी हानि नहीं थी, तुम्हारा स्थान मेरे हृदय में सर्वोपरि है, उसे कोई दूसरा नहीं ले सकता; परन्तु ज्योत्सना का स्वभाव बड़ा उग्र है। जरा जरा सी बात में मुँह फुल्ला लेती है। यह बात मुझे बड़ा क्लेश पहुँचाती है। यह मैं मानता हूँ रानी कि मुझ में दोष हैं और ईश्वर जानता है यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं उनसे मुक्त हो जाऊँ; परन्तु क्या कहूँ ऐसी परिस्थिति में हूँ कि इच्छा रहते हुए भी उनसे पिराड नहीं छूटने पाता। तुम मेरे दोषों को जानती हो रानी, आज से नहीं बहुत दिन से, परन्तु तुमने कभी उन दोषों के कारण मेरी अवहेलना नहीं की, मेरा निरादर नहीं किया, मुझसे छष्ट होकर नहीं बैठीं।”

रानी राजा के बाहुपाश से अलग होकर बोली—“वह केवल स्त्री है, दार्शनिक नहीं। वह प्रत्येक बात को स्त्री की दृष्टि से देखती है। उसकी दृष्टि संकुचित है—व्यापक नहीं है, उसका हृदय एक सामान्य स्त्री का हृदय है।”

“कदाचित् ऐसी ही बात हो। मैं उसका कितना ध्यान रखता हूँ। मेरी आज्ञा चाहे एक बार टल भी जाय, परन्तु उसकी आज्ञा नहीं टलती मैं ऐसा इसलिए करता हूँ कि जिसमें वह यह महसूस न करे कि उसकी प्रतिष्ठा किसी से कम है।”

रानी के मन में आया कि वह कह दे कि—“स्त्री उस समय तक सुखी नहीं हो सकती जब तक कि उसे यह विश्वास न हो जाय कि उसका पति केवल उसी का है।” परन्तु उन्होंने इस बात को दबाकर केवल इतना कहा कि—“अभी उसे अनुभव नहीं है, अनुभव हो जाने पर ठीक हो जायगी।”

“तुम्हारे जैसी अनुभवी तथा बुद्धिमान शुष्क पाकर भी अभी तक उसे अनुभव नहीं हुआ ?”

“अभी उसके मन में उमंगें हैं, लालसाएं, प्रेम की प्यास है। इसलिए उपदेश तथा शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ता। जब बेग कुछ कम होगा तब प्रभाव पड़ेगा।”

“भगवान जाने कब कम होगा—दो बच्चों की माँ तो हो गई।”

रानी हँस पड़ी और बोली—“माँ होने से क्या होता है, अभी उसकी बयस तो कम है। ये बातें उम्र पाकर ही होती हैं—माँ बन जाने से कुछ नहीं होता।”

“वह खामखाह का सन्देह किया करती है।”

“सन्देह का कारण मिलने पर ही आदमी सन्देह करता है, खाम-खाह कोई सन्देह नहीं करता।”

“सौर यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझ में दोष हैं परन्तु वे दोष ऐसे नहीं हैं जिन्हें इतना महत्व दिया जाय। यदि कोई कभी कभी बाजार की चाट या मिठाई खा लेता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने घर के भोजन का तिरस्कार किया।”

“अब यह बात तो केवल घर का भोजन ही बतल सकता है कि उसने अपना तिरस्कार समझा या नहीं - यदि घर का भोजन बोल सकता तो बनाता। दूसरा कोई क्या कह सकता है। परन्तु एक बात मैं अवश्य कहूँगी राजा कि यदि स्त्री यही सोच कर बाजार की चाट खाने लगे तो आपकी उसके सम्बन्ध में क्या राय होगी?”

राजा साहब ने सिर झुका लिया। कुछ क्षण मौन रह कर वह बोले - “यह बात तुम्हारी ठीक है रानी, परन्तु स्त्री पुरुष में कुछ अन्तर तो रहेगा ही। कोई पुरुष यह न चाहेगा कि उसकी पत्नी के जो सन्तान हो वह किसी दूसरे पुरुष की हो। ऐसा होने से तो वंश ही भ्रष्ट हो जायगा। क्योंकि कि अपनी पत्नी से जो सन्तान होती है वह अपने पिता के घर की, माल-असबाब की, जाति तथा गोत्र की मालिक होती है। इस कारण सन्तान की शुद्धता का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। यदि

दूसरे की सन्तान होगी तो उसमें अपने ही वंश के गुण-स्वभाव होंगे । अतः वह जिस घर में उत्पन्न हुई है उसके गुण-स्वभाव उससे मेल नहीं खायेगे । इस कारण हमारे हिन्दू धर्म में स्त्री की सम्भारिता पर इतना अधिक जोर दिया गया है । स्त्री के भ्रष्ट होने से सारा कुल तथा वंश भ्रष्ट हो जाता है, पुरुष के भ्रष्ट होने से इस बात की कोई सम्भावना नहीं होती । गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यही बात कह कर तो युद्ध करने से इन्कार किया था । वे श्लोक तो मुझे याद नहीं, परन्तु उनका भाव यही है कि स्त्रियों के दूषित होने से वर्ण संकर सन्तान उत्पन्न होती है और वर्ण संकर सन्तान कुल तथा जाति को जड़ से नष्ट कर देती है ।”

“यह बात ठीक है राजा, परन्तु एक सामान्य स्त्री से ऐसे ज्ञान की आशा रखना कहाँ तक उचित है, इस पर तो विचार कीजिये । दूसरी बात यह है कि अर्जुन की इस बात को श्रीकृष्ण भगवान ने नहीं माना । उन्होंने उसे यही उपदेश दिया कि-“इस समय तू अपना कर्त्तव्य पालन कर, भविष्य में क्या होगा इसी चिन्ता छोड़ दे ।” उन्होंने इन सब बातों को ‘अशोभ्य’ कहा है । इसे भी जाने दीजिए । यह बताइये कि यदि आपका सुदर्शन वेश्याओं के साथ सारंगी-मँजीरे बजाता घूमे तो आपको कैसा लगेगा ?”

“इसका क्या तात्पर्य ?”

“इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी वेश्या से आपकी सन्तान उत्पन्न होती है तो यदि वह लड़का है तो सारङ्गी-मँजीरे बजाता घूमेगा, यदि लड़की हुई तो वेश्या-वृत्ति करेगी । क्या आप इसे सहन करेंगे ?

राजा साहब ने लज्जित हो कर सिर झुका लिया । कुछ क्षण पश्चात् बोले-“यह बात तुम्हारी बिल्कुल सही है रानी ! और इसी लिए मैं ऐसी बात को दोष मानता हूँ ।”

“यदि ऐसी बात है तो आपको ज्योत्सना के प्रति सहिष्णु

होना चाहिए । आपने जो नीति तथा शास्त्रों की बात कही उसको थोड़ी देर के लिए भूल जगइये और फिर अपने हृदय को टटोल कर कहिये कि यदि सन्तान की शुद्धता-अशुद्धता का विचार न भी हो तब भी क्या आप अपनी पत्नी को पर पुरुष से प्रेम करते देख सकते हैं ? कभी नहीं देख सकेंगे । अपनी प्यासी वस्तु का दूसरा व्यक्ति उपभोग करे यह बात मनुष्य कभी सहन नहीं कर सकता । इसी लिए स्त्री भी यह सहन नहीं कर सकती कि उसका भ्रति किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करे ।”

“ठीक कहती हो रानी । इसी लिए तो मैं ज्योत्सना की बात पर अधिक ध्यान नहीं देता । आज प्रसन्न उठ खड़ा हुआ इससे इतना कहा । अच्छा चलो अब शयन करें — ब्यारह बज रहा है ।”

यह कह कर राजा साहब रानी का हाथ पकड़े हुए उठे और खयनागर की ओर चल दिये ।

राजा साहब के लखनऊ से वापस आने के पन्द्रह दिन पश्चात एक दिन मदनमोहन रात के नौ बजे के लगभग त्रिवेदी जी के पास से घर वापस आये । मदन मोहन अब प्रायः नित्य ही त्रिवेदी जी के पास जाया करते थे । कभी ये दोनों घर पर ही बैठे रहते तथा घूमने निकल जाते थे । घर आकर मदनमोहन ने भोजन किया और विस्तर पर लेट कर एक पुस्तक पढ़ने लगे । परन्तु थोड़ी ही देर में पतङ्गों ने परेशान करना आरम्भ किया । “भगवान जाने आज कल इतने पतङ्ग कहाँ से आ जाते हैं- उँह !” कह कर उन्होंने लेम्प बुझा दिया और बिस्तर पर लेटे-लेटे विचार करने लगे कि “स्नेहलता तो अब कालेज पहुँच गई होगी । थर्डइयर में पढ़ रही होगी । जयनारायण भी शायद आई० सी० एस की प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने वाला हो । कल दोनों को पत्र लिखना चाहिए । स्नेहलता से विवाह न हो सके तो न सही, परन्तु उससे मित्रता तो रखना ही चाहिए । विवाह का प्रश्न तो अब बहुत दूर चला गया । केवल साठ रुपये वेतन पर स्नेहलता को अर्द्धाङ्गिनी बनाने का स्वप्न देखना पागलपन है । उन्नति की यहाँ कोई आशा नहीं । यदि खर्च का अभाव न होता तो मैं यह नौकरी कभी स्वीकार न करता । कुछ दिन यदि प्रतीक्षा की जाती तो सम्भव है इससे अच्छी कोई जगह मिल जाती । खैर, अब तो जो होनहार था हो गया । कहीं अच्छा स्थान मिला तो यहाँ की नौकरी छोड़ दूँगा ।” मदनमोहन इसी प्रकार की बातें सोचते हुए ऊँघने लगे । इस समय ग्यारह बजने के लगभग था । मदनमोहन की चार पाई बरामदे में थी, उससे थोड़ी दूर पर उसकी बुआ की चार पाई थी । रात में नौकर अपने घर चला जाता था ।

सहसा मदनमोहन को कुछ खटका सुनाई पड़ा। उन्होंने आँखें भली भाँति खोल कर देखा। बरामदे में अन्धकार था। बँगले के बाहर सबक पर लगे हुए लेम्प का क्षीण प्रकाश बरामदे के कुछ स्थान पर पड़ रहा था। इसी प्रकाश की सहायता से उन्होंने देखा कि एक मनुष्य मूर्ति बरामदे में आकर उसके अन्धकार पूर्ण भाग में अदृश्य हो गई। मदनमोहन का हृदय धड़कने लगा। उन्होंने समझा कि कोई चोर है। कुछ क्षण तक विचार किया कि क्या करना चाहिए। ऐसा न हो कि यदि वह उसे पकड़ने के लिए उठें तो वह चोट कर बैठे। चोरों के पास प्रायः छुरी-चाकू होते हैं। उन्हें याद आया कि उनके सिरहाने दीवार के सहारे एक मोटा डंडा रखा हुआ है। मदनमोहन स्वयं ही इस डंडे को सिरहाने रख कर सोया करते थे। यह स्मरण होते ही उन्होंने लेटे ही लेटे हाथ बढ़ा कर डंडा उठा लिया। डंडा हाथ में लेकर वह एक दम उठ खड़े हुए और वहीं से ललकार कर बोले—“कौन है ?” उनकी ललकार सुन कर बुआ जी भी जाग पड़ीं और बोलीं—“क्या है मदन ?”

“कोई चोर मालूम होता है बुआ जी अभी बरामदे में आकर छिपा है।”

“किधर छिपा है ?” बुआजी ने लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कहा ?”

“इधर सामने।”

“अच्छा तू उधर देखता रह, मैं जाकर मिथीलाल को जगाती हूँ।”

यह कह कर बुआजी उठने लगी। इस समय वह मूर्ति मदनमोहन की ओर आई और उनसे कुछ दूर पर खड़ी हो कर बोली—“मैं चोर नहीं हूँ - मुसीबत की मारी हूँ, मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिए।”

और का कंठ स्वर सुन कर मदनमोहन ने डंडा चार पाई पर रख दिया और पूछा—“तुम कौन हो ?”

“यह मैं फिर बताऊँगी, इस समय मुझे कहीं छिपा दीजिए—ऐसा न हो वे डूँदते हुए यहाँ आजाँय।”

स्त्री का कंठ-स्वर काँप रहा था। वह अत्यंत घबराई हुई प्रतीत होती थी।

मदनमोहन ने कहा—“बुआजी, जरा कमरा तो खोलो।” यह कहकर उन्होंने सिरहाने के निकट एक छोटी टेबुल पर रखा हुआ लैम्प जलाया। बुआजी ने उठकर कमरा खोला। मदनमोहन ने स्त्री से पूछा—“बग़ले का फाटक बन्द था—तुम अन्दर कैसे आईं !”

“खुला था, बन्द नहीं था।”

मदनमोहन सोचकर बोले—ठीक है, आज मैं फाटक बन्द करना भूल गया। अच्छा तुम कमरे के अन्दर जाओ। बुआजी ! यह लैम्प कमरे में ले जाओ और इस स्त्री से पूछो कि कौन है और किस मुसीबत में है।”

यह कहकर मदन अषनी चारपाई पर बैठ गया। बुआ लैम्प उठा ले गईं। सहसा मदनमोहन को खुले फाटक का ध्यान आया। वह तुरंत उठे और उन्होंने जाकर फाटक बन्द कर लिया। फाटक बन्द करके वह लौट आये। परन्तु उन्हें आये कुछ ही मिनट हुए होंगे कि फाटक के बाहर सड़क पर उन्हें कुछ आदमियों के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। वह कान लगाकर सुनने लगे। उनके फाटक के सामने कुछ लोग आकर रुक गये और फिर फाटक पर किसी ने धक्का मारा। उनमें से एक बोला—“यह फाटक तो बन्द है, यहाँ नहीं आ सकती।”

“यह तुम्हारी गलती से हुआ। तुमने उसका हाथ छोड़ दिया, वह भाग निकली।”

इसके पश्चात् वे लोग आगे बढ़ गये। अब मदनमोहन को विश्वास हो गया कि स्त्री वास्तव में ही किसी मुसीबत में फँस गई थी, परन्तु अबसर पाकर भाग निकली।

दूसरे दिन मदनमोहन बहुत सबेरे उठे। शौच से निवृत्त होकर कुछ देर बेचैनी के साथ बरामदे में टहलते रहे। तत्पश्चात् मिथीखात

की ओर गये। उधर पता लगा कि मिश्रीलाल अभी सो रहे हैं। वह पुनः लौटकर कम्पाउण्ड में टहलने लगे। उनका मुख चिन्ताग्रस्त था तथा हृदय अशान्त। आध घण्टे बाद मिश्रीलाल उनकी ओर आते दिखाई पड़े; इस समय सात बज रहा था। मिश्रीलाल को देखकर मदनमोहन ने मानो प्राण पाये। मिश्रीलाल ने मुस्कराकर पूछा—“कहिये, आज बड़े सबेरे याद किया, क्या बात है।”

मदनमोहन ने लपक कर मिश्रीलाल का हाथ पकड़ लिया और कहा—“आप से एक गम्भीर मामले में सलाह लेनी है।”

“अच्छा ! क्या बात है ?”

मदनमोहन ने रात्रि का सब वृत्तान्त सुनाया। सब सुनकर मिश्रीलाल ने पूछा—“जो आदमी उसे पकड़ लाये थे कौन थे ?”

वह किसी को पहचानती थोड़े ही है, परन्तु ये वे राजासाहब के ही आदमी। रास्ते में कार पर वे इस स्त्री को यह समझाते हुए आये कि तुम रानी बनोगी, अच्छा कपड़ा, अच्छा खाना नौकर आकर, सवारी को मोटर इत्यादि मिलेंगे। इससे यह मालूम होता है कि वे लोग राजासाहब के एजेण्ट होंगे।”

मिश्रीलाल गंभीर होकर बोले—“हूँ ! ऐसा ही जान पड़ता है। यह स्त्री कहाँ की रहने वाली है।”

“लखनऊ के निकट किसी ग्राम की है, नाम मैं भूल गया—पूछकर बता दूँगा।”

“उभ्र क्या है ?”

“उभ्र तो यही कोई १८ साल के लगभग होगी, अभी अविवाहित है।”

“सूरत-शकल की भी अच्छी होगी ?”

“मैंने अभी अच्छी तरह तो देखा नहीं, पर जितना देखा है उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लड़की सुन्दर है।”

“तब तो निश्चय ही उसे राजा साहब के एजेण्ट उठा लाये । परन्तु कैसे लाये यह आश्चर्य की बात है । उसने कुछ बताया ?”

“हाँ ! उसके यहाँ जो नाईन आती-जाती है, वह कल संध्या समय जब कि यह लड़की शौच से निवृत्त होकर लौट रही थी इसे रास्ते में मिली । उसने इससे कहा—कि सबक के निकट आम के बाग की खाई में सांप-नेवले की लड़ाई हो रही है । लड़की की उत्सुकता बढ़ी और वह लड़ाई देखने के लिए नाइन के साथ उस ओर गई । जब वह बाग में पहुँची तो वहाँ कुछ अन्धेरा हो चुका था । उसके वहाँ पहुँचते ही कुछ आदमियों ने उसे दबोच लिया और मुँह में कपड़ा ठूस कर तथा कपड़ा ओढ़ाकर मोटर में डाल लिया । यहाँ आकर जिस समय वे इसे मोटर पर से उतार रहे थे तो यह उनके पंजे से छूटकर भागी और मेरे बग़ले में घुस आई । शेष आप सुन ही चुके हैं ।”

“यदि ऐसी बात है तो आज घर-घर की तलाशी होगी ।”

मदनमोहन घबराकर बोला - “अच्छा !”

“हाँ ! परन्तु खुले तौर से नहीं । कुछ क्रियाँ जासूस बना कर घर घर भेजी जायँगी । अथवा जो दास-दासियाँ घरों में नौकर हैं उनसे पूछ-ताछ की जायगी । इस कारण आप सावधान हो जाँय ।”

“मेरे यहाँ और तो कोई आता-जाता नहीं, केवल मेरा नौकर आता है । इधर एक बजे तक रहता है और फिर घर चला जाता है । तीन बजे फिर आ जाता है और रात में जब मैं खाना खाकर लेट रहता हूँ तब चला जाता है अब इस समय आता ही होगा ।”

“तो आपको चाहिए कि उसकी दृष्टि में लड़की न पड़ने दें ।”

“यह तो असम्भव है ! वह सब कमरे साफ करता है । ऐसी दशा में उसे कहाँ छिपा कर रखा जावे ।”

“कोई कोठरी वोठरी नहीं है ?”

“हाँ एक कोठरी है जिसमें जिनिम इत्यादि रहती है। उसमें नौकर कम जाता है, जब जाता है तो आज्ञा से जाता है स्वयं नहीं जाता।”

“तो उसी कोठरी में आज उसे रखिये, फिर कोई प्रबन्ध सोचा जायगा। जाइये, अभी सब ठीक कर आइये—नौकर आने के पहले। आज त्रिवेदीजी से परामर्श करेंगे जैसा वह आदेश देंगे वैसा किया जायगा।”

“त्रिवेदी जी के यहाँ कब चलियेगा।”

“यह काम शाम को ही होगा। अब तो आफिस जाने का समय आ रहा है। त्रिवेदी जी भी इस समय नहीं मिलेंगे वह सबेरे ही पूजन पर बैठ जाते हैं और नौ बजे तक पूजन में रहते हैं। इसके पश्चात् भोजन करके आफिस चले जाते हैं।”

“तब तो शाम को ही ठीक रहेगा। मुझे भी पढ़ाने जाना है—नौ बजे।”

यह कह कर शर्मा जी लपक कर अपने घर के अन्दर घुस गये। इसी समय उनका नौकर बंगले के फाटक में प्रविष्ट हुआ।

सन्ध्या समय दोनों त्रिवेदी के यहाँ पहुँचे। त्रिवेदीजी ने सब बात ध्यानपूर्वक सुनी। सुन कर बोले—“बड़ी कठिन समस्या है। एक युक्ति तो यही है किसी प्रकार उसे उसके घर पहुँचा दिया जाय।”

“घर तो वह जाने नहीं कहती, घर का नाम लेते ही रोने लगती है।”

“क्यों, घर क्यों नहीं जाना चाहती?”

“वह कहती है कि अब उसके माँ-बाप उसे अपने यहाँ नहीं घुसने देंगे।”

“हाँ यह बात तो ठीक है। देहात के लोग उस स्त्री को फिर घर में नहीं रखते जो कुछ दिन गायब रह चुकी हो, ऐसी स्त्री को पतित समझ कर त्याग देते हैं।”

“चाहे वह पवित्र ही क्यों न हो ?”

“वे उसकी पवित्रता पर विश्वास ही नहीं करते। वे तो सीधी बात यह समझते हैं कि जो स्त्री घर से गायब हो कर दूसरों के अधिकार में रही वह अवश्य ही भ्रष्ट हो चुकी। यदि वे रख भी लें तो जाति ध्युत कर दिये जायें।”

“तब तो बड़ी कठिन समस्या है।”

“लड़की है तो ब्राह्मण परिवार-की ?”

“जी हाँ ! शुक्ल परिवार की है।”

“कहाँ के शुक्ल हैं, यह तो पता न होगा ?”

“बताया तो था उसने; पर मुझे स्मरण नहीं रहा। मैं सनाढ्य ब्राह्मण हूँ, मुझे कान्यकुब्जों की वंशावली का पता नहीं। लेकिन यह मैं कह सकता हूँ कि है कुलीन। लड़की बहुत सुन्दर है साथ ही बड़ी सुशील मालूम होती है।”

“तब तो केवल एक युक्ति है।” त्रिवेदीजी ने कहा।

“वह क्या ?”

“इसका विवाह कर दिया जाय।”

“घर से भागी हुई से विवाह कौन करेगा ?” मिश्रीलाल ने कहा।

“किसी साहसी युवक को तैयार किया जाय।”

“युवक के माता-पिता कैसे राजी होंगे ?” मिश्रीलाल ने कहा।

“हाँ, यह कठिनता अवश्य है।”

“कोई इसे अपनी अथवा अपने परिवार की कन्या बना कर विवाह करे तो सम्भव हो सकता है।” मदन ने कहा।

“इसके लिए शायद ही कोई तैयार हो। विवाह के समय नाते-रिश्तेदार भी तो आते हैं। वे न कहेंगे कि यह कन्या कहाँ से आ गई ? यदि वह गुप्त रूप से बिना अपने सम्बन्धियों को सूचना दिये विवाह करना चाहे तो लड़के-बालों को सन्देह होगा। ऊँह ! यह कोई युक्ति काम न देगी।

ऐसा कोई युवक मिले जो स्वतन्त्र हो, उसके ऊपर कोई बन्ध-बुद्धा न हो—
ऐसा युवक तो गुप्त रूप से विवाह करने को तैयार भी हो जायगा, परन्तु
जिसके घर में उसके माता-पिता तथा बड़े-बूढ़े हैं वह इच्छा रहते भी न
कर पायगा ।”

“ऐसा युवक कहाँ मिलेगा ? ”

त्रिवेदी जी कुछ क्षण विचार करके बोले--“एक बात कहूँ ? बुरा
न मानियेगा । ”

“कहिये ! आपकी किसी बात का बुरा मैं नहीं मान सकता ! ”
मदनमोहन श्रद्धापूर्वक बोले ।

“आप अविवाहित हैं और परम स्वतंत्र ! आप यह काम कर
सकते हैं । ”

शर्माजी चौक कर बोले--“मैं ! परन्तु मैं तो सनातन हूँ और वह
कान्यकुब्ज ! ”

“त्रिवेदी जी मुस्कराकर बोले--“अच्छा आप को अभी इन
बातों का विचार है, इस बीसवीं शताब्दि में भी । ”

शर्माजी कुछ लज्जित होकर बोले--“यदि मुझे विचार न भी हो
तो दूसरों को तो होगा । ”

“दूसरे आप के यहाँ हैं ही कौन ? केवल आप की बुद्धि ! सो वह
जैसा आप समझा देंगे, मान लेंगी । यदि इस बीसवीं शताब्दि में भी
कमसे कम ब्राह्मण मात्र में परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार न हुआ तो
आश्चर्य की बात है ।

“होना तो अवश्य चाहिए, मैं इससे सहमत हूँ । ”

“तो अपनी सहमति को व्यावहारिक रूप दीजिए । ”

शर्माजी सोच में पड़ गये । कुछ क्षण प्रतीक्षा करके त्रिवेदी जी
बोले--“इतना सोच-विचार क्यों है । लड़की सुन्दर है, कुलीन है, सुशील
है—इससे अधिक और क्या चाहिए ? कुछ पढ़ी-लिखी है ? ”

‘केवल हिन्दी जानती है।’

‘काफी है। यदि आप चाहें तो अङ्गरेजी पढ़ा लीजिएगा।’

शर्माजी ने कोई उत्तर न दिया। त्रिवेदी जी पुनः बोले—‘आप सोचते होंगे देहाती है, शहरवालों जैसी बातचीत, हाव भाव तथा पहनावा इत्यादि उसे नहीं आते। परन्तु ये सब बातें थोड़े ही दिन में सीख सकती है। मैं ऐसी स्त्रियों को जानता हूँ जिनका लालन-पालन देहात में हुआ, परन्तु अब उन्हें देखिये तो आप विश्वास नहीं कर सकते कि ये कभी देहात में रही हैं। शिक्षा से सब कुछ हो सकता है।’

शर्माजी बोले—‘अच्छा, मैं अपनी बुआ से परामर्श करके बताऊँगा।’

‘तो जरा जल्दी ही फैसला कीजिएगा।’

‘जी हाँ, कल तक बता दूँगा।’

‘और उसे अभी छिपाये ही राखियेगा, नौकर न देख पावे। सम्भव है कोई गुप्तचर भी आपके यहाँ पहुँचे।’

त्रिवेदी जी से विदा हो कर घर लौटते समय शर्मा जी से मिश्रीलाल ने कहा—‘त्रिवेदीजी ने युक्ति तो बड़ी सुन्दर बताई। अब इस लड़की का उद्धार आप पर ही निर्भर करता है। आपकी शरण आई है तो आप ही इसका उद्धार कीजिये।’

मिश्रीलाल की बात के उत्तर में शर्मा जी ने केवल ‘हाँ, ठीक है!’ कहा! इस समय उनके हृदय में विचारों का समुद्र उमड़ रहा था। उन्हें स्नेहलता से किये हुए अपने वादे याद आ रहे थे। यदि वह विवाह कर लें और कल को स्नेहलता उन वादों की पूर्ति चाहे तो वह उसे क्या उत्तर देंगे? जहाँ तक सौन्दर्य का सम्बन्ध है यह लड़की स्नेहलता से किसी बात में कम नहीं, वरन् स्वास्थ्य तथा दृष्ट-पुष्टता में स्नेहलता से भी बढ़ चढ़ कर है। परन्तु स्नेहलता की भाँति संस्कृत नहीं है, और शिक्षा की योग्यता की तो कोई तुलना ही नहीं। स्नेहलता सुशिक्षित है, प्रज्जुष्ट

होने वाली है। परन्तु परन्तु क्या स्नेहलता उनसे विवाह करना पसन्द करेगी? वह किसी धनी से विवाह करना चाहेगी, न कि उनके जैसे साठ रुपए की मासिक पाने वाले कंगाल से। यदि उसने प्रेम के आवेश में विवाह कर भी लिया तब भी क्या वह उनके साथ सुखी हो सकेगी? उनका चेतन तो उसके वल्ल तथा श्रृङ्गार सामग्री की आवश्यकता को भी पूरा न कर सकेगा। परन्तु यह कन्या उनके साथ सुखी रहेगी। देहाती परिवार की कन्या की आवश्यकतापूर्ति के लिए उनकी आर्थिक स्थिति यथेष्ट है।”

इसी प्रकार की बातें सोचते हुए शर्मा जी घर पहुँचे। मिश्रीलाल ने कहा—“कत तक अवश्य निर्णय कर लेना।”

“हाँ देखिये, प्रयत्न तो ऐसा ही करूँगा।” यह कह कर शर्माजी अपने घर में घुस गये।

शर्माजी रात भर उधेड़-बुन में रहे। मस्तिष्क तथा हृदय में भीषण संघाम हुआ। मस्तिष्क विवाह कर लेने के पक्ष में था, परन्तु हृदय स्नेहलता की मूर्ति सामने खड़ी करके कहता था—“कुछ इसका और इसको दिये हुए बच्चों का भी ध्यान है?” मस्तिष्क इस पर अट्टहास करके कहता था—“वह सब बच्चों का खेल था। रेल की दोस्ती निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते ही समाप्त हो जाती है, कालेज की मित्रता कालेज छोड़ने के पश्चात् विस्मृत हो जाती है। अपवाद अनुकरणीय नहीं होते। इस लिए अब उसकी आशा छोड़ो और घर बैठे जो खीरतन प्राप्त हो गया है उसे ग्रहण करो। पालिश हो जाने पर यह रत्न स्नेहलता से अधिक सुन्दर तथा मूल्यवान निकलेगा।” हृदय इसका प्रतिवाद करके कहता था—“मुझे तो स्नेहलता चाहिए, बस! मैं उससे अधिक सुन्दर तथा मूल्यवान रत्न नहीं चाहता।”

मस्तिष्क उत्तर देता—“चाहिए तो सब कुछ परन्तु मिले तब न। एक ऐसी वस्तु के लिए, जिसके प्राप्त होने की बहुत ही कम सम्भावना

है, हस्तगत वस्तु को फेंक देना बहुत बड़ी भूल है। सुअवसर से लाभ उठाना ही बुद्धिमानी है।” इस पर हृदय चीत्कार करके कहता था — “तुम्हारा कथन ठीक है, परन्तु...परन्तु...” हृदय आगे कुछ न बोल पाता था, मौन हो कर ज्ञान शून्य सा हो जाता था।

प्रातःकाल होते ही मदन ने अपनी बुआ को एकान्त में बुलाकर सब परिस्थिति समझाई और अन्त में त्रिवेदीजी का प्रस्ताव भी सामने रखा। बुआ बोली— “लड़की तो देवी है। ऐसी सुघड़ और सुशील लड़की बड़े भाग्य से मिलती है। पर गैर जाति की है।”

“गैर जाति क्यों है, ब्राह्मणी है।”

“हम सनाढ्य वद कनौजिया -- गैर जाति और किसे कहते हैं?”

“ब्राह्मण ब्राह्मण सब एक हैं बुआजी!”

“भई तू समझ ले। भाई-बिरादरी वाले कोई भगड़ा न उठा दें।”

“यहाँ अपना भाई-विरादर कौन बैठा है? विवाह होजाने पर फिर कोई कुछ न बोलेंगा।”

“जैसा तेरी समझ में आवे वैसा कर! लड़की सब तरह से अच्छी है -- मुझे तो दो दिन में ही उससे इतनी मुहब्बत हो गई कि क्या बताऊँ। यदि तेरा उससे विवाह हो सकता है तो बड़ी अच्छी बात है -- मुझे मंजूर है।”

संन्या समय मिश्रीलाल सहित मदन पुनः त्रिवेदीजी से मिले। त्रिवेदीजी ने उन्हें देखते ही पूछा—“क्या निर्णय किया?”

“मुझे स्वीकार है।” मदन ने सिर झुका कर कहा।

“शाबाश मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। आशा न होती तो मैं ऐसा प्रस्ताव तुम्हारे सामने कदापि न रखता। अच्छा अब विवाह कहाँ किया जाय--यह सोचना है।”

मिश्रीलाल ने कहा—“यहाँ होना तो उचित न होगा।”

“इसी लिए तो विचार करना है।”

“कहीं बाहर जाकर कर आवें।”

“यही युक्ति है।”

“परन्तु कहाँ जाऊँ ? मेरा अपना कोई घर नहीं। रिश्तेदारों के यहाँ जाने से उपाधि खड़ी हो जायगी। अनेक प्रकार के सन्देह किये जाँयगे, दुनिया भर के प्रश्न किये जाँयगे, ‘क्यों’ और ‘क्या’ का उत्तर देते-देते नाक में दम आ जायगा।”

“तो कहीं और चले जाओ।”

“कहाँ जाऊँ ? क्या होटल अथवा धर्मशाले में जाकर विवाह कर लाऊँ ?”

मिश्रीलाल बोल उठे—“त्रिवेदीजी, यह कार्य बिना आपकी व्यावहारिक सहायता के न हो सकेगा। आप ही स्थान निश्चित कीजिए तथा अन्य जो आवश्यक सहायता हो वह दीजिये। कोई कन्यादान देने वाला भी तो चाहिए।”

त्रिवेदीजी विचार में पड़ गये। कुछ क्षण सोचने के पश्चात् बोले—“जब तुमने मेरे कहने से इतना साहस किया है तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं तुम्हारी पूर्ण सहायता करूँ। कन्यादान मैं और मेरी पत्नी करेगी।”

मिश्रीलाल प्रसन्न मुख हो कर बोले—“वाह वा, इससे अधिक सुन्दर बात और क्या होगी। तो यह कार्य कहाँ होगा ?”

“मेरे घर पर, अयोध्या में।” त्रिवेदीजी ने कहा।

“बहुत ठीक !”

“मैंने यह सोचा है कि…… परन्तु एक बात है अभी विवाह की लग्न कहाँ है। लग्न तो अगहन में होगी। यह तो अभी पितृपक्ष ही चल रहा है। अभी डेढ़ दो महीने की देर है।”

मिश्रीलाल नेत्र विस्फारित करके बोले—“हाँ यह ध्यान न रहा। इतने दिन तक लक्ष्मी को छिपा कर रखना बड़ा कठिन होगा।”

त्रिवेदीजी पुनः विचार मग्न हो गये। कुछ देर सोच कर बोले—

“अच्छा, यह हो मकता है। आप लड़की को मेरे यहाँ भेज दीजिए। मेरे यहाँ न कोई गुप्त चर आयागा और न मेरे नौकर ही किसी को भेद देंगे।”

“उन पर आपको पूरा विश्वास है?” मिश्रीलाल ने पूछा।

“हाँ मुझे पूर्ण विश्वास है। कुल दो पुरुष तथा एक स्त्री है। ये तीनों मेरे अत्यन्त विश्वास पात्र हैं। प्रथम तो मेरे यहाँ कोई पूछ-ताछ करेगा नहीं, न किसी गुप्त चर के आने का साहस होगा। और सब से बड़ी बात तो यह है कि यदि राजा साहब को यह पता चल भी जाय कि लड़की मेरे यहाँ छिपी हुई है तो वह चुप होकर बैठ जायेंगे। क्योंकि ऐसे जितने काम राजा साहब करते हैं उन्हें मुझसे छिपाकर करते हैं। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रहता है कि त्रिवेदी जो को पता न लगने पावे। इसी कारण यद्यपि मुझे राजा साहब की हरकतों का पता चल जाता है परन्तु मैं अनजान ही बना रहता हूँ। मैंने गुलिस्ताँ में फार्सी कवि शेखसादी का एक नीति वाक्य पढ़ा था। वह यह है—‘अज्ञाँ कज तो तरसद बतर्स ऐ हकीम।’ अर्थात् ऐ बुद्धिमान-हकीम विद्वान् तथा बुद्धिमान को कहते हैं—वैद्य के लिए हकीम का प्रयोग प्रचलित हो गया है—अन्यथा वैद्यको फार्सी में ‘तबीब’ कहते हैं, हकीम विद्वान् तथा बुद्धिमान को कहते हैं। हकीम तथा तबीब दोनों दरअसल अर्बी के शब्द हैं, फार्सीवालों ने उन्हें अपना लिया है। हाँ तो शेखसादी साहब फर्माते हैं कि—‘ऐ विद्वान् ! जो तुझसे डरे, तू भी उससे डर।’ अतः जब राजा साहब मुझसे भय करके मुझसे बात छिपाते हैं तो मैं भी उनसे भय करता हूँ। उन पर कभी यह प्रकट नहीं होने देता कि मैं उनकी सब करतूत जानता हूँ।”

मिश्रीलाल ने पूछा—‘इसमें क्या नीति है कि जो तुझसे भय करे तू भी उसका भय कर।’

“इसमें यह नीति है कि यदि तू उससे भय न करके उसकी प्रत्येक बात में हस्तक्षेप करोगे या उसका विरोध करोगे तो उसका भय छूट जायगा और किसी दिन तुम्हारा सामना कर बैठेगा। इसी प्रकार यदि मैं

राजा साहब पर यह प्रकट करूँ कि मैं उनकी सब बातें जानता हूँ तो फिर उनका भय अथवा लिहाज, जो कुछ समझिये, जाता रहे और वह और भी निर्द्वन्द्व हो जाँय। ऐसी दशा में मेरा अपमान होने लगे। यदि मैं उनकी बात का विरोध करूँ तो निकाल बाहर किया जाऊँ! मैं तो निकाला ही जाऊँ और मेरे विरोध का राजा साहब पर कोई प्रभाव न पड़े। अतः ऐसी व्यर्थ बात करने से तो चुप रहना ही अच्छा है। इस चुप्पी के कारण राजा साहब पर थोड़ा अंकुश तो है। वह यह समझते हैं कि मुझे इन बातों का पता नहीं लगता। इसलिये यदि राजा साहब को वह पता चल भी जाय कि लड़की मेरे यहाँ है तो वह इस भय से कि कहीं मुझे यह पता न लग जाय कि लड़की को उन्होंने ही अपने लिए उड़वा मँगवाया है, मुझ से न कुछ कहेंगे और न मेरे विरुद्ध कोई कार्यवाही होने देंगे।”

“यह आपने ठीक सोचा। वास्तव में यह नीति की बात है।” मिथीलाल ने कहा।

“हाँ तो, लड़की को मेरे यहाँ भेज दो। विवाह होने तक मेरे यहाँ बनी रहेगी। तब तक मेरे घर में कुछ सीख भी जायगी। अगहन में-मैं एक सप्ताह या दस दिन की छुट्टी लेकर अयोध्या चला जाऊँगा। मेरे जाने के दो-चार दिन बाद तुम भी मेरे पास पहुँच जाना। बस वही विवाह हो जायगा। तुम यहाँ यह कह कर ही छुट्टी लेना कि विवाह करने जा रहा हूँ। है न ठीक?”

“वाह! इससे सुन्दर और क्या होगा। जब आप इतनी सहायता करने को प्रस्तुत हैं तो फिर सब क्रम चौकस है।” मिथीलाल ने कहा।

मदनमोहन भी प्रसन्न होकर बोला—“यह युक्ति आपने बहुत अच्छी सोची।” मन में मदन ने सोचा तब तक स्नेहलता का इस भी ज्ञात हो जायगा।”

त्रिवेदी जी से विदा होते समय मदन ने पूछा—“उसे आज ही आपके यहाँ भेज दूँ?”

“हाँ आज ही—जब अन्धेरा हो जाय । स्वयं साथ लेकर आना और छोड़ जाना ।

‘बहुत अच्छा’ कह कर मदन मिश्रीलाल सहित विदा हुआ ।

राजा साहब अपने 'प्राइवेट रूम' में बैठे हुए थे। उनके समीप ही प्राइवेट सेक्रेटरी साहब भी विराजमान थे। दोनों मौन बैठे हुए अपने अपने विचारमें मग्न थे। सहसा राजा साहब बोले—“बड़ा आश्चर्य है कि वह लड़की एकदम गायब हो गई।”

“क्या कहा जाय ! बहुत से घरों की खबर आ चुकी है वहाँ लड़की नहीं है।”

“आखिर कहाँ चली गई। जब वह यहाँ तक आ गई थी तो उसे यहाँ होना चाहिये।”

“यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी ने उसे चुपके से पुनः उसके घर पहुँचा दिया हो।”

राजा साहब सोच कर बोले—“हाँ हो सकता है।”

इसी समय एक दास ने आकर कहा—“हुजूर, जयराज हाज़िर हैं।”

“उसे यहाँ भेजो।”

दास चला गया। कुछ क्षण पश्चात् जगराज अन्दर आया। राजा साहब के सामने उसने सिर झुकाया और हाथ बाँध कर चुपचाप खड़ा हो गया।”

राजा साहब बोले—“जगराज, तुमने काम करके अन्त में सब चौपट कर दिया।”

जगराज हाथ जोड़ कर बोला—अन्नदाता ! मुझसे थोड़ी भूल हो गई। सोहनसिंह उसका हाथ पकड़े था, इस कारण मैंने कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया। वह लड़की चालाक थी—उसने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया और भाग खड़ी हुई। ऐसी तेजी से भागी कि हम लोब अवाक् रह गये।

रात का समय था, इस कारण वह अन्धरे में मायब हो गई। बस इतनी मुझसे भूल हुई। इसके लिये सरकार जैसा दण्ड देना चाहें दे लें, मुझे मन्जूर है।”

“तुमको दण्ड देने से हमारा मतलब क्या निकलेगा। आखिर उसे पृथ्वी तो निगल न गई होगी। होगी वह कही यही।”

“इसकी भी खोज हो रही है। दस-बीस घंटों की रिपोर्ट नित्य मिलती है, परन्तु कहीं पता नहीं लगता।”

यह देखो कि वह बाहरवाली कोठी से भागकर कहाँ तक जा सकती है।”

“बाहरवाली कोठी के द्वार के निकट कार खड़ी की गई थी— वहीं से वह भागी। आस-पास सब अपने ही आदमियों के कार्टर तथा बैंगले हैं।

‘उन सब में तलाश करा लिया?’

“हाँ! सब जगह तलाश करा लिया। कार्टरों तक की खबर आ गई। ला० मिथीलाल, मास्टर साहब, बड़े मैनेजर, छोटे मैनेजर इन सब के यहाँ देखवा लिया। बाबू लोगों के भी घर देख लिये गये। खाली त्रिवेदी जी के यहाँ किसी को नहीं भेजा और न उनके नौकरों से पूछा। उनके नौकर बड़े कठुर हैं, होगी भी तो न बतायेंगे।”

राजा साहब बोले—“त्रिवेदी जी के यहाँ न होगी। त्रिवेदी जी इन बातों में नहीं रहते। मैं नहीं चाहता कि उन्हें यह पता लगे कि ऐसी कोई घटना हुई है।”

“इसीलिए उनके यहाँ किसी को नहीं भेजा।”

“अच्छा किया। उनसे अलग ही रहना अच्छा है।”

“अब अन्य लोगों के यहाँ देख-भाल हो रही है, परन्तु पता नहीं लगता।”

“क्या कहा जाय। हाथ में आकर फिर निकल गई, इसका क्या अफसोस है।”

“अभी मैंने हिम्मत नहीं हारी है सरकार ! मैं पता लगा रहा हूँ ।”

“लगाओ ! परन्तु मुझे तो आशा नहीं है । वह यहाँ नहीं है । किसी ने उसे यहाँ से हटा दिया ।”

जगराज सिर झुकाकर मौन हो गया ।

राजा साहब बोले—“अच्छा ! जाओ ! अब उसके लिए कोशिश करना बेकार है ! वह निकल गई ।”

जगराज हतोत्साह तथा अप्रतिभ होकर राजा साहब के सामने से चला-गया । उसके चले जाने के पश्चात् राजा साहब दलजीत सिंह से बोले—“तुम्हारी क्या धारणा है दलजीत ! कहीं जगराज तो चालाकी नहीं कर रहा है ।”

“जगराज सरकार के काम में चालाकी न करेगा । उसे स्वयं बड़ा खेद है । इसके अतिरिक्त उसके साथ सोहन सिंह था, राम सिंह था, ड्राइवर था—इन सब को वह कैसे धोखा दे सकता था ।”

“धोखा न दिया हो, मिला लिया हो ।”

“ऐसा नहीं हो सकता सरकार ! सब मिल जाँय परन्तु ड्राइवर रोशनलाल कभी ऐसा न करेगा ।”

“हाँ रोशनलाल ! मुझे उसका ध्यान ही न था । रोशनलाल सत्य ही हमारे विरुद्ध होकर जगराज का सहायक नहीं हो सकता । यह तुमने ठीक कहा । खैर अब मुझे निश्चय हो गया कि इन लोगों की लापरवाही से यह हुआ ।”

“इसकी कल्पना भी कौन कर सकता था सरकार कि रात के समय, पराये शहर में एक लड़की इस प्रकार भागने का साहस कर सकेगी ।”

“हाँ यह भी ठीक कहते हो । इसीलिए यह लोग कुछ निश्चिन्त हो गये—असावधानी का कारण निश्चिन्तता हुई । खैर जाने भी दो ।”

“हाँ ! कौन ऐसी बड़ी न्यामत थी ! ऐसी ऐसी न जाने कितनी आवेंगी ।”

“तुमने उसे देखा नहीं, चीज बहुत बढ़िया थी।”

“वह बढ़िया ही सही। सरकार के पास घटिया चीज कब आ सकती है। जब आयगी, बढ़िया ही आयगी।”

राजा साहब मौन होकर विचार करने लगे। सहसा वह बोले—
“चलो, लखनऊ हो आवें, पन्द्रह-बीस दिन हो गये।”

“चलिये ! वहाँ जी बहल जायगा।”

“हाँ ! जाओ ठीक ठाक कर लो। पाँच बज रहा है, छः बजे तक चल दें। दस बजे तक वहाँ पहुँच जाँयगे।”

“खाना-खाने के लिये कुसमय हो जायगा।”

“खाना होटल में खा लेंगे।”

“बहुत अच्छा।” कहकर सेक्रेटरी साहब उठ गये।

पौने छः बजे के निकट राजा साहब लखनऊ के लिए रवाना हो गये। साथ में सेक्रेटरी साहब तथा जगराज था, रोशनलाल ‘कार’ ड्राइव कर रहा था। ये लोग तो उधर गये। इधर छोटी रानी स्नान करके शृङ्गार कर रही थी। शृङ्गारमेज के सामने बैठी हुई थी—दा दासियाँ उनके केशों को सँवार रही थीं। एक दासी चुपचाप खड़ी देख रही थी। कुछ क्षण पश्चात् रानी ने उस दासी से कहा—“नीली साड़ी और ब्लाउज निकाल और उसमें सेन्ट बसा दे।” दासी एक अलमारी के पास पहुँची और उसने उसे खोला। अलमारी भौँति भौँति के रंग तथा डिजाइन की साड़ियों से भरी हुई थी। दासी ने नीले रंग का एकरेशमी सेट निकाला और उसे रानी जी को दिखाकर बोली—“यह निकालूँ या कोई बनारसी !”

रानी ने सेट देख कर कहा—“हाँ यही निकाल ले।”

इसके पश्चात् दासी ने एक दूसरी अलमारी खोली। इसमें इत्र तथा सेन्टकी पचासों शीशियाँ चुनी हुई थीं। दासी ने पूछा—“कौनसा सेन्ट बसाऊँ ?”

“ईषनिंग इन पेरिस ! राजा साहबको यही सेन्ट अधिक पसन्द है।”

वह कहकर रानी गुनगुनाने लगी—“बालम आय बसो मेरे मन में।” दासी

सेन्ट की बोटल निकाल कर साड़ी को मुगन्धित करने लगी। इसी समय एक दासी ने आकर सूचना दी—“रानी जी, राजा साहब लखनऊ चले गये।”

रानी ने ‘स्मो’ की शीशी उठाकर उसका ढक्कन खोला ही था— बाँयें हाथ में शीशी थी, दाहिने में ढक्कन ! केश सँवारने वालियाँ चोटी गूँथ रही थीं। यह समाचार सुनकर रानी साहब को जैसे काठ मार गया। उनके दोनों हाथ निष्क्रिय हो गये। कुछ क्षण तक स्तब्ध बैठे रहने के पश्चात् वह एकदम उठ खड़ी हुई—दोनों दासियाँ केश छोड़कर पीछे हट गईं, उनके मुख पर भय प्रस्फुटित हो आया। सेन्ट मलनेवाली दासी का हाथ भी रुक गया और वह भी भयभीत होकर रानी जी का मुख ताकने लगी। रानी ने स्नो का शीशी भूमि पर पटक दी। अपने बाल नोचकर अस्तव्यस्त कर लिये और भूमि पर पैर पटक कर बोली—“निष्ठुर ! नाच ! कौन कहता है कि मैं रानी हूँ ! इससे तो मैं किसी किसान के घर जाती तो सुखी रहती। इस महल से एक मोपदी लाख दर्जे अच्छी थी, इस राजभोग से सूखी रोदियाँ खाने में अधिक सुख मिलता। खाना-कपड़ा मोटा मिलता, पर रात में अपने आदमी की छाती से लगकर तो सोती। वह दिन भर खेत में काम करते हुए रात की प्रतीक्षा करता और मेरे लिए व्याकुल रहता। वह स्थिति कितनी सुखप्रद होती। यह महल नहीं सोने का पिंजरा है, कैदखाना है। लानत है इस रानीपन पर, लानत है इस वैभव पर। फूँक दो इस शृङ्गार सामग्री को, इसमें आग लगा दो।” इस प्रकार बकती भकती हुई रानी वहाँ से चली गई।

केश सँवारनेवाली दासियों में से एक बोली—“धरो उठाके यह साड़ी।”

“रङ्ग में भङ्ग हो गया।”

“कितने उत्साह और उमङ्ग में थीं इस समय महारानी, क्यों असोदा ?”

“हाँ ! पर सब पर ओस पड़ गई ।” जसोदा बोली ।

“बात भी न्याय की यह है कि ऐसी जिन्दगी दो कौड़ी की । जब अपना आदमी अपने बस का न हुआ तो जिन्दगी बर्बाद है ।”

“भला जो तेरा आदमी ऐसा करे तो तू क्या करे ?”

“बोटियाँ नोच-खाऊँ । पर वह बेचारे तो मुझे प्राणों से अधिक चाहते हैं । जब तक मैं यहाँ से छुट्टी पाकर नहीं जाती बेचारे जागते रहते हैं ।”

“यही तो सच्चा सुख है बहिन ! इन साड़ियों और सेन्टों में क्या धरा है । इस मामले में तो हमलोग इनसे अधिक सुखी हैं ।”

इधर तो यह दशा थी उधर दस बजे के लगभग राजा साहब लखनऊ पहुँचे । लखनऊ नगर की सीमा में घुसते ही रोशनलाल डाइवर ने पूछा—“कोठी चलूँ हुआ ?”

“नहीं, पहले होटल चलो ।”

थोड़ी देर में कार एक भव्य बिल्डिंग के पार्च में जाकर खड़ी हो गई । यह होटल बहुत बड़ा था और इसमें राजा, ताल्लुकेदार, रईस तथा बड़े बड़े अँगरेज ही आते थे । एक ओर अनेक प्रकार की ‘कारें’ पंक्ति-बद्ध खड़ी थी । होटल के प्रवेश द्वार पर दो द्वारपाल खड़े थे । इनमें से एक ने तुरंत आकर कार का द्वार खोला । राजा साहब तथा दलजीत सिंह उतरे । जगराज ने पूछा—“कार खड़ी रहेगी ?”

राजा साहब सोचकर बोले—“तुम लोग भी खा-पी-आओ । एक घंटे बाद आ जाना ।”

यह कहकर राजासाहब दलजीतसिंह सहित अन्दर प्रविष्ट हुए । प्रवेशद्वार पर अन्दर की ओर भी दो वर्दीधारी व्यक्ति नियुक्त थे । राजा साहब को देखते ही उनमें से एक बोला—“इधर आइए हुआ !”

यह कहकर वह दोनों को एक ओर ले चला । एक चार सीट की मेज पर दोनों को बिठाकर वह व्यक्ति लौट आया । इसी समय एक

एंग्लोइण्डियन युवती हाथ में कागज का छोटा पेड तथा पेन्सिल लिए हुए पहुँची। उसने पहिले मुस्कराकर राजासाहब से कहा—“गुडईवनिङ्ग राजासाहब।”

“गुड ईवनिङ्ग ! हाउ डू यू डू मिस ?

“हाउ डू यू डू राजा साब । यौर आर्डर प्लीज ।

“फुलकोर्स ! ”

“ओ गुड ! बेरी हंगरी ? ”

“हङ्गरी एज ए हार्स ! ”

“आई सी ! ” कहकर मिस हँसती हुई चली गई ।

एक किनारे पर एक मंच था जिसपर आरकेस्ट्रा बज रहा था ।

थोड़ी देर में दो ब्वाय आकर दोनों के सामने छुरी चम्मच तथा काँटा धर गये और एक एक प्लेट रख गये जिसमें डबल रोटी के कतले सजे हुए थे । इसके पश्चात् पहिले ‘सूप’ की डिश आई । दोनों चम्मच से सूपपान करने लगे । राजा साहब ने लवणपात्र में से, जो पहिले से ही मेज पर रखा था, काली मिर्च की शीशी उठाकर सूप में मिर्च छिड़की । सूपपान करते हुए राजा साहब बोले—“यह लौण्डिया भी बड़ी चुल-बुली है ।”

“यहाँ ऐसी ही छाँटकर रखी जाती हैं । ”

“न हो आज इसी को ले चलो । बात कर लेना । ”

“हाँ ! हाँ ! खाना खा लीजिए । ”

सूप के पश्चात् अन्य डिशें आईं । जब एक डिश समाप्त होती थी तब दूसरी आती थी । डिश रखने तथा उठाने का एक क्रम था—भोजन करने वाले के बाईं ओर से डिश रखी जाती थी और दाहिनी ओर से उठाई जाती थी । अनेक प्रकार के मांस तथा मछलियों की डिश के पश्चात् अन्त में पुडिङ्ग (एक प्रकार का हलुवा) की डिश आई । इसके आने का अर्थ यह था कि कोर्स समाप्त हुआ । भोजन समाप्त होने के

पश्चात् एक एक ग्लास शाम्पेन का आया। शाम्पेन का ग्लास समाप्त करने के पश्चात् सेक्रेटरी साहब ने सिगरेट केस निकाला और एक सिगरेट राजा साहब को दी तथा एक स्वयं सुलगाई। इसी समय वही मिस बिल लेकर आई। बीस रुपये का बिल था। बिल चुकता करके सेक्रेटरी साहब ने उससे अङ्गरेजी में कहा—‘घूमने चलती हो?’

मिस किञ्चित् मुस्कराकर अठिलाती हुई बोली—‘बहुत देर हो जायगी।’

‘नहीं, केवल घण्टे-डेढ़ घण्टे के लिए।’

मिस सोचती हुई बोली—‘अभी यहाँ से छुट्टी मिलने में ही एक घण्टा है।’

‘एक घण्टे की छुट्टी ले लो।’ इस तरह केवल घण्टे आध घण्टे की देर होगी।’

‘अच्छा आप ‘लाउज’ (समय काटने का कमरा) में दस मिनट प्रतीक्षा करें मैं अभी उत्तर देती हूँ।’ यह कह कर चली गई।

दोनों उठकर लाउज में पहुँचे। यहाँ कुछ ताल्लुकेदार, रईस तथा अङ्गरेज अधिकारी उपस्थित थे। प्रायः सब राजा साहबके परिचित थे। राजा साहब उनसे वार्त्तालाप करने लगे। सेक्रेटरी साहब द्वार के पास खड़े सिगरेट पी रहे थे। कुछ मिनट के पश्चात् सहसा सेक्रेटरी साहब कमरे के बाहर चले गये और कुछ क्षण पश्चात् पुनः वहीं आकर खड़े हो गये। राजा साहब से दृष्टि मिलते ही उन्होंने संकेत किया। राजा साहब वार्त्तालाप करने वालों से हाथ मिला कर सेक्रेटरी साहब के पास पहुँचे। सेक्रेटरी साहब बोले—‘चलिये।’

‘सब ठीक?’ राजा साहब ने पूछा।

‘सेक्रेटरी साहब ने सिर हिला कर स्वीकार किया। दोनों बाहर आकर पोर्च की सीढ़ियों पर रुक गये। होटल के एक चपरासी ने कार का नम्बर पूछ कर आश्वर को सूचना दी। कारों की पंक्ति में से एक

कार निकल कर पोर्च में आई। दोनों कार पर बैठे। इस बार सेक्रेटरी साहब अगली सीट पर डाइवर के बगल में बैठे; क्योंकि जगराज नहीं था। कार चल दी। सेक्रेटरी साहब डाइवर से बोले—“जगराज कोठी पहुँच गया?”

“जी!”

“तुम खाना खा आये?”

“खा आया ”

होटल के फाटक से निकल कर कुछ दूर एक स्थान पर, जहाँ कम रोशनी थी; कार रुकवा दी गई। डाइवर ने उतर कर कार का ‘बोनेट’ खोला और वह इंजिन की परीक्षा करने का ढोंग करने लगा। दस मिनट में वही मिस लपकती हुई आई। डाइवर ने झटपट कार का द्वार खोल दिया। मिस कार के अन्दर प्रविष्ट हो कर राजा साहब के बगल में बैठ गई। कार चल दी।

राजा साहब के लखनऊ जाने के दूसरे दिन संध्या समय जब कि शर्माजी सुदर्शन तथा चन्द्रकला को पढ़ाकर जाने लगे, अन्तःपुर की एक परिचारिका ने आकर कहा—“मास्टर साहब जरा ठहर जाइये।” इसके पश्चात् वह बच्चों को लेकर अन्दर चली गई। शर्माजी खुपचाप बैठकर सोचने लगे—“क्या बात है ? क्या उस लड़की का टोह तो नहीं मिल गया। परन्तु राजा साहब तो लखनऊ गये हुए हैं। कहीं आ तो नहीं गये। परन्तु अभी दोपहर के पश्चात् तक तो उनके आने का कोई समाचार नहीं मिला था। क्या बात है।” शर्माजी इसी प्रकार बैठे आकाश-पाताल का तारतम्य मिला रहे थे कि वही परिचारिका पुनः प्रकट हुई। उसने संकेत से शर्मा जी को अपने साथ आने को कहा। शर्मा जी मन्त्र मुग्ध की भाँति उठकर उसके पीछे चले। परिचारिका एक मार्ग से उन्हें छोटे महल के एक कमरे में ले गई। यह कमरा साधारणाकार था। इसमें कौच तथा कुर्सी का एक सेट लगा हुआ था। परिचारिका शर्मा जी को एक कुर्सी पर बिठा कर चली गई। उसके जाने के पाँच मिनट पश्चात् ज्योत्सना कमरे में प्रविष्ट हुई। शर्मा जी ज्योत्सना के वसन-भूषण तथा चेहरे-मोहरे से समझ गये कि छोटी रानी यही है। यह अनुमान लगा कर वह उठ खड़े हुए और उन्होंने ज्योत्सना को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। ज्योत्सना ने किञ्चित् मुस्कराकर सिर हिला दिया। कौच पर स्वयं बैठ कर उसने शर्माजी से बैठने को कहा। शर्मा जी शिष्टतापूर्वक सिमट कर कुर्सी पर बैठ गये।

शर्माजी ने देखा कि रानी के हाथ में एक अङ्गरेजी की पुस्तक है।

कुछ क्षण मौन रह कर ज्योत्सना बोली—“मास्टर साहब ! अभी तक आप बच्चों को पढ़ाते रहे, परन्तु अब मुझे भी पढ़ाना पड़ेगा । साधारण अँगरेजी तो मैं जानती हूँ; परन्तु कठिन अँगरेजी मेरी समझ में नहीं आती ।”

यह कह कर ज्योत्सना ने अँगरेजी की पुस्तक खोली और उसका एक स्थल निकाल कर शर्मा जी की ओर बढ़ाया । “यह पेरा मेरी समझ में नहीं आया, आप समझा दीजिए ।” पुस्तक ‘चार्ल्स गार्विस’ का एक उपन्यास था । शर्माजी ने उपन्यास देख कर कुछ मुँह बनाया । ज्योत्सना उनके मुख का भाव ताड़ कर बोली—“क्या उपन्यास अच्छा नहीं है ?”

“महारानी जी, यह लेखक तो एक साधारण लेखक है ।”

“परन्तु इसने उपन्यास तो बहुत लिखे हैं । मेरे पास इसके कई उपन्यास हैं ।”

उपन्यास तो इसने निस्सन्देह बहुत लिखे हैं, परन्तु सबका कथानक प्रायः एक ही सा है । खैर !”

यह कह कर शर्माजी ने ज्योत्सना का बताया हुआ पेरा पढ़ा । यह ‘पेरा’ प्रेमिक तथा प्रेमिका के प्रेमालाप का एक अंश था ।

शर्माजी ने उसे पढ़ा और सोचने लगे, “इसे कैसे समझाऊँ ।” शीघ्रता में कुछ निर्णय न कर सकने के कारण उन्होंने पूछा—“इसमें क्या बात समझ में नहीं आई ?”

“बस आप पूरा ही समझा दीजिए ।”

शर्माजी संकुचित भाव से उसका साधारण अर्थ समझाने लगे । चुम्बन-आलिङ्गन के स्थल को वह दो एक शब्दों में ही पार कर गये । पेरा समाप्त करके उन्होंने ज्योत्सना से पूछा—“महारानी जी समझ गई ?”

“हाँ समझ में आ गया । बस इतना ही मैं चाहती हूँ । कोई और बढ़िया उपन्यास लेखक बताइये ।”

“कई हैं। परन्तु अभी अम्मास के लिए महारानी सरल भाषा के उपन्यास पढ़ें। अच्छे लेखकों के उपन्यासों की भाषा महारानी के लिए क्लिष्ट पड़ेगी।”

“हाँ यही तो कठिनता है। मैं चाहती हूँ कि एक उपन्यास आद्योपान्त आपसे ही पढ़ूँ।”

“जैसी महारानी की आज्ञा।”

“तो आप कोई उपन्यास मेरे पढ़ने के लिये तय कीजिए।”

“महारानी का अपना निजी पुस्तकालय होगा?”

“हाँ, परन्तु उसमें अङ्गरेजी की पुस्तकें इनी-गिनी ही हैं।”

“क्या पुस्तकें हैं?”

“‘यही ग्रिम्स फेरी टेलस,’ एरेबियन नाइट, एलिस इन वण्डर लण्ड इत्यादि।”

“ये सब पुस्तकें साधारण हैं। अच्छा मैं राज्य के पुस्तकालय से कोई पुस्तक महारानी के योग्य छाँट लूँगा।”

“यह ठीक है। परन्तु आज ही या कल दिन में, जिससे मेरे भड़ने का नागा न हो।”

“कल अवश्य छाँट लूँगा।”

ज्योत्सना एक क्षण मौन रह कर कुछ सकुचाती हुई सी बोली—
“परन्तु यह बात बिल्कुल गुप्त रहे। कदाचित् राजा साहब को पता चल गया तो वह नाराज होंगे।”

यह सुन कर शर्माजी का कलेजा ‘धक्’ से हुआ। वह घबरा गये। उनकी घबराहट को ताड़ कर ज्योत्सना बोली—“आप किसी बात का भय न करें। मेरा मतलब यह था कि आप किसी से इसका चर्चा न करें। यदि आप मौन रहेंगे तो राजा साहब को कदापि पता न चलेगा। यहाँ से आप निर्भय रहें, यहाँ का प्रबन्ध मैं कर लूँगी।”

“जैसी महारानी की आज्ञा। अच्छा तो अब आज्ञा?”

“हाँ अब आप जा सकते हैं। मैं दासी को भेजती हूँ वह आपको पहुँचा आवेगी।”

यह कह कर रानी जी चली गईं। यद्यपि बिजली का पंखा चल रहा था परन्तु तब भी शर्माजी का शरीर पसीने-पसीने हो रहा था। उन्होंने जेब से कमाल निकाल कर मुख तथा माथे का पसीना पोंछा। इसी समय वही परिचारिका, जो इन्हें लाई थी, द्वार से झाँक कर बोली—
“आइये।”

शर्मा जी उसके पीछे हो लिये। वह शर्मा जी को पुनः बच्चों के पढ़ने के कमरे में छोड़ गई, वहाँ से शर्मा जी अपने घर चल दिये। इस समय शर्मा जी की विचित्र दशा थी। वह सोच रहे थे कि—“कहाँ छोड़ो रानी तथा उनकी मण्डली ने उनके विरुद्ध कोई षडयन्त्र तो नहीं रचा है। यदि ऐसी बात है तो बड़ी मुसीबत का सामना है। रानी जी ने कहा है कि किसी को पता न चले। क्या करूँ, किससे परामर्श लूँ। बड़ी कठिन समस्या आ गई।” इसी प्रकार की बातें सोचते हुए शर्माजी घर पहुँचे।

शौच इत्यादि से निवृत्त होकर शर्मा जी मिश्रीलाल की ओर गये। मिश्रीलाल अपने घरके अन्दर थे। नौकर ने जाकर शर्मा जी के आने की सूचना दी। थोड़ी देर में मिश्रीलाल हाथ में छड़ी लिये हुए बाहर निकले और बोले—“घूमने चल रहे हो?”

“हाँ! हाँ! चलो। मैं भी तैयार हो आऊँ।”

यह कहकर शर्मा जी लौट आये और शीघ्रतापूर्वक तैयार होकर बाहर निकले। लाला साहब फाटक पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। शर्माजी लाला के घर की ओर जाने लगे तो उन्होंने पुकारा—“इधर आइये शर्मा जी।” शर्मा जी घूम पड़े और लपक कर मिश्रीलाल के पास पहुँच गये। दोनों चले।

लाला साहब इधर उधर की बातें करने लगे, परन्तु शर्मा जी को

अन्यमनस्क देखकर बोले—“आज कुछ चिन्तित दिखाई पड़ते हो—क्या बात है ?”

“नहीं, चिन्ता तो कुछ नहीं है।”

मिश्रीलाल पुनः वार्त्तालाप करने लगे। शर्मा जी कुछ क्षण तक तो उनकी बात ध्यानपूर्वक सुनते रहे, बीच-बीच में स्वयं भी कुछ कहते रहे; परन्तु उनके मस्तिष्क में मँडरानेवाले विचारों ने उन्हें पुनः अपनी ओर खींच लिया और शर्मा जी पूर्व की भाँति अन्यमनस्क होकर केवल ‘हूँ ! हूँ !’ करने लगे। यह दशा देखकर लाला जी पुनः बोले—“आज आप कुछ चिन्तित अवश्य हैं।”

शर्मा जी सोचने लगे कि—“क्या करूँ, इनसे कहूँ या न कहूँ। ऐसा न हो कि बात फैल जाय। परन्तु बिना किसी से परामर्श लिये तो काम चलेगा नहीं। लाला जी ऐसे आदमी तो नहीं हैं कि निश्वासघात करें। इनसे सब बात कह देना चाहिये—जो कुछ होगा देखा जायगा।”

लाला जी पुनः बोले—“आखिर क्या बात है ?”

“क्या बताऊँ लाला जी, एक बड़ी विकट परिस्थिति आगई है।”

“क्या, कुछ मालूम तो हो।”

शर्मा जी ने भगवान का नाम लेकर सब बात बता दी। सब सुनकर लाला जी मुस्कराये और बोले—“आप का भाग्य खुलता दिखाई पड़ रहा है। ऐसा जान पड़ता है छोटी रानी आप पर रीक गई।”

शर्मा जी अवाक् होकर लाला का मुँह ताकने लगे। उनका ध्यान इस ओर नहीं गया था। लाला जी ने पूछा—“क्या त्रिवेदी जी की ओर चलियेगा ?”

“लौटते हुए चले चलेंगे, पहले इस विषय पर बात कर लें।”

“अच्छा तो इधर आइये !” यह कहकर लालाने दिशा बदल दी।

शर्माजी बोले—“आपने मजाकमें बात टाल दी। कुछ बातें नहीं।”

“उसमें बताना क्या है, बिल्कुल स्पष्ट बात है कि रानी आप पर मुग्ध हैं, पढ़ने-पढ़ाने का तो केवल बहाना है।”

“तब तो और भी मुसीबत है।” शर्मा जी ने घबराकर कहा।

“मुसीबत कहे की, मौज है कहिये।”

“ऐसी मौज को मैं दूर से ही नमस्कार करता हूँ—इसमें जान का खतरा है, नैतिक पतन है, पाप है—इसमें क्या नहीं है?”

“जान का खतरा बहुत ही कम है। जब तक रानी जी न चाहेंगी आपका कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा। रही नैतिक पतन की बात—मो ऐसा कुछ पतन भी नहीं है।” अन्तिम वाक्य लाला ने मुस्कराकर कहा।

“आप हँसते हैं मेरी जान पर बनी हुई है। जान पड़ता है इस्तीफा देकर भागना पड़ेगा।”

“क्या बात करते हो। भागें तुम्हारे शत्रु—तुम क्यों भागो।”

“आखिर छोटी रानी से कैसे प्राण बचेंगे?”

“तो अभी आप से उन्होंने कहा क्या है, केवल पढ़ने को ही तो कहा है?”

“हाँ।”

“तो बस फिर! आप पढ़ाइये और अभी से अपना व्यवहार ऐसा कर लीजिए कि रानी का आगे बढ़ने का साहस ही न पड़े। यह तो स्वयं आप के हाथ की बात है।”

शर्मा जी को मानो अन्वकार में प्रकाश मिला। नेत्र विस्फारित करके बोले—“यह आप ने बहुत सुन्दर बात बताई। मैं आरंभ से ही ऐसी शिक्षा आरंभ करूँगा कि रानी जी का यदि कोई बुरा भाव हो भी तो वह बदल जाय।”

“बस! सीधी सी बात है। यदि इससे काम न चले और रानी जी की भावना में परिवर्तन न हो तब सोचा जायगा कि क्या करना चाहिए।”

“यह ठीक है।” शर्मा जी ने सन्तोष की श्वास लेकर कहा।

“आप बड़ी जल्दी घबरा जाते हैं।”

“क्या कहूँ। कभी इन बातों में पड़ा नहीं। कालेज से निकल कर सीधा यहाँ चला आया।”

“यही कारण है। राज्यों में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं। आप के स्थान पर यदि कोई यहाँ का अनुभवी व्यक्ति होता तो आज वह भी का दीपक जलाता। वह समझता कि उसके भाग्य खुल गये।”

“परन्तु इसे अपने तक ही रखियेगा।”

“क्या बात कहते हैं आप। ऐसी बात भला किसी को बताई जा सकती है। आप निश्चिन्त रहिये। मैं तो आपका हितैषी हूँ, अहिता-कांक्षी नहीं।”

“इसमें सन्देह नहीं। आपसे मेरी कोई बात छिपी नहीं है। और जब कोई विषम परिस्थिति आती है तो आपके परामर्शानुसार ही कार्य करता हूँ।”

“मैं भी आपको उचित सलाह देता हूँ।”

“इसके लिये मैं हृदय से आपका कृतज्ञ हूँ। यहाँ केवल आप तथा त्रिवेदी जी—दो व्यक्ति ही ऐसे हैं जो पिता के समान मेरी रक्षा करते हैं।” यह कहते कहते शर्मा जी के नेत्र तरल हो उठे। मिथीलाल इस बात को लक्ष्य करके बोले—“आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें। हम लोगों से, आपका कोई अपकार, न होगा।”

कुछ देर दोनों मौन रहे, तदुपरान्त शर्मा जी बोले—“एक जोखिम तो रहेगी ही।”

“वह क्या?” लाला ने पूछा।

“यदि राजा साहब को पता लग गया तो वह मेरे शत्रु हो जायेंगे।”

“राजा साहब को पता लगने की सम्भावना तो है।”

“सम्भावना है तो जोखिम भी है।”

मिश्रीलाल विचार में पड़ गये। कुछ देर विचार करने के उपरान्त बोले—“मेरे विचार में तो यह आता है कि आप इस समस्या को रानी के सन्मुख उपस्थित कीजिए, देखिये वह क्या उत्तर देती हैं।”

“किस तरह उपस्थित करूँ?”

“उनसे कह दीजिए कि ‘मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ परन्तु इसके लिये राजा साहबसे आज्ञा ले ली जाय, क्योंकि यदि उन्हें पता लग गया तो मेरे और आपके दोनों के लिए उसका परिणाम भयानक होगा।’ ऐसा कहकर देखो—क्या उत्तर देती हैं?”

“हाँ यह बात आपने बड़े मार्कें की बताई। मैं ऐसा अवश्य करूँगा।”

“जो कुछ वह उत्तर दें उस पर विचार करके भावी नीति स्थिर की जाय।”

“यह ठीक है।”

दूसरे दिन शर्मा जी पुनः उसी समय छोटी रानी के पास पहुँचाये गये। आज शर्मा जी एक अंग्रेजी पुस्तक ले कर पहुँचे। ज्योत्सना को पुस्तक देकर वह बोले—“मेरी राय में आप पहले यह पुस्तक पढ़ें।”

ज्योत्सना ने पुस्तक उलट-पलट कर देखते हुए पूछा—“कौन उपन्यास है यह?”

उपन्यास तो नहीं है। इसका नाम है ‘सफलता की कुंजी’। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये किन किन गुणों की आवश्यकता होती है—इसका इस पुस्तक में बड़ा सुन्दर विवेचन है।”

ज्योत्सना उत्सुकतापूर्वक बोली—“तब तो अच्छी पुस्तक है। मुझे ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता भी है।”

इसके पश्चात् शर्मा जी ने पुस्तक का प्रथम परिच्छेद ज्योत्सना

को पढ़ाया। पढ़ चुकने पर ज्योत्सना बोली—“पुस्तक तो बड़ी अच्छी मालूम होती है।”

“बड़ी अच्छी पुस्तक है। आप जैसे जैसे इसे पढ़ती जाँयगी वैसे वैसे आपको इस पुस्तक की उपयोगिता का ज्ञान होता चला जायगा। भाषा भी सरल, सुबोध और जोरदार है।”

विदा होते समय शर्मा जी बोले—“रानी जी से मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।”

“वह क्या ?” ज्योत्सना ने पूछा।

“यदि रानी जी राजा साहब से भी अनुमति ले लेती तो बड़ा अच्छा होता। ऐसा न हो कि यदि राजा साहब को पता लगे तो वह इसके कुछ और अर्थ लगा कर मुझे और आपको अपराधी ठहरावे।”

ज्योत्सना किञ्चित् मुस्कराकर बोली—“आपको भय लगता है क्या ?”

शर्मा जी हाथ जोड़ कर बोले—“मुझे आपसे भय नहीं लगता आपको मैं अपनी माता के समान समझता हूँ। कोई बालक अपनी माता से भय नहीं करता। अपने से मुझे इस कारण भय नहीं लगता कि मेरा अन्तःकरण शुद्ध है। मलिन तथा अशुद्ध अन्तःकरण वालों को ही अपने से भय होता है। परन्तु राजा साहब से मुझे अवश्य भय है। रानी जी मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मेरे माता-पिता, भाई-बहिन कोई नहीं हैं, केवल एक विधवा बुआ है जो मेरी ही आश्रिता है। उदरपोषण तथा संसार का अनुभव प्राप्त करने के लिए मैंने आपके दरबार का आश्रय लिया है। जब तक आपका अन्न-जल खाना-पीना बड़ा है तब तक यहाँ रहूँगा, उसके पश्चात् प्रारब्ध जहाँ ले जायगा जाना पड़ेगा। मेरी यह प्रबल इच्छा है कि जब तक आपका आश्रित रहूँ तब तक मेरे किसी कार्य से किसी को दुःख अथवा हानि न पहुँचे। अतः यदि मुझसे ऐसा कोई कार्य हो गया जिससे कि स्वयं राजा साहब को ही दुःख पहुँचा तो मेरा जीवन कटु हो

जायगा। यदि राजा साहब के कोप से बच भी गया तब भी मेरी आत्मा को यह बात सदैव क्लेश पहुँचाती रहेगी कि मैं अपने आश्रयदाता, अन्न-दाता पिता तुल्य स्वामी के क्लेश का कारण बना। आपको मैं माता के समान मानता हूँ अतः अपने मन की बात माता से न कहूँ तो किससे कहूँ, क्योंकि केवल माता ही पुत्र को सत्परामर्श दे सकती है।”

शर्माजी की बात सुन कर ज्योत्सना का मुँह उतर गया। वह भौंचक्की सी होकर शर्माजी का मुँह ताकने लगी। उसे इस प्रकार अपनी ओर ताकते देख कर शर्माजी ने अपनी आँखें नीची कर ली। कुछ देर तक ज्योत्सना मूर्तिवत बैठी सोचती रही। शर्मा जी की दृष्टि ज्योत्सना के चरणों पर थी, उनका कलेजा धड़क रहा था— इस आशङ्का से कि उनकी बातका रानी जी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सहसा ज्योत्सना बोली। शर्मा जी ने आखे ऊपर करके उसकी ओर देखा। ज्योत्सना के नेत्रों में आँसू भरे थे। वह बोली—“मैं राजा साहब की अनुमति लिये बिना जो गुप्त रूपसे आपको अपने पास बुलाती हूँ तो निश्चय ही आपके और अपने लिए एक बड़े सङ्कट को निमन्त्रण दे रही हूँ। परन्तु मैं क्या करूँ मैं दुःखी हूँ शर्मा जी। रानी होते हुए भी दुःखी हूँ। तुमने मुझे अपनी माता बनाया है आज से मैं भी तुम्हें अपना पुत्र मानूँगी। परन्तु क्या तुम एक सुपूत की भाँति अपने माता का दुःख दूर करने की चेष्टा करोगे?”

रानी के गद्गद कण्ठ से उग्युक्त बात सुन कर शर्मा जी बोले—“यदि माता का दुःख दूर करने में इस पुत्र को अपने प्राणों का बलिदान भी करना पड़ेगा तो ईश्वर की दया से यह कभी पीछे पैर न हटायेगा।”

“अच्छा किसी दूसरे समय मैं तुम्हें अपना दुःख बताऊँगी और अब पहिले मैं राजा साहब से अनुमति लेकर ही तुम्हें बुलाऊँगी।”

विदा होते समय शर्माजी ने ज्योत्सना के चरण छुए, ज्योत्सना ने वात्सल्यपूर्ण प्रेम के साथ शर्माजी के सिर पर हाथ रखा।

बाहर निकल कर शर्मा जी ने मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया कि—“प्रभो आपके अनुग्रह से ही ऐसी कठिन समस्या इतनी सरलता पूर्वक सुलभ गई।”

शर्माजी ने मिथीलाल को वृत्तान्त सुनाया। सब सुन चुकने पर वह प्रसन्नमुख हो बोले—“जब भगवान ही तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं। तब क्या डर है। अपने आदर्श पर दृढ़ रहो—ईश्वर सब अच्छा ही करेगा।”

(१३)

विजय दशमी के लिए राज्य में तैयारी हो रही थी। इस कार्य के लिए राज्य भर के किसानों से उनकी हैसियत के अनुसार चन्दा एकत्र किया गया था। राजा साहब विजय दशमी धूमधाम से मनाते थे। रामलीला तो होती ही थी, साथ में वेश्या नृत्य भी होता था, भाँड़ भी आते थे। संगीत के कलाकार-गायक तथा वादक भी आते थे। राज्य में बसने वाली देहाती वेश्याएँ तो स्वयं ही आती थीं। उन्हें यथायोग्य पुरस्कार दिया जाता था। कुछ विख्यात वेश्याएँ तथा भाँड़ों की मण्डलियाँ बुलाई जाती थीं, कुछ गायक-वादक भी बुलाये जाते थे, शेष प्रति वर्ष स्वयं ही हाजिर होते थे। इन लोगों को भी पुरस्कार मिलता था। आतशबाजी भी छुड़ाई जाती थी। इस प्रकार एक सप्ताह अच्छा समारोह रहता था। राज्य के खास खास जमींदार आमन्त्रित किये जाते थे। उनके रहने तथा भोजन की व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी। हाकिम-हुकाम भी निमन्त्रित किये जाते थे। उनके स्वागत का भी समुचित प्रबन्ध रहता था। इस कार्य के लिए एक भवन अलग बना हुआ रहता था।

इस भवन में एक बहुत बड़ा हाल था जिसमें हजार बारह सौ आदमी बैठ सकते थे। हाल के चारों ओर दो मंजिले पर गेलरी बनी हुई थी। इस गेलरी में रानियाँ उनकी दासियाँ तथा राजकर्मचारियों के घर की स्त्रियाँ बैठ कर महफिल देखती थीं। हाल के चारों ओर कमरे बने हुए थे जिनमें कुछ कमरे अतिथियों के ठहरने के काम आते थे और कुछ में महफिल के समय जल पान इत्यादि का प्रबन्ध था।

ज्योत्सना ने शर्माजी से पढ़ने के लिए राजा साहब से आज्ञा प्राप्त कर ली थी। पहले तो राजा साहब को कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ था,

परन्तु जब ज्योत्सना ने शपथ-पूर्वक शर्माजी के प्रति अपना माता-भाव तथा अपने प्रति शर्माजी का पुत्र भाव बताया तब राजा साहब को विश्वास हो गया और उन्होंने आज्ञा दे दी। अब शर्मा जी स्वच्छन्दता पूर्वक महल में आने-जाने लगे। ज्योत्सना ने बड़ी रानी से भी शर्माजी का साक्षात् करा दिया और बड़ी रानी भी शर्मा जी से बड़ा स्नेह करने लगीं।

पहिले जो राजकर्मचारी शर्माजी को एक साधारण अध्यापक समझ कर उनकी उपेक्षा करते थे वे अब उनका आदर-सम्मान करने लगे। चन्द्रशेखर सिंह, सेक्रेटरी दलजीत सिंह, शङ्करसिंह इत्यादि अब शर्माजी को भी राज्य का महत्वपूर्ण पदाधिकारी समझने लगे। शर्मा जी अपने भाग्य के इस आकस्मिक परिवर्तन पर आश्चर्य चकित थे। रानियों की कृपा दृष्टि होते ही वह प्रथम पंक्ति में आ गये, इस भाग्योदय की उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी।

विजय दशमी का दिन था। आज काफी चहल-पहल थी। नौकरों तथा चपरासियों को नई बर्दियाँ दी गई थीं। अन्य कर्मचारी भी अपने अपने पदानुसार नई तथा भड़कीली पोशाकें पहने हुए थे। शर्माजी ने भी इस अवसर के लिए एक नया सूट सिलवाया था। सन्ध्या समय रावणवध के पश्चात् आतिशबाजी छुड़ाई गई। रात में दस बजे बृहत् भोज हुआ। इसमें तहसीलदार, हाकिम परगना तथा पुलिस कर्मचारी भी सम्मिलित हुए। राजा साहब कलक्टर साहब को स्वयं निमन्त्रण देने गये थे और कलक्टर साहबने आने का वादा भी किया था। ऐसी खबर थी कि कलक्टर साहब केवल आध घण्टे के लिए आवेंगे।

कलक्टर साहब के लिए एक कमरे में प्रबन्ध किया गया था। उनके साथ राजा साहब तथा कुछ अन्य विशेष व्यक्ति सम्मिलित होने वाले थे। कलक्टर साहब के भोज के लिए लखनऊ के एक बर्दिया होटल का प्रबन्ध था। बर्दिया अंग्रेजी खाना, अनेक प्रकार की मूल्यवान शराबों का प्रबन्ध था। शेष व्यक्तियों के लिए अलग प्रबन्ध था। ठीक दस बजे से नृत्य-गायन

का समारोह था। नृत्य शाला में श्वेत फर्श पर ऊनी तथा मखमली कालीन बिछाये गये थे और गाव तकिये लगाये गये थे। बीच में एक प्रमुख स्थान पर कारचोवी काम के मखमली मसनद तथा तकिये लगाये गये थे। यह स्थान राजा साहब के बैठने के लिए था। गेलेरी में चारों ओर चिकें लगा दी गई थीं।

पौने दस बजे के लगभग कलक्टर साहब कार द्वारा पहुँचे। राजा साहब ने उनका स्वागत किया। राजा साहब ने उन्हें नृत्यशाला में ले जाकर अपने स्थान पर बिठाया। कलक्टर साहब के बैठते ही एक विख्यात नर्तकी का नाच-गाना आरम्भ हो गया। पन्द्रह-बीस मिनट तक नाच देखने के पश्चात् कलक्टर साहब ने उठने की इच्छा प्रकट की। राजा साहब ने उनसे भाँड़ों की एक नकल देखने की प्रार्थना की। कलक्टर साहब ने स्वीकार किया। तुरन्त भाँड़ों की नकल आरम्भ कराई गई। राजा साहब कलक्टर साहब को नकल की खास खास बातें समझाते जा रहे थे। खूब हँसी हुई। कलक्टर साहब भी हँस पड़े। कलक्टर साहब के हँसते ही राजा साहब का सारा परिश्रम सफल हो गया। यद्यपि कलक्टर साहब के हँसने से पानी नहीं बरसा तथापि कलक्टर साहब के मुख-पेत्ती, जिनकी संख्या कदाचित् ६६.६ प्रतिशत थी, सुधाकीच के छींटों से सफल मनोरथ हो गये।

नकल देख कर कलक्टर साहब उठ खड़े हुए। राजा साहब कलक्टर साहब को भोजन गृह में ले गये। वहाँ कलक्टर साहब ने राजा साहब तथा कुछ अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ भोजन किया। भोजन में गोमांस नहीं था; अन्य कई प्रकार के मांस थे। बकरा, मुर्ग, सुअर, मछलियाँ, हरियल व जङ्गली बटेर इत्यादि। भोजन में एक घण्टा लगा। इसके उपरान्त कलक्टर साहब तो विदा हो गये, शेष लोग रात भर शराब पीते रहे और जलसा देखते रहे। खूब हूहक-होहसा होता रहा। कुछ मन चले लोग नशे में मस्त होकर नर्तकियों के साथ स्वयं भी नाचे। स्त्रियों

की गेलरी तो बारह बजे के पश्चात् ही खाली हो गई थी, इस कारण मुन्षों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। एक डिप्टी कलक्टर साहब नर्त्तकी को गोद में उठा कर नाचने लगे। डिप्टी साहब के इस कौशल पर खूब वाह वाह हुई; मानो डिप्टी साहब ने कोई अभूतपूर्व बात दिखाई। वास्तव में बात तो अभूतपूर्व थी ही। एक डिप्टी कलक्टर का, शराब के नशे में चूर होकर, भरी महफिल में नर्त्तकी को गोद में उठा लेना और उसे गोद में लिए हुए थिरक थिरक कर नाचना एक ऐसा दृश्य है जिसे देखने के लिये यदि टिकट लगाया जाय तो रुपया बरस पड़े। नाच समाप्त करके नर्त्तकी को गोद से उतारते हुए डिप्टी साहब ने नर्त्तकी का मुँह चूम लिया। इस पर इस जोर का कदकहा लगा कि हाल बेचारा भी थरा उठा। शर्मा जी एक कोने में बैठे हुए इस दृश्य को देखकर चकित हो रहे थे। उनके मुख पर दुःख तथा घृणा का भाव था। लाला मिश्री-लाल तथा त्रिवेदी जी तो कलक्टर साहब के विदा होते ही अपने अपने घर चले गये थे। उनके लिए इस समारोह में नवीनता नहीं थी, परन्तु शर्मा जी का यह पहिला अवसर था इस कारण वह बैठे रहे। भाई ने एक नकल की जो शर्मा जी को बहुत पसन्द आई और वह खूब हँसे। नकल यह थी कि एक भाँड़ पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट बना, एक डी० एस० पी०, एक इन्स्पेक्टर, एक थाना इन्चार्ज, एक सेकेण्ड अफसर, एक हेड कान्स्टेबिल, एक कान्स्टेबिल, एक ताँगेवाला, तथा एक ताँगेवाली की पत्नी। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने किसी नुटि पर डी० एस० पी० को भाड़ा। डी० एस० पी० ने आकर इन्स्पेक्टर की खबर ली, इन्स्पेक्टर ने थाना इन्चार्ज को डाँटा, थाना इन्चार्ज ने सेकेण्ड अफसर को फटकारा और सेकेण्ड अफसर ने चीफ को, चीफ साहब ने कान्स्टेबिल पर क्रोध शान्त किया। कान्स्टेबिल खून का घूँट पीकर बाहर निकला और उसने एक ताँगेवाले को ठोक दिया। ताँगेवाले को और कोई न मिला तो उसने घर जाकर अपनी पत्नी की मरम्मत कर डाली। पत्नी ने अपने बच्चे को पीट

ढाला। इस प्रकार कप्तान साहब का क्रोध अनेक सीढ़ियों पार करके तंगी-वाले के बच्चे पर जाकर समाप्त हुआ। इस नकल पर खूब हँसी हुई और पुलिस कर्मचारी बुरी तरह झोंपे। थानेदार साहब बोले—“यह भाँड़ बड़े हरामजादे होते हैं, ऐसी नकलें करते हैं कि क्या कहा जाय।”

थानेदार साहब के बगल में बैठे हुए एक सज्जन ने पूछा—“यह बताइये कि नकल ठीक की या इसमें कुछ सुबालगा (अत्युक्ति) है?”

थानेदार साहब शराब के नशे में थे और शराब का नशामनुष्य को मुक़द्दस तथा मुक़्तजिह्वा बना देता है; इस कारण थानेदार साहब बोले—“नकल तो सत्तो ने ठीक की। वाकई जब हम लोगों को अफसर किसी बात पर डाँटते-फटकारते हैं तब हम उसका बदला अपने मातहतों से इसी तरह लेते हैं। मगर इन बदमाशोंको इन बातोंका पता कहाँसे चलता है।”

थानेदार साहब के पीछे उनके सेकेन्ड आफिसर बैठे थे वह बोले—“हमी आप से मालूम हो जाता है। ये लोग खोजू होते हैं, पेट में घुसके बात निकाल लेते हैं।”

यह नकल समाप्त होते ही शर्मा जी चुपके से उठ कर चल दिवें। हाल के सामने कुछ कमरों की कतार थी। उनमें से एक का द्वार कुछ खुला हुआ था। उस ओर दृष्टि पड़ी तो शर्माजी ने देखा एक अर्द्धवयस्क व्यक्ति एक नर्तकी को बाहुपाश में लिये बैठा है। शर्मा जी यह दृश्य देख कर लम्बे लम्बे डग रखते हुए अपने घर की ओर भागे। यह जलसा सबेरे चार बजे तक चलता रहा।

शर्माजी सबेरे कुछ देर संसो कर उठे। आठ बज चुका था। मिश्रीलाल से साक्षात् होने पर उन्होंने शर्मा जी से पूछा—“रात में किस समय जाँटे थे?”

“दो वा डेढ़ बजा होगा। उम्र में पहली बार ऐसा दृश्य देखा।”

“ना बच्चे से भैरवी है—जाओगे? बारह बजे तक भैरवी होगी।”

“अब मैं कहीं न जाऊँगा। रात में अच्छी तरह तृप्त हो गया भला इस सब में कितना खर्च हुआ होगा ?”

“तीस हजार के करीब खर्च होता है। ढाई-तीन हजार का तो केवल कलक्टर साहब की दावत का बिल होता है।”

“कलक्टर साहब के साथ तो केवल पन्द्रह आदमियों ने भोजन किया था।”

“जी हाँ, केवल पन्द्रह आदमियों के भोजन तथा शराब में इतना खर्च हो जाता है। होटलवाले अपने नौकर, बावर्चा तथा बर्तन इत्यादि यहाँ लाते हैं, उनका भी तो चार्ज करते हैं।”

“फिर भी यह बहुत अधिक है।”

“अब जो समझिये। आप इतना ही सुनकर घबरा गये। एकबार गवर्नर साहब की दावत की गई थी। उसमें कुल तीस-चालीस आदमी थे। आप बता सकते हैं कि उसमें कितना खर्च हुआ होगा ?”

“पाँच-छः हजार !”

“बस ! बारह हजार रुपये खर्च हुए थे।”

“जलसा-बलसा भी हुआ था ?”

“जी नहीं ! केवल सजावट तथा भोजन और शराब में।”

“ओफ ओह ! कुछ ठिकाना है ! बड़ा खर्च होता है।”

“जी हाँ ! इन लोगों की दावत करना दिल्ली नहीं है। अनेक छोटे-मोटे राज्य तो इन्हीं बातों में अणुगस्त हो जाते हैं। अपनी शक्ति के बाहर ऐसी दावतों में खर्च करते हैं, चन्दे देते हैं। परिणाम यह होता है कि अणु के बोझ से दबे रहते हैं। परन्तु हमारे यहाँ तो त्रिवेदी जी की नीति बर्ती जाती है। उनकी नीति के अनुसार चलने से अधिक खर्च नहीं होने पाता।”

“तब तो त्रिवेदी जी राज्य के सब से महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। परन्तु उन्हें उनके कार्य के अनुरूप वेतन नहीं मिलता। ऐसे व्यक्ति का वेतन तो हजार-बारह सौ से कम न होना चाहिये।”

“इसमें क्या सन्देह है। परन्तु त्रिवेदी जी बड़े सन्तोषी आदमी है। एक बात और भी है कि समय समय पर राजा साहब त्रिवेदी जी को वैसे भी रुपया देते रहते हैं। कपड़ों के लिए हजार पाँचसों दे दिये, कभी कोई मूल्यवान वस्तु लाकर भेंट कर दी। इसी कारण त्रिवेदी जी सन्तुष्ट रहते हैं। उनका खर्च आराम से चलता रहता है; इस लिए वह कुछ नहीं बोलते—जो मिल जाता है, खुशी से ले लेते हैं।”

“त्रिवेदी जी दर्शनीय व्यक्ति हैं।”

“इसमें क्या सन्देह है। कल क्या कुछ भगड़ा भी हो गया था ?”

“मेरे सामने तो हुआ नहीं। आपको कैसे मालूम हुआ।”

“मेरे नौकर ने बताया ! आपके चले आने के बाद हुआ। कुछ लोग शराब के नशे में परस्पर हँसी-मजाक करते करते लड़ने लगे। पहिले गाली-गलौज हुई, फिर अस्तीनें चढ़ गईं; परन्तु लोगों ने बीच-बचाव कर दिया।”

“शराब पीकर आदमी आदमी नहीं रहता।”

“बड़ी बुरी चीज है, भगवान बचाये। परन्तु आज कल तो यह सभ्यता का अङ्ग समझी जाती है। ऊँचे दर्जे की फेशनेबिल पार्टियों में इसके बिना काम ही नहीं चलता।”

हाँ साहब ! समय की बात है। अच्छा अब चल कर स्नान-वस्नान करें।”

“हाँ मैं भी स्नान करूँगा।”



(१४)

विजयदशमी के पश्चात् दीपावली बीत गई । दीपावली पर कोई विशेष बात नहीं हुई । रोशनी तो की गई परन्तु अन्य कोई उत्सव नहीं मनाया गया । राजा साहब को जुआ पसन्द नहीं था । जुआ के प्रति उन्हें स्वाभाविक अरुचि थी । वैसे सङ्गत में पड़ जाने के कारण कभी कभी विज खेल लिया करते थे, परन्तु उसके प्रति उन्हें कोई अनुराग नहीं था ।

दीपावली हो जानेके पश्चात् एक दिन जब कि शर्मा जी संध्या समय त्रिवेदीजी के घर पर बैठे थे, उन्होंने कहा—“अगहन आ रहा है शर्माजी ! अब मैं छुट्टी लेकर अयोध्या जाने वाला हूँ ।”

शर्माजी का कलेजा धक् से हुआ । अपने विवाह की बात वह प्रायः भूले हुए थे, त्रिवेदीजी के कहने से उन्हें स्मरण हो आई । वह बोले—

“अच्छा ! कब जाइयेगा ?”

“बस कार्तिकी पूर्णिमा के दो चार दिन पहले चला जाऊँगा । कार्तिकी मैं अयोध्या में ही करूँगा ।”

“एक महीने की छुट्टी लेंगे ?”

“हाँ !”

बुद्ध क्षण दोनों मौन रहे । सहसा त्रिवेदी जी ने पूछा—“आप अपने दचन पर दढ़ हैं न ?”

शर्मा जी अपने सूखे ओठों पर जीभ फेरते हुए बोले—“निस्सन्देह ! जो वचन दिया जा चुका है उसका पालन अवश्य किया जायगा । परन्तु मुझे कब आना होगा ?”

“बस अगहन आरम्भ होते ही आजाइयेगा। या ऐसा करें कि पहले मुहूर्त निकलवा लें। उसी मुहूर्त के दो चार दिन पहिले आप आ जाइयेगा।

“हाँ ! मैं भी यही चाहता हूँ कि अधिक दिनों की छुट्टी न लेनी पड़े।”

“पन्द्रह दिन की छुट्टी ले लेना।”

“बस ! यही मैं भी चाहता हूँ।”

“अच्छी बात है, कल या परसों मुहूर्त निकलवा लूँगा। अपनी बुआजी को भी लाओगे न ?”

“हाँ ! जब विवाह के लिए छुट्टी लूँगा तो बुआजी को भी लाना पड़ेगा।”

“ठीक बात है।”

“यदि मिथीलालजी को भी छुट्टी मिल सकती तो उन्हें भी साथ ले आते।”

“यह असम्भव है। मेरी अनुपस्थिति में उनका यहाँ रहना अत्यन्त आवश्यक है।”

“यदि ऐसी बात है तो कोई आवश्यकता नहीं।”

“तुम्हें कोई बरात थोड़े ही बनाना है।”

“बरात का तो कोई प्रश्न नहीं है। मित्रता की दृष्टि से कहता हूँ कि यदि वहाँ होते तो अच्छा था।”

“हाँ, परन्तु उनका जाना संभव नहीं है।”

कुछ क्षण मौन रह कर शर्मा जी बोले—“मेरे विवाह का कोई सामान तो है नहीं।”

“सामान कैसा ?”

“यही कपड़ा-जेवर इत्यादि ! और न पास रुपया ही है जो बनवा अथवा खरीद सकूँ।”

“कोई आवश्यकता नहीं है। बाद को अपना धीरे धीरे बनवाते रहना।”

“यही हो सकता है।”

उसी रात को शर्माजी ने मिश्रीलाल से कहा—“त्रिवेदी जी छुट्टी पर जाने वाले हैं।”

“हाँ ! मुझ से भी कहते थे। आपका विवाह करना है।” मिश्रीलाल ने मुस्कराकर कहा।

“क्या बताऊँ अभी मेरा विवाह करने का इरादा नहीं था, परन्तु त्रिवेदी जी से बचनवद्ध हो चुका हूँ।”

“आखिर आप विवाह से इतना भड़कते क्यों हैं ?”

“नहीं, भड़कने का तो कोई प्रश्न नहीं है।”

“तब फिर विवाह के नाम से आपके चेहरे पर हवाईयों क्यों उड़ने लगती हैं ?”

“बात यह है कि विवाह के पश्चात् उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है।”

“तो आप क्या उत्तरदायित्व से भागते हैं ?”

“नहीं, भागने की कौन सी बात है। हाँ इतना अवश्य चाहता था कि अभी कुछ दिन और ऐसे ही चलता रहता।”

“नहीं ! अब आपको विवाह कर ही लेना चाहिए। फिर क्या बुढ़ापे में विवाह करोगे ?”

“नहीं ! अभी से बुढ़ापा कहाँ आ जायगा।” शर्माजी ने हँस कर कहा।

“कोई और कारण तो नहीं है ?” मिश्रीलाल ने किञ्चित् मुस्कराकर पूछा।

शर्माजी मिश्रीलाल के प्रश्न से कुछ चौंक कर बोले—“और कारण कैसा ?”

“कारण मैं क्या जानूँ—आपसे पूछता हूँ। और मित्रता के नाते मुझे आप से पूछने का अधिकार भी है।”

“हाँ, क्यों नहीं।”

यह कह कर शर्मा जी सोचने लगे—“क्या कारण बता दूँ? जब इतनी मित्रता है और यह मेरे शुभैषी हैं तब बनाने में क्या हानि है। सम्भव है यह कोई उचित परामर्श दें।” यह सोच कर शर्माजी बोले—“अब आप से छिपाना व्यर्थ है। मित्र से कपट नहीं रखना चाहिए।” यह कह कर शर्माजी ने सब बात बता दी। सब सुनकर मिश्रीलाल जी बोले—“यह बात है। तभी मैं कहूँ कि विवाह के प्रति आप इतने उदासीन क्यों हैं। आपकी वयस के युवक तो विवाह के लिए लालायित रहते हैं। खैर! मेरी राय तो यह है कि अब आप स्नेहलता की आशा छोड़िये। वह आपको भूल गई होगी। आपसे उससे पत्रव्यवहार होता है?”

“नहीं! मैंने इधर एक पत्र लिखा था, परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिला।”

“तो बस सब मामला समाप्त है। आर्य व्यर्थ ही उसकी आशा में अपना जीवन दुःखमय बना रहे हैं।”

शर्माजी सिर झुकाकर बोले—“हाँ! मैं भी कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहा हूँ।”

“तो बस उसकी आशा छोड़िये और इस कन्या से विवाह करके गृहस्थ बनिये। कन्या तो आप को पसंद ही है। सुन्दर तो वह है ही। यदि ऐसी न होती तो राजासाहब की दृष्टि में कदापि न चढ़ती। रह गई शिक्षा-दीक्षा की बात सो आप स्वयं ठीक कर लेंगे।”

“हाँ! यद्यपि वह बात तो आयगी नहीं, परन्तु फिर भी पढ़े-लिखे आदमियों में बैठने योग्य तो हो ही जायगी।”

“इतना काफी है। कौन आपको उसे अध्यापिका बनाना है। उठने-बैठने बातचीत करने का सलीका आ जाय—बस!”

“अच्छी बात है। अब मेरा मार्ग निश्चित हो गया। अब मैं हर्षपूर्वक यह विवाह करने को उद्यत हूँ।”

“हाँ जी ! उसकी आशा में बैठे रहना मूर्खता है। अब तक उसने कोई अन्य हूँद लिया होगा।”

“अब मुझे परवाह नहीं है। आपने आज मेरी आँखें खोल दी। सत्य ही मैं एक दुराशा को हृदय में स्थान दिये हुए था। इसीलिए तो कहा है कि मित्र से कोई बात छिपाना न चाहिए। मित्र के परामर्श से सदैव लाभ होता है।”

दो दिवस पश्चात् त्रिवेदी जी ने शर्मा जी को सूचना दी—
“अगहन बदी द्वादशी का मुहूर्त्त निकलता है।”

“ठीक है !” शर्माजी ने कहा।

“तो मेरी समझ में आप को चौथ पंचमी तक वहाँ पहुँच जाना चाहिए। चौथ से चौथ तक पन्द्रह दिन की छुट्टी ले लेना। कार्तिकी पूर्णिमा करके छुट्टी का प्रार्थनापत्र दे देना।”

“बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा।”

“चौथ को न भी पहुँचो तो कोई हानि नहीं, छठ-सप्तमी तक पहुँच सकते हो।”

“हाँ ! हाँ ! वह सब हो जायगा। छुट्टी मिलने में कोई अड़चन न होगी।”

“विवाह करने के लिए छुट्टी लोगे तो तुरंत मिल जायगा।”

शर्माजी घर आकर अपनी बुआ से बोले—“बुआजी, व्याह का अगहन बदी द्वादशी का मुहूर्त्त निकलता है।”

बुआजी प्रसन्न होकर बोलीं—“बड़ी अच्छी बात है ? तो अब तैयारी करना चाहिये—दिन ही कितने रह गये।”

“तैयारी क्या करोगी ?”

“कुछ कपड़ा, कुछ जेवर बनवाना होगा।”

“कपड़ा तो बनवा लिया जायगा, पर जेवर बनवाना मेरी शक्ति के बाहर है।”

“क्यों ?” बुआ ने आश्चर्य से पूछा।

“मेरे पास रुपया कहाँ है ? तुम तो सब जानती हो बुआ जी, तुम से कुछ छिपा थोड़े ही है।”

“बिना जेवर के तो काम नहीं चलेगा। न सब हों, दो चार चाँज ही हों।”

“कौन बरात सजकर जायगा ?”

“बरात सजकर न जाय, मगर वह अपने जी में क्या कहेगी।”

“कहा करे ! मैं तो उसका उद्धार कर रहा हूँ और वह जेवर न होने से कहने लगेगी।”

“तू तो समझता नहीं है। सारी उम्र के लिए कहने को हो जायगा। समय निकल जायगा, बात रह जायगी।”

“कुछ भी हो मेरे पास तो रुपया है नहीं।”

बुआजी विचार में पड़ गईं। कुछ देर पश्चात् बोलों—“अच्छा जेवर के लिये रुपये मैं दे दूँगी। चार-पाँच जेवर बनवाले—दो हाथ के दो गले के, कानों के इशरत और नाक की नथ पैरों में पायजेब और बिछुए।”

“यह तो कई हो गये।”

“पैरों के तो चाँदी के होंगे।”

“हाँ, परन्तु बिछुए की क्या जरूरत है। बिछुए आजकल पहनता हो कौन है।”

“न पहने, पर सुहाग का चिन्ह तो है। उनका बनवाना बहुत जरूरी है।”

“झेर, परन्तु प्रश्न यह है कि रुपया कहाँ से लाऊँ ?”

“किसी से उधार ले ले।”

“उधार वुधार मैं कुछ न लूँगी।”

“क्यों, क्या कोई उधार नहीं लेता ?”

“लेते हैं, परन्तु मैं न लूँगा। कहो ब्याह करूँ, कहो न करूँ।”

“अच्छा जेवर मैं कर दूँगी।”

“तुम दोगी ! तुम्हारे पास कहाँ से आया ?”

“तेरी माँ का जेवर धरा है, भूल गया क्या ?”

“वह तो सब पुरानी चाल का है। आजकल वह नहीं पहना जाता।”

“तो उसे तुड़वाकर बनवा ले।”

“माता जी का जेवर तुड़वाना क्या उचित होगा ?”

“और नहीं तो क्या, उसे धरे रहेगा ?”

शर्मा जी सोचकर बोले—“अच्छी बात है। जेवर की समस्या तो पूरी हो गई।”

“अब कपड़ा रह गया।”

“कपड़ा ! दो-चार साड़ी ले लूँगा, बस काफी हैं।”

“कम से कम एक जोड़ा तो बढ़िया होना ही चाहिए।”

“अब यह भ्रंश तो लगाओ नहीं।”

“भ्रंश नहीं। जोड़ा मैं दे दूँगी।”

“तुम्हारे पास क्या रखा है ?”

“धरा नहीं है, नया आवेगा। रुपया मैं दूँगी।”

“रुपया ! तुम्हारे पास रुपया कहाँ से आया ?”

“इससे तुझे क्या ममलब !”

शर्माजी सोचने लगे—“जान पड़ता है बुआजी ने पिताजी का रुपया दाब लिया।”

बुआजी बोलीं—“अब क्या सौ-दो सौ रुपये भी मेरे पास नहीं हैं ? अपने मरने-जीने के लिए तो सभी प्रबन्ध रखते हैं। ऐसे नंगे तो कोई भी नहीं हो जाते कि मरते समय कफन को भी न निकले।”

शर्माजी हँस कर बोले — “पुरुषों में तो ऐसे बहुत निकलेंगे ।”

“परन्तु स्त्रियों में ऐसी बिरली ही मिलेंगी ।” बुआजी मुस्कराकर बोली । “पुरुषों में उड़ाऊ-खाऊ बहुत होते हैं, स्त्रियाँ गृहस्थ होती हैं । उन्हें सब बात का ध्यान रहता है ।”

“अच्छा बुआ जी बताओ तुम्हारे पास कितना रुपया है ।”

“इससे तुम्हें क्या मतलब ?”

“मैं जानना चाहता हूँ ।”

“यही दो-चार सौ !”

“बस ?”

“और नहीं तो क्या मेरे पास खजाना है ।”

“स्त्रियाँ अपनी थाह कभी नहीं देती ।”

“थाह दे दें तो फिर उनके पास बचने पावे, तुम पुरुष लोग छीन न लो ।”

“स्त्रियों को रुपये का बड़ा मोह होता है, इतना मोह पुरुषों को नहीं होता ।”

“क्यों, होता क्यों नहीं, पुरुषों को भी होता है ।”

“ऐसे पुरुष कम निकलेंगे — वे कंजूस-प्रकृति के होंगे । स्त्रियाँ अधिक निकलेंगी और वे ऐसी होंगी, जिन्हें कंजूस नहीं कहा जा सकता ।”

✓ “इसका कारण है बेटा ! पुरुषों को अपने बाहुबल का भरोसा रहता है । वे समझते हैं कि उन्हें जब जरूरत होगी तब वे रुपया जुटा लेंगे; परन्तु स्त्रियों को यह भरोसा नहीं रहता । वे सदा अपने को असहाय ही समझा करती हैं । उन्हें अपने पास की पूँजी का ही सहारा रहता है । इस कारण अटके-भिटके के लिए कुछ न कुछ अपने पास जरूर रखती हैं ।

“तो वे आवश्यकतावश ऐसा करती हैं—तुम्हारा मतलब यह है । उनके स्वभाव में यह बात नहीं है ?”

“अब यह मैं क्या जानूँ मैं तो यह जानती हूँ कि वे आवश्यकता के कारण ही ऐसा करती हैं।”

“खैर होगा। अच्छा तो कपड़े का प्रश्न भी हल हो गया। अब तो कुछ नहीं रहा?”

“हाँ अब कोई बात नहीं रही। तो जेवर तो बनने को दे दे, बनते भी कुछ दिन लगेंगे।”

“बनवाने का भगड़ा मैं नहीं पालता। किसी दिन लखनऊ चला जाऊँगा, वहाँ अपना जेवर बेच कर बना-बनाया खरीद लूँगा।”

“चल यह भी ठीक है। वही से कपड़ा भी खरीद लेना।”

शर्माजी ने यही किया। एक दिन लखनऊ जाकर सब सामान ले आये। बुआ जी ने सब समझा दिया था उसी के अनुसार वह ले आये।

त्रिवेदी जी छुट्टी लेकर चले गये। उनके चले जाने के पश्चात् शर्मा जी ने अपनी छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र दिया। प्रार्थनापत्र स्वीकृत हो गया। अयोध्या जाने के एक दिन पूर्व छोटी रानी ने उनसे पूछा—
“कल आप जायेंगे?”

“हाँ, रानी जी! मैं तो अभी विवाह न करता परन्तु बुआ जी ने बहुत जोर दिया।”

“तो क्या हर्ज है। अब तो विवाह की उम्र ही है। तुम्हारी बुआ जी को भी तुम्हारे बाल-बच्चे खेलाने की साध है।”

शर्मा जी ने कोई उत्तर न दिया, सिर झुकाये बैठे रहे।

“लड़की तो देख ली होगी?”

“हाँ देख तो ली है।”

“तब ठीक है। अच्छा मैं अभी आती हूँ।”

यह कह कर ज्योत्सना चली गई। कुछ देर पश्चात् जब वापस आई तो उसके साथ एक बाँदी थी। बाँदी के हाथ में कपड़े से ढका हुआ एक थाल था। बाँदी उस थाल को मेज पर रख कर चली गई।

ज्योत्सना बोली—“यह मेरी ओर से बहूको दे देना ।” यह कहकर ज्योत्सना ने थाल पर से कपड़ा हटा लिया । थाल में एक बहुत बढ़िया गुलाबी रत्न का साड़ी-ब्लाउज का सेट और उसके ऊपर एक मखमली डब्बा था । डब्बा खोल कर रानी ने शर्मा जी को दिखाया । उसमें एक सोने का हार था । हार में यत्र-तत्र नगीने भी जड़े थे जो अपनी चमक-दमक से अपनी असलियत का प्रमाण दे रहे थे । एक ओर सौ सौ रुपये के पाँच नोट धरे हुए थे ।

शर्मा जी अकचका कर बोले—“इसकी क्या आवश्यकता थी ?”

“इसकी आवश्यकता आप नहीं समझ सकते—मैं समझती हूँ ।” यह कह कर ज्योत्सना ने घण्टी बजाई । वही बाँदी पुनः आई । ज्योत्सना उससे बोली—“यह शर्मा जी के घर पहुँचवा दो ।” बाँदी थाल लेकर चली गई । शर्मा जी बोले—“आपकी कृपा के लिए कहाँ तक धन्यवाद दूँ ।”

ज्योत्सना हँस कर बोली—“यह कृपा नहीं मेरा कर्तव्य है ।”

शर्मा जी घर पहुँचे । बुआ जी बोलीं—“रानी जी ने कुछ भेजवाया है ।”

“हाँ वह मेरे सामने ही भेजा गया है । कैसा सामान है ?”

“क्या कहने हैं । हमारे से तो बहुत अच्छा है । थाल भी चाँदी का है ।”

शर्मा जी नेत्र विस्फारित करके बोले—“तो तुमने थाल भी रख लिया ?”

“मैंने क्यों रख लिया । मैं तो खाली करके वापस कर रही थी, पर बाँदी बोली—“थाल समेत है ।”

शर्मा जी हँस पड़े । बुआ जी ने पूछा—“क्यों, हँसा क्यों ?”

“बात यह है कि हम लोग अपनी हैसियत के अनुसार सोचते हैं । ये राजदरबारों की बातें हैं जिनका हमें ज्ञान ही नहीं है ।”

हाँ बेटा, हम राजवाड़ों का व्यवहार क्या जानें ।”

“अच्छा रखो । अब तो ठाठ बन गया ?”

“भगवान की कृपा होती है तो सब हो जाता है । अब कोई कसर नहीं रही ।”

— — —

(१५)

इधर तो यह हो रहा था, उधर स्नेहलता बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ रही थी। स्नेहलता एक क्षत्रिय परिवार की लड़की थी। पिता ठाकुर रघुवीर सिंह वकालात करते थे। वह मध्य श्रेणी के वकील थे, अतः उनकी मासिक आय का औसत छः सात सौ रुपये था। उनके परिवार में केवल चार-पाँच आदमी थे। उनकी पत्नी, दो लड़के—एक की वयस बाइस वर्ष और दूसरे की १४ वर्ष थी। बड़ा लड़का बी० ए० पास करने के पश्चात् कानून पढ़ रहा था—छोटा नाइन्थ क्लास में था। स्नेहलता उनकी कन्या थी। वकील साहब सिविल लाइन्स के एक बँगले में रहते थे। एक मोटर कार तथा एक ताँगा था। स्नेहलता के प्रति वकील साहब का विशेष प्रेम था, इसी कारण वह उसे उच्च शिक्षा दिला रहे थे।

जिस कालेज में स्नेहलता पढ़ रही थी उसमें सहशिक्षा प्रचलित थी। कालेज में एम० ए० तक की शिक्षा दी जाती थी। कालेज में लड़कियों की संख्या पचीस थी। ये लड़कियाँ जिनमें १६, १७, वर्ष से लेकर २२, २४ वर्ष तक की लड़कियाँ थीं, कालेज के वातारण को दूषित बनाये हुए थीं। अधिकांश लड़कियों का 'लैङ्गिक प्रेम' इसी कालेज से आरम्भ होता था। लड़के तो इन लड़कियों के पीछे पागल रहते ही थे, कुछ प्रोफेसर भी इनकी उद्गलियों पर नाचा करते थे। इस कारण अधिकांश लड़कियाँ धृष्ट तथा निरंकुश हो गई थीं। व्याख्यान के समय क्लास के बाहर घूमते रहना अथवा क्लास में परस्पर गप लड़ाना इनके लिए अत्यन्त साधारण बात थी। इनके कारण लड़कों में प्रतिस्पर्धा, वैमनस्य, लड़ाई-झगड़ा इत्यादि चलता ही रहता था। यही दशा लड़कियों की भी थी। इनमें भी

परस्पर लड़कों के लिए स्पर्धा तथा ईर्ष्या-द्वेष चलता रहता था। कुछ लड़कियाँ तो इतनी घृष्ट तथा निर्लज्ज हो गई थीं कि वे स्वयं अपनी ओर से लड़कों को छेड़ा करती थीं और ऐसा प्रयत्न करती थीं कि लड़के उनकी ओर आकृष्ट हों। जो लड़का इनको छेड़-छाड़ के प्रति उदासीनता अथवा अप्रसन्नता प्रकट करता था उन्हें ये गँवार, जंगली, असभ्य, जनाना—यहाँ तक कि पुष्पत्वहीन कहने में भी लज्जा का अनुभव नहीं करती थीं। फिल्मों गीतों का खूब प्रचार था। लड़के लड़कियों को और लड़कियाँ लड़कों को सुना सुना कर गीत गाया करती थीं।

इन लड़कियों के अभिभावक उच्च श्रेणी के लोग थे। केवल दो-चार लड़कियाँ ऐसी थीं जिनके माता-पिता मध्य श्रेणी के थे। ये बेचारे अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाने के इतने पक्षपाती थे कि इन्हें कदाचित् यह दिखाई ही न पड़ता था कि इनकी लड़कियों का चरित्रगठन किस प्रकार का हो रहा है। रहे उच्च श्रेणी के लोग, सो वे अपनी लड़कियों के स्वतंत्राचार को 'फेशन' तथा 'एटीकेट' समझकर प्रसन्नतापूर्वक सहन करते थे। अतएव लड़कियों को मनमानी करने का यथेष्ट अवसर प्राप्त था। संध्या समय लड़कियाँ टेनिस खेलने को घर से कालेज के टेनिसकोर्ट में आती थीं। कभी तो टेनिसकोर्ट तक पहुँचती ही न थीं—रास्ते से ही किसी लड़के के साथ, जो मार्ग में इनकी प्रतीक्षा करता था गायब हो जाती थीं और कभी टेनिस खेलने के पश्चात् अपने किसी चहूँते के साथ चली जाती थीं। घर पहुँचने पर देर होने का कारण बता देना इनके लिए अत्यंत सरल बात थी। किसी लड़की का नाम ले लिया कि उसके साथ उसके घर चली गई थी, उसके साथ घूमने चली गई थी। माता-पिता केवल इतने से ही सन्तुष्ट हो जाते थे। उनके मस्तिष्क में कदाचित् कभी यह बात भँसती ही न थी कि उनकी लड़की उन्हें धोखा भी दे सकती है।

कुछ मनचले प्रोफेसर कभी किसी लड़की को पढ़ाने के बहाने कालेज की छुट्टी होने के पश्चात् भी रोक लेते थे। जिन्हें अपने घर पर

स्वतंत्रता प्राप्त थी वे लड़कियों को घर पर भी बुलाते थे। अन्य प्रोफेसर तथा बूढ़े प्रिंसिपल महोदय यह सब देख-सुनकर भी मौन रहते थे। बिना कोई प्रत्यक्ष प्रमाण मिले केवल सन्देह पर निर्भर करके किसी की वैयक्तिक स्वतंत्रता में बाधा डालना एक अवैधानिक कार्य समझा जाता था।

इस प्रकार इस कालेज में 'प्रेमकला' की शिक्षा भी भलीभाँति मिलती थी। स्नेहलता ऐसे ही वातावरण में शिक्षा प्राप्त कर रही थी।

अँग्रेजी का घंटा था। अँग्रेजी के प्रोफेसर मि० खरे बड़े रसिक व्यक्ति थे। स्नेहलता और उसी के साथ पढ़नेवाली मिस रोहिणी अँग्रेजी के व्याख्यान में न जाकर बाहर आ गईं और लान पर बैठकर परस्पर बात करने लगीं। रोहिणी बोली—“मि० खरे का पीरियड छुट्टी का पीरियड है।”

“हाँ ! बेचारे बड़े भले आदमी हैं।” स्नेहलता ने मुस्कराकर कहा। रोहिणी हँसने लगी। हँसकर बोली—“परसों मुझसे कह रहे थे कि तुम अँग्रेजी में कमजोर हो शाम को घर पर आया करो तो तुम्हें पढ़ा दिया करूँ।”

“फिर तुमने क्या कहा ?” स्नेहलता ने मुस्कराते हुए पूछा।

“मैंने कहा कि आया करूँगी।”

“बेचारे कितने भले आदमी हैं, मुफ्त पढ़ाने को तैयार हैं।”

“हाँ ! आजकल अकेले हैं न, इस कारण घर में चित्त घबराता होगा।” यह कहकर रोहिणी पुनः खिलखिलाने लगी।

“अँग्रेजी के परीक्षक भी तो यही हैं।”

“हाँ। कापियाँ यही जाँचते हैं।”

“तब तो अवश्य जाओ।”

“हाँ, जाऊँगी। हाँ, तुम्हारे शर्मा जी का कोई समाचार है ?” कहाँ है।”

“कौन शर्मा जी ?” स्नेहलता ने माथा सिकोड़ कर पूछा।

“वही मदनमोहन !”

“वह ! हाँ उसका एक पत्र आया था । किसी राजा साहब के यहाँ बच्चों के ट्यूटर्स हैं ।”

“तब तो बड़े ठाठ होंगे ?”

“न कोई ठाठ ! कुल साठ रुपल्ली पाते हैं ।”

“क्या लिखा था ।”

“लिखा था कि मुझसे विवाह करने का स्वप्न देखा करते हैं ।”

“सच !”

“हाँ ! मेढकी को भी जुखाम हुआ ।”

“परन्तु तुम तो कदाचित् उससे प्रेम करती थी ?”

“पागल हो ! हाँ मुझे वह बड़े अच्छे लगते थे । आदमी सीधा था । परन्तु उसके विचार बहुत पिछड़े हुए थे । लजीले, सदाचार के पुतले, स्त्रियों से अलग अलग रहने वाले, रसिकता का नाम ऐसा नहीं । आदमी एक अच्छा मित्र हो सकता है, परन्तु पति—उहँ !” यह कह कर स्नेहलता ने मुँह बिचकाया ।

“तुमने क्या उत्तर दिया ?”

“मैंने उत्तर ही नहीं दिया ।”

“क्यों ?”

“जिस आदमी से कभी इस जीवन में मिलने की आशा न हो उससे पत्र-व्यवहार करना व्यर्थ है ।”

“बेचारा बड़ा निराश हुआ होगा ।”

“वह स्वभाव का भी निराशावादी है ।”

“और वह जो आई० सी० एस० में जाने वाला था ।”

“वह जयनारायण ! हाँ परन्तु उसका तो पता नहीं कि कहाँ है । उसका कोई पत्र भी नहीं आया ।

“शायद विलायत जाने की तैयारी कर रहा हो ।”

‘भगवान जाने ।’

‘वह भी तुम पर लट्क था ।’

‘वह विलायत गया तो मेम लायगा ।’

‘क्यों ?’

वह ऐसा ही दिलफेंक आदमी है ।’

‘तब तो तुम्हारे दोनों चाहनेवाले तुमसे बिछुड़ गये ।’

‘अरे ! उन जैसे तीन सौ साठ मिलेंगे । कालेज में ही ऐसे अनेक हैं जो हमारे-तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए लालायित हैं ।

‘तुमने अपने लिए किसी को चुना ?’

‘जब विवाह करना होगा तब देखा जायगा । अभी तो विवाह करने का प्रश्न ही नहीं है ।’

‘हाँ ! बी० ए० पास करने के पहिले विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता । परन्तु चुनाव कर लो, क्या हर्ज है ?’

‘अभी मैं कुछ न करूँगी । जब विवाह करना होगा तब बहुत मिल जायेंगे ।’

‘रजनीकान्त तुम्हें बहुत चाहता है ।’

‘चाहता कौन कमबख्त नहीं है । प्रश्न तो यह है कि हम किसे चाहते हैं ।’

‘हाँ, यह तुमने ठीक कहा ।’ रोहिणी हँस कर बोली ।

‘अच्छा यह बताओ, तुम किसे चाहती हो ?’

‘मैं ! मुझे अरुण कुमार अच्छा लगता है ।’

‘अच्छा लगता है या उससे तुम्हें प्रेम है ?’

‘प्रेम की तो अभी मैं कायल ही नहीं हूँ ।’

‘यही मेरी भी दशा है । प्रेम-प्रेम सब ढोंग है ।’

‘परन्तु पति से तो प्रेम करना ही पड़ेगा ।’

‘कोई जबरदस्ती है ?’

“आवश्यक तो है ।”

“न आवश्यक ! पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है, प्रेम के लिए नहीं ।”

“हाँ, बात तो ऐसी ही है ।”

इसी प्रकार की बातों में अङ्गरेजी का घण्टा व्यतीत हो गया । मि० खरे क्लास रूम से निकल कर बरामदे में आये । वहाँ से उन्होंने हाथ के इशारे से इन दोनों को बुलाया । इनके निकट पहुँचने पर उन्होंने किञ्चित् मुस्कराते हुए अङ्गरेजी में कहा—“आज तुम दोनों व्याख्यान में नहीं पहुँची ?”

स्नेहलता चपलतापूर्वक अङ्गरेजी में बोली—“आज हम दोनों का चित्त कुछ गड़बड़ है ।”

“क्या बात है ?” मि० खरे ने पूछा ।

“कुछ हरात सी है ।”

“अच्छा जरा नब्ज देखूँ ।” यह कह कर मि० खरे ने स्नेहलता की कलाई अपने हाथ में ले ली । कुछ क्षण तक नब्ज देखने के पश्चात् वह बोले—“नब्ज में तो हरात नहीं है ।”

स्नेहलता उनके हाथ से अपनी कलाई छुड़ा कर बोली—“आप अच्छे डाक्टर नहीं हैं मि० खरे ।”

“बड़ी नटखट हो तुम दोनों ।” यह कह कर मि० खरे ने स्नेहलताके गाल पर एक चपत मारी और आगे बढ़ गये । यह दोनों अगला व्याख्यान सुनने के लिए चल दी । बरामदे में तीन-चार लड़के खड़े थे उनके पास से हो कर जब यह दोनों निकलीं तो एक लड़के ने छाती पर हाथ रख कर ‘आह’ की । दूसरे ने पूछा—“क्यों क्या हुआ ?”

“एक आन दि हार्ट ! (हृदय पर आक्रमण) मुझे हृद रोग है ।”

“इलाज क्यों नहीं करते ?” तीसरे ने मुस्कराकर पूछा ।

“दवा तो मुझ से दूर भागती है—इलाज क्या खाक करूँ।”

इस पर अन्य लड़कों ने अट्टहास किया। ये दोनों भी मुस्कराती हुई आगे बढ़ गईं। आगे निकल कर रोहिणी बोली—“सुना ?”

“हाँ सुना ! पूरा एक्टर है।”

“परन्तु शकल—सूरत राम का नाम ही है।”

“इसी लिए तो मुझे पसन्द नहीं है।”

“मुझे भी पसन्द नहीं है।”

इसके पश्चात् दोनों लेक्चर रूम में घुस गईं।

कालेज की छुट्टी होने पर जब स्नेहलता बाहर निकली तो एक गोरा—चिट्ठा दृष्ट-पुष्ट युवक उसके निकट आकर बोला—“टेनिस खेलने आओगी ?”

“हाँ ! इरादा तो है।”

“आज सिनेमा चलेंगे।”

“अच्छी बात है। कहाँ मिलोगे ?”

“उसी चौराहे पर।”

“ताँगे पर आऊँगी।”

“तब तो यहाँ से चलना पड़ेगा।”

“हाँ, यहाँ से चले चलेंगे। गेट पर उतर जाऊँगी और ताँगा वापस कर दूँगी—बस गेट से ही चले जलेंगे, अन्दर नहीं आयेंगे।”

“ओ० के० (ठीक है)।” कह कर युवक दूसरी ओर चला गया।

स्नेहलता का ताँगा गेट पर खड़ा था—वह उस पर सवार हो कर घर चली गई।

शाम को छः बजे के लगभग कालेज गेट पर एक मोटर कार आकर रुकी। कार के अन्दर से स्नेहलता हाथ में टेनिस रैकेट लिये हुए उतरी। कार जाने लगी तो स्नेहलता बोली—“सवारी मत भेजना, मैं रोहिणी के

यहाँ हो कर आजाऊँगी ।” “बहुत अच्छा” कह कर ड्राइवर कार ले गया । स्नेहलता कुछ क्षण गेट पर खड़ी रही । कार के चले जाने के पश्चात् तुरन्त ही वह युवक न जाने कहाँ से सामने आ गया और स्नेहलता से बोला—“वह सामने ताँगा खड़ा है— आओ !” दोनों ताँगे की ओर बढ़े ।

— — —

(१६)

शर्माजी विवाह कर के लौट आये । त्रिवेदी जी ने उत्साह से विवाह किया और अपनी ओर से कुछ दायज भी दिया । शर्मा जी ने पत्नी को, रानियाँ को इच्छानुसार, महल में भी भेजा । दोनों रानियाँ उसे देख कर प्रसन्न हुईं और दोनों ने मुँह दिखाई में एक एक मृत्यवान गैहना भेंट किया ।

शर्मा जी से भेंट होने पर ज्योत्सना ने उन्हें बधाई देते कहा—
“आपकी पत्नी तो सुन्दर है शर्मा जी, परन्तु कुछ पढ़ी-लिखी नहीं जान पड़ती ।”

शर्मा जी बोले—“हाँ ! मेरे ससुर कुछ पुराने आचार-विचार के आदमी हैं, इस कारण उन्होंने केवल थोड़ी हिन्दी की शिक्षा दी है ।”

“खैर, अब आप पढ़ा लीजियेगा । घर में भी ट्यूशन कर लीजिएगा” ज्योत्सना ने मुस्कराते हुए कहा ।

“हाँ, आपकी सेवा करने के योग्य तो बनाना ही पड़ेगा ।”

“उसे मेरे पास भेजते रहना । लड़की बड़ी सरल तथा सुशील है—मुझे बहुत अच्छी लगी ।

“आपकी सेवा में तो रहेगी ही ।”

बड़ी रानी से वार्तालाप हुआ तो उन्होंने कहा—“लड़की बड़ी सीधी और सुशील है; परन्तु एक बात समझ में नहीं आई ।”

‘वह कौन सी बात है रानी जी, जो समझ में नहीं आई ।’

“उसकी बोल चाल इधर के ही देहात की है । क्या आपको समझ-राल यहाँ कहीं निकट ही है ?”

यह प्रश्न सुनकर शर्मा जी घबरा गये। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा न थी कि कोई ऐसा प्रश्न उठायगा, इस कारण उन्होंने ऐसे प्रश्न का उत्तर भी न सोचा था। परन्तु शर्मा जी बुद्धिमान आदमी थे। अधिक सोचने-विचारने का अवसर नहीं था, अतएव बोले—“बात यह है कि उसके नाना का निवास इधर ही अधिक रहा है—आप जानें जीविका वश मनुष्य कहीं का कहीं पहुँच जाता है, मैं ही इधर चला आया—और उसका अभी तक का अधिकांश जीवन ननिहाल में ही व्यतीत हुआ है।

“ननिहाल कहाँ है? रानी ने पूछा।

“बाराबंकी में।” शर्मा जी ने उत्तर दिया।

“ठीक !”

जिस समय शर्मा जी बड़ी रानी के सामने से हटे उस समय उसका शरीर पसीने पसीने हो रहा था। वह मन में कह रहे थे—“कितना झूठ बोलना पड़ा, परन्तु सन्तोष इतना ही है कि एक अबला की रक्षा के निमित्त ऐसा करना पड़ा।

लाला मिश्रीलाल से भेंट होने पर उन्होंने कहा—“आज बड़ी विषम परिस्थिति में पड़ गया था।”

“क्यों, क्या हुआ?” मिश्रीलाल ने चिन्ता का भाव दिखा कर पूछा।

“बड़ी रानी मेरी पत्नी की बातचीत से यह ताड़ गई कि यह इधर की ही है। उन्होंने मुझ से यही प्रश्न किया।”

“क्यों न हो—आखिर रानी ही हैं, पढ़ी-लिखी बुद्धिमान हैं।”

“हाँ साहब! बड़ी कुशाग्रबुद्धि हैं। छोटी रानी कुछ नहीं समझीं।”

—“अजी उनमें यह बात कहाँ! उन्हें तो केवल उनके प्रारब्ध ने रानी बना दिया, अन्यथा हैं तो सामान्य घर की। बड़ी रानी राजघराने की हैं, उनके रक्त में राजत्व है। हाँ तो आपने क्या उत्तर दिया?”

“पहिले तो मैं घबरा गया, परन्तु तुरन्त सँभल कर बोला कि उसकी ननिहाल बाराबंकी में है और वह ननिहाल में ही अधिक रही है।”

“शाबाश ! ख़ूब सूझी !” मिश्रीलाल हँसकर बोले।

“और कुछ सोचने-विचारने का अवसर ही न था—जल्दी में यहीं मुहँ से निकल गया।”

“ठीक निरुला। अब अपनी पत्नी को भी यही समझा देना कि यदि पूछा जाय तो यही कहे।”

“लैर अब तो मैं भली भाँति समझा दूँगा। यह भी अच्छा हुआ कि रानी जी ने मुझ से ही यह पूछा। यदि कहीं उससे पूछती तो वह घबरा जाती।”

“हाँ घबरा तो जाती।”

“यह भी एक प्रकार से ईश्वरीय सहायता हुई कि बड़ी रानी ने मुझसे यह बात पूछी।”

“हाँ ! परन्तु आखिर तुम्हारी पत्नी भी कोई उत्तर देती हो और वह उत्तर काफी होता। क्योंकि उनकी पूछ-ताछ लौकिक व्यवहार के अनुसार है। जिससे परिचय प्राप्त होता है उससे सभी लोग ऐसी बातें पूछते हैं। बड़ी रानी ने किसी सन्देहवश ऐसा पूछा—यह कभी नहीं सोचा जा सकता।”

“यह मैं भी समझता हूँ; परन्तु यदि तत्काल समुचित उत्तर न दिया जाय तो सन्देह उत्पन्न हो सकता है—यह तो आप मानेंगे ?”

“हाँ, यह ठीक है। लैर ! जिसका अन्त अच्छा है वह अच्छा ही समझा जायगा।” यह अंग्रेजी की कहावत मिश्रीलाल ने अंग्रेजी में कही।

“राजा साहब से अभी भेंट नहीं हुई।”

“उन्हें इन बातों की चिन्ता नहीं रहती। आप विवाह कर लाये, बस इतना काफी है, इससे आगे जानने की उन्हें परवाह नहीं है। परन्तु

यदि उन्हें यह पता लग जाय कि यह वही लड़की है तो फिर देखिये कैसी दिलचस्पी लेते हैं ।”

“दिलचस्पी ! मेरे घोर शत्रु हो जाँय ।”

“हाँ इसमें तो सन्देह नहीं है । परन्तु इसका कोई भय नहीं है । उसे राजा साहब तथा उनके दो-चार नौकरों को छोड़ कर और कोई नहीं पहचानता । और थोड़े दिनों पश्चात् वे भी न पहचान सकेंगे । एक बार की देखी हुई सूरत अधिक दिनों तक याद नहीं रहती ।”

इसके तीसरे दिन शर्मा जीका साक्षात् राजा साहब से हो गया । वह जिस समय ज्योत्सना को पढ़ा कर बाहर आ रहे थे उसी समय राजा साहब से, जो उधर से जा रहे थे, मुडभेड़ हो गई । शर्मा जी ने उनका अभिवादन किया । राजा साहब ठिठुक् गये और बोले—“कहिये शर्मा जी, विवाह कर लाये ?”

“हाँ श्रीमन् ! विवाह क्या, घर बसाया है ।”

“लड़की तो पहले देख-भाल ली होगी ?”

“हाँ श्रीमन् ! देख कर ही विवाह किया है ।”

“तब ठीक है ।” इतना कहकर राजा साहब अन्दर चले गये ।

राजा साहब सीधे ज्योत्सना के पास पहुँचे । ज्योत्सना उस समय दूसरे कमरे में जाने के लिए उठी ही थी कि राजा साहब पहुँच गये । राजा साहब जाते ही कौच पर बैठ गये, ज्योत्सना भी सामने कुर्सी पर बैठ गई । राजा साहब ने कहा—“शर्मा जी तो विवाह कर लाये ।”

“हाँ कर लाये ! लड़की सुशील मालूम होती है ।”

“तुमने देखी है ?”

“हाँ आई थी !”

“सूरत-शकल की कैसी है ?”

ज्योत्सना ने एक क्षण रुक कर उत्तर दिया—“साधारण है । न बहुत सुन्दर है, न कुदृष्ट है ।”

‘कुरूप तो खैर हो ही नहीं सकती । शर्मा जी ने देखकर विवाह किया है, ऐसी दशा में कुरूप कैसे होगी ।’

ज्योत्सना राजा साहब के स्वभाव से परिचित थी, अतः वह राजा साहब से किसी स्त्री के रूप की प्रशंसा करने की भूल कैसे करती । वह पुनः बोली—“न रूपवान है, न कुरूप !”

“चलो अच्छा है, बेचारे का घर बस गया । आदमी नेक है ।”

“आदमी तो बहुत अच्छा है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।”

“अब इनका वेतन कुछ बढ़ा देना चाहिये । विवाह हो गया है खर्च बढ़ गया होगा । दूसरे तुम्हें पढ़ाता है, इसका भी कुछ खयाल होना चाहिए ।”

“हाँ ! मैं तो स्वयं यह बात कहनेवाली थी ।”

“तो मेरी समझ में सौ रुपये वेतन कर दिया जाय ?”

“हाँ इतना तो अवश्य कर देना चाहिये ।”

“अच्छी बात है । आज कल कौन सी पुस्तक पढ़ रही हो ?”

ज्योत्सना ने नाम बताया । राजा साहब बोले—“पुस्तक तो अच्छी है ।”

“वह ऐसी ही पुस्तकें पढ़ाते हैं, उपन्यास इत्यादि तो पढ़ाते नहीं ।”

“तुम्हारे लिये जिन पुस्तकों की आवश्यकता है वह वे ही पुस्तकें पढ़ाते हैं । उपन्यासों में दया धरा है । उपन्यास भी बहुत से अच्छे हैं । परन्तु अभी तुम्हें यही पुस्तकें पढ़ना चाहिए ।”

“मैं अपनी ओर से कोई पुस्तक नहीं पढ़ती । जो पुस्तकें वह पढ़ाते हैं वेही पढ़ती हूँ ।”

“वह बड़ा समझदार आदमी है, उससे शलती नहीं हो सकती ।”

“मैं तो उसके गुणों पर मुग्ध हूँ ।”

“कहीं आवश्यकता से अधिक मुग्ध न हो जाना ।”

“क्या बात करते हो। वह मुझे माता के समान समझता है। आप जैसे स्वयं हैं वैसा ही सबको समझते हैं।”

“मैं कैसा हूँ ?” राजा ने मुस्कराकर पूछा।

“बस रहने दो, क्यों कहलवाते हो।”

“आखिर कुछ मालूम तो हो।”

“लखनऊ जाकर पता लगाओ कि कैसे हो।”

“अच्छा तो तुम्हें मेरे लखनऊ जाने की शिकायत है।” राजा साहब झेपी हुई हँसी हँसते हुए बोले !

“आ हा हा ! बड़े अच्छे लगते हैं हँसते हुए। जरा दर्पण में मुँह तो देख लो।

“अच्छा हम-तुम दोनों साथ साथ देखें। देखें किसका मुँह अच्छा लगता है।”

“चलो बस रहने दो ! न शरमाओ, न शरमाने दो।”

“अच्छा अबकी बार तुम भी हमारे साथ चलना, देखना हम वहाँ क्या करते हैं।”

“हाँ अब छार्ता पर मूंग दलना ही बाकी रह गया है—वह भी करके देख लो, कोई कसर न रहे।”

“तुम कहो तो हम कभी लखनऊ न जाँय।”

“उस सत्तरखसमी चन्दा से भी पूछ लिया है ?”

“कौन चन्दा ?” राजा साहब ने गंभीर होने का प्रयत्न करते हुए पूछा।

“ओ हो हो ! कौन चन्दा ! मर गई राँड क्या ?”

“मैं तो किसी चन्दा को नहीं जानता।”

“ऊँ हूँक ! आप बेचारे क्या जानें। समझते हैं कि मैं कुछ जानतीं थोड़े ही हूँ और यहाँ रत्ती रत्ती खबर मिलती रहती है।”

“कौन देता है खबर ?”

“कोई न कोई दे ही देता है ।”

“वह बिल्कुल झूठ बोलता है ।”

“आप बिल्कुल सच बोलते हैं ?”

“अच्छा न सही । जो तुम कहती हो वही ठीक सही । बस अब तो प्रसन्न हो ।”

“आप जैसी मैं भी हो जाऊँ तो पता लगे ।”

“मेरे जैसी तुम हो ही नहीं सकती ।”

“क्यों, होने को क्या हुआ ?”

“तुम इतनी बुद्धिमान, चरित्रवान और पतिभक्ता हो कि मेरे जैसी कभी बन ही नहीं सकती । मेरे जैसी वही बन सकती है जो मूर्ख दुष्चरित्र और पतिद्रोहिणी हो ।”

ज्योत्सना हँस पड़ी । हँसते हुए बोली—“आप से जीतना बड़ा कठिन है, चित भी अपनी, पट भी अपनी ।”

“चलो आज रात को घूमने चलें ।” राजा साहब ने प्रसन्न-परिवर्तन करते हुए कहा ।

“कहाँ चलोगे ?”

“किसी ओर चलें चलेंगे—चाँदनी रात हैं ।”

“जैसी आपकी इच्छा । बच्चे सो जायेंगे तब चलेंगे, नहीं तो वे भी साथ चलने को ज़िद करेंगे ।”

“हाँ ! हाँ ! वे तो जल्दी सो जाते हैं ।”

“नौ बजे तक सो जाते हैं ।”

“तो बस साढ़े नौ बजे खाना-वाना खाके चलेंगे ! तैयार रहना ।” यह कहकर राजासाहब उठ खड़े हुए और बाहर चले आये ।

दस बजे के लगभग राजासाहब ज्योत्सना सहित चले । राजा-साहब स्वयं ही कार ड्राइव कर रहे थे । उस कार पर अन्य कोई प्राणी न था । मार्ग-निर्धन मास का शुक्लपक्ष था—काफी सर्दी पड़ने लगी थी । राजा-

साहब गर्म सूट पर ओवरकोट तथा “नाइट केप” पहने हुए थे। ज्योत्सना ऊनी साड़ी पर एक बढ़िया ‘फरकोट’ (बालदार कोट) पहने थी। ज्योत्सना भी अगली सीट पर राजासाहब के बगल में बैठी थी। राजासाहब की कार के पीछे कुछ दूर पर एक दूसरी कार चली। इस कार में ड्राइवर के अतिरिक्त चार बन्दूकधारी जवान थे। ड्राइवर के पास पिस्तौल था। यह कार राजासाहब की रक्षा के लिए थी।

लगभग छः मील निकल जाने पर सड़क के किनारे एक भौल मिली। उसे देखकर राजासाहब बोले—यहीं थोड़ी देर बैठें—क्यों, क्या राय है ?

“हाँ स्थान तो रमणीक है।”

राजासाहब ने कार रोक दी। पिछली कार भी लगभग एक फर्लाङ्ग की दूरी पर रुक गई। राजासाहब ने कार की पिछली सीट पर रखा हुआ एक मोटा ऊनी कालीव उठा लिया। दोनों भौल के किनारे पहुँचे। एक साफ और सूखे स्थान पर राजासाहब ने कालीन बिछा दिया। दोनों बैठ गये।

कुछ देर दोनों मौन बैठे रहे। सहसा राजासाहब बोले—इस भौल का जल बहुत स्वच्छ है।

“और चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कितना सुन्दर पड़ रहा है। दो चन्द्रमा—एक ऊपर और एक नीचे !” ज्योत्सना ने कहा।

“दो नहीं, तीन !”

“तीन ! तीसरा कहाँ है ?” ज्योत्सना ने आश्चर्य से पूछा।

ज्योत्सना के गले में बाँह डालकर राजासाहब ज्योत्सना को अपनी ओर खींचते हुए बोले—“तीसरा यह है।”

लंपट पुरुष प्रायः प्रेम-प्रदर्शन में परम प्रवीण होते हैं, इसी कारण
स्त्रियाँ उनकी ओर अधिक आकर्षित होती हैं। चरित्रवान् पुरुष प्रायः इस
कला में कौशल होते हैं। उनके प्रेम की गहराई चाहे जितनी हो परन्तु वे

उसे व्यक्त नहीं कर पाते । अतः स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों का आदर-सन्मान चाहे जिहना करें परन्तु उनकी ओर उनका लैङ्गिक आकर्षण बहुधा कम ही होता है ।

ज्योत्सना ने प्रेमविभोर होकर राजासाहब के कन्धे पर सिर रख दिया । राजासाहब पुनः बोले — ‘तुम्हारे मुख के सामने चन्द्रमा भी मलिन प्रतीत होता है ! जानती हो क्यों ? ’

‘तुम बताओ ! ’ ज्योत्सना धीमे स्वर में बोली ।

‘उसकी ‘ज्योत्सना’ तो मैंने छान ली है । ’

यह कहकर राजासाहब ने ज्योत्सना का मुख चूम लिया ।

ज्योत्सना राजासाहब के घुटने पर सिर रखकर लेट गई । राजासाहब उसके सुवासित मुचिक्कण केशपर हाथ फेरने लगे । ज्योत्सना बोली—‘राजा तुम मुझे प्यार करते हो ? ’

‘हाँ करता हूँ ज्योत्सना । ’

‘कितना ? ’

‘अपने प्राणों से भी अधिक ! ’

‘सच कहते हो ? ’

‘बिल्कुल सच ! ’

‘यदि सच कहते हो तो फिर चन्दा के पास क्यों जाते हो ? ’

‘बस इतनी ही सी बात ? ’

‘तुम्हारे लिये यह बात साधारण हो सकती है, परन्तु, जानते हो, मुझे इससे कितना क्लेश होता है ? ’

‘अवश्य होता होगा; परन्तु वह तुम्हारे अपने विचार से होता है । यदि तुम मेरे दृष्टिकोण से देखो तो तुम्हें तनिक भी क्लेश न हो । ’

‘तुम्हारा दृष्टिकोण क्या है राजा ? ’

‘देखो ज्योत्सना ! मेरे हृदय पर तो केवल तुम्हारा ही अधिकार है, किसी दूसरी की वहाँ छाया भी नहीं पहुँच सकती; परन्तु खेलने के लिए

अर्थात् जी बहलाने के लिए कभी कभी चन्दा को बुला लेता हूँ। लड़के अनेक प्रकार के खिलौनों से जी बहलाते हैं, लड़कियाँ गुड़ियाँ खेलती हैं; परन्तु इस खेल से क्या उनके हृदय में अपने माता-पिता के प्रति प्रेम नहीं रहता ? मन बहलाव दूसरी बात है और प्रेम और प्यार दूसरी बात ! बच्चे भी अपने खिलौनों से इतना प्रेम करते हैं कि उसे देखते हुए सहज ही यह प्रश्न उठ सकता है कि—‘क्या इन्हें अपनी माता से भी उतना ही प्रेम है जितना कि खिलौनों से ?’ परन्तु यह सब जानते हैं कि खिलौनों से जो प्रेम है वह स्थायी नहीं है, माता के प्रति प्रेम स्थायी है। एक दिन खिलौने छूट जाँयेंगे उनसे चित्त भर जायगा; परन्तु माता के प्रेम की भूख सदा बनी रहेगी—उससे कभी चित्त नहीं भरेगा वरन् जैसे जैसे आयु बढ़ती जायगी, समझ आती जायगी वैसे ही वैसे वह प्रेम बढ़ता चला जायगा। इसी प्रकार चन्दा चन्दरोजा है, वह एक दिन छूट जायगी—कदाचित् फिर मैं उसकी सूरत देखना भी पसन्द न करूँगा। परन्तु तुम ! तुम तो सदैव ही मेरे हृदयासन पर विराजमान रहोगी। मृत्यु को छोड़ कर संसार की कोई भी शक्ति हमें-तुम्हें अलग नहीं कर सकेगी।”

यह कह कर राजा साहब ने पुनाः ज्योत्सना का मुख चुम्बन किया। ज्योत्सना को राजा साहब की वाग्वैखरी से बड़ा सन्तोष मिला। वह बोली—“कैसी निर्मल शीतल चाँदनी है, कैसा एकान्त, कैसी शान्ति, कितना सुन्दर आकाश ! इच्छा होती है कि हम-तुम अनन्त काल तक इसी प्रकार इसी स्थान पर बैठे रहें। ना मैं देखूँ और को ना तोहि देखन दूँ। राजा, कभी कभी जब तुम मेरा तिरस्कार करके चन्दा से मिलने जाते हो तो मुझे हार्दिक क्लेश होता है।”

“तुम्हारा तिरस्कार करके ! हरे ! हरे ! यह तुम क्या कहती हो प्राणेश्वरी !”

“मुझे तो ऐसा ही आभास मिलता है कि तुम मेरा तिरस्कार करके जा रहे हो।”

“राजकाज से जाना पड़ता है—अपनी इच्छा के विरुद्ध ! तुम समझती हो तिरस्कार करके जा रहा हूँ। ऐसा कभी न सोचना। तुम्हारा तिरस्कार करना मानो अपने प्राणों का तिरस्कार करना है, आत्महत्या है। और आत्महत्या केवल एक बार की जा सकती है।”

इस प्रकार राजा साहब ने अपने वाग्जालपूर्ण युक्तायुक्त उत्तर—प्रत्युत्तरों से ज्योत्सना को सन्तुष्ट कर दिया। यही तो लंपटों की कला है।

दोनों बड़ी देर तक इसी प्रकार चुम्बनालिङ्गन करते हुए प्रेमालाप करते रहे। इसके पश्चात् ज्योत्सना बोली—“अब चलना चाहिए ! यहाँ से उठने की इच्छा तो नहीं होती, बड़ा सुख मिल रहा है। अपने बाग में ऐसा आनन्द कभी नहीं मिलता जैसा इस प्रकार के स्थानों में मिलता है।”

“इसका कारण यह है कि बाग एक कृत्रिम चीज है, यह प्राकृतिक स्थान है। जो आनन्द प्राकृतिक से मिलता है वह कृत्रिम से कदापि नहीं मिलता।”

दोनों वहाँ से उठ कर पूर्व की भाँति वापस हुए।



(१७)

उपर्युक्त के पश्चात् छः मास बीत गये । इस बीच मैं कोई विशेष बात नहीं हुई । इतना अवश्य हुआ कि चन्दा के प्रति राजासाहब का अनुराग कम हो गया । इसके दो कारण थे । पहिला कारण तो यह था कि चन्दा से राजासाहब का जी भर गया था । दूसरा कारण यह था कि ज्योत्सना ने राजासाहब के प्रति अपना व्यवहार विल्कुल बदल दिया था । पहिले वह राजासाहब से कुछ दृष्ट रहती थी और उसकी दृष्टता का प्रतिबिम्ब राजासाहब पर भी पड़ता था । इस कारण राजासाहब भी उसकी भावनाओं की विशेष परवाह नहीं करते थे । परन्तु बड़ी रानी तथा शर्माजी के सत्परामर्श तथा उपदेश के कारण ज्योत्सना ने अपनी भूल अनुभव की । उसकी समझ में यह बात आ गई कि इस प्रकार के व्यवहार से तो वह प्रतिदिन राजासाहब से दूर होती जायगी । यह बात समझ में आते ही उसने अपना व्यवहार क्रमशः बदल दिया । अब वह राजासाहब से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगी और उनके उन कार्यों की उपेक्षा करने लगी जो उसके चिन्तानुकूल नहीं होते थे ।

उसके इस व्यवहार का प्रभाव राजासाहब पर भी पड़ा । अब उन्हें उसके साथ बैठने-उठने तथा प्रेमालाप करने में विशेष आनन्द आने लगा । ज्योत्सना में रूप-यौवन का अभाव नहीं था । उसका स्वास्थ्य, शारीरिक सौन्दर्य, वर्णालावण्य इत्यादि उतना ही आकर्षक था जितना कि एक नवयौवना तरुणी सुन्दरी का होता है । दो सन्तानों की उत्पत्ति भी उसके रूप-यौवन को विकृत करने में सफल न हो सकी थी ।

वह अब भी अपनी वास्तविक आयु से कम आयु की जान पड़ती थी । अतएव ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व के प्रेमपूर्ण व्यवहार की उपेक्षा करना राजासाहब की सामर्थ्य के बाहर की बात थी ।

राजासाहब से ज्योत्सना को प्रेम नहीं था—ऐसी बात नहीं थी । प्रेम तो उसे आरम्भ से ही था; परन्तु छियोचित लज्जा के कारण पहिले तो कुछ समय तक वह उसे व्यक्त न कर सकी और जब उसका लज्जा-भाव दूर हो कर उसमें अपने प्रेम को व्यक्त करने का साहस उत्पन्न हुआ तब, प्रत्युत उसके पूर्व ही, उसे राजा साहब के लंपट-स्वभाव का ज्ञान हो गया । फलतः उसके हृदय में सौतिया बाह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और उस अग्नि से उत्पन्न रोष तथा क्रोध रूपी राख ने उसके प्रेम को ढक लिया ।

अब वह अग्नि बुझ गई और राख भी हट गई । प्रेम निर्मल होकर अपना पूर्ण प्रकाश देने लगा । अतः राजा साहब का हृदयपतङ्ग स्वयं को उस प्रेमप्रकाश की ओर आकृष्ट होने से न रोक सका । ज्योत्सना ने राजा साहब के इस स्वभाव-परिवर्तन को अनुभव किया, उसका कारण भी समझा । राजा साहब के प्रति अपने व्यवहार पर उसे श्रद्धा हुई, बड़ी रानी के प्रति उसके हृदय में भक्तिभाव उत्पन्न हुआ और शर्मा जी को वह अमना धर्मपुत्र मानने लगे ।

रात के दस बज चुके थे । स्वामी जी भोजन से निवृत्त हो कर अपने शयनगृह में लेटे हुए थे । उनके समीप कुर्सियों पर चन्द्रशेखर सिंह, दलजीत सिंह तथा शास्त्री जी विराजमान थे । चन्द्रशेखर सिंह (ज्योत्सना का छोटा भाई) कह रहा था—“जीजी पर तो उसने न जाने कौन सा मन्त्र फेंका है कि उसके आगे मेरी बात भी नहीं सुनती ।”

“बच्चों के अध्यापक ने छोटी रानी को ऐसा वश में कर लिया ! किमाश्चर्यमतः परम् ।” शास्त्री जी बोले ।

“अब तो वह जीजी का भी अध्यापक है ।”

“राजा साहब ने उसे रानी जी का अध्यापक बनने की आज्ञा ही क्यों दी—यह मेरी समझ में नहीं आता।” दलजीत सिंह ने कहा।

“जीजी ने स्वयं आज्ञा माँगी थी।”

“यदि रानी जी को पढ़ना ही था तो कोई महिला बुलवा लेती। पहिले भी तो एक अध्यापिका पढ़ा चुकी है।” सेक्रेटरी साहब बोले।

मुझे उस समय बड़ी हँसी आती है जब जीजी को वह ‘माताजी’ और जीजी उसे ‘बेटा’ कहती हैं। जीजी उससे अधिक से अधिक दो—तीन वर्ष बड़ी होंगी।”

“तुम्हारी क्या अवस्था है?” शास्त्री जी ने पूछा।

“मैं जीजीसे एक वर्ष छोटा हूँ। मेरी अवस्था छब्बीस वर्ष की है।”

“और मास्टर साहब की वयस?”

“चौबीस—पचीस वर्ष की होगी।”

“हूँ, इससे अधिक नहीं है। वैसे देखने में तो वह बड़ा गुफ-गम्भीर मालूम होता है।” सेक्रेटरी साहब ने कहा।

“बड़ा बना हुआ धूर्त है।” चन्द्रशेखर सिंह बोला।

“यदि उसका प्रभाव इसी प्रकार बढ़ता रहा तो वह एक दिन हम सब को दबा लेगा। राजा साहब भी तो अब उसे बहुत मानने लगे हैं। पहिले तो कभी बात भी न पूछते थे; परन्तु अब तो जब देखो तब शर्मा जी को ही साद किया करते हैं।” सेक्रेटरी साहब ने कहा।

“रानी जी की कृपा हो गई तो राजा साहब भी मानने लगे।” शास्त्री जी बोले।

स्वामी जी अर्द्धशयनावस्था में नेत्र बन्द किये हुए इन सब की बातें सुन रहे थे। सहसा उन्होंने नेत्र खोले और गम्भीर तथा अधिकार-पूर्ण स्वर में बोले—“मुझे इस राज्य का भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई पड़ रहा है। यह शर्मा राज्य के लिए अभिशाप सिद्ध होगा।”

“तब तो महाराज इसे शीघ्र से शीघ्र हटाने का प्रबन्ध होना चाहिए। क्यों शास्त्री जी?”

“निस्सन्देह! राज्य के शत्रु को जितना शीघ्र नष्ट कर दिया जाय उत्तम है।”

“परन्तु कैसे? सोचने की बात तो यही है।” चन्द्रशेखर ने कहा।

“इसकी युक्ति स्वामी जी बतायेंगे।” सेक्रेटरी साहब बोले।

स्वामी जी कुछ क्षण विचार मग्न रह कर शास्त्री जी से बोले—
“क्यों शास्त्रीजी, क्या युक्ति होनी चाहिए? आपने तो नीतिशास्त्र पढ़ा है।”

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया—“नीति में तो भगवन् साम, दाम, दण्ड, भेद—यह चार उपाय बताये हैं। इनमें से पहिले तीन तो यहाँ लागू न होंगे। अन्तिम चौथा ही अर्थात् भेदनीति वाला उपाय काम में लाया जाय।”

“किस प्रकार?” चन्द्रशेखर ने पूछा।

✓ “उसी प्रकार जिस प्रकार कि ‘पञ्चतन्त्र’ के ‘मित्रभेद’ तन्त्र में दमनक शृगाल ने पिङ्गलक सिंह तथा संजीवक वृषभ को लड़वा दिया था।

स्वामी जी प्रसन्न हो कर बोले—“ठीक कहते हो शास्त्री जी! वहाँ वही दमनक वाली नीति काम देगी।”

“कैसे लड़वा दिया था?” चन्द्रशेखर ने पूछा।

“वह बड़ी लम्बी कथा है। पञ्चतन्त्र में पढ़ लेना।” शास्त्री जी ने उत्तर दिया।

“परन्तु वह युक्ति क्या है? यह भी तो मालूम हो।”

“युक्ति यही कि शर्मा जी के विरुद्ध राजा साहब तथा अपनी जोजी को भड़काओ, और शर्मा जी को राजा साहब तथा रानी जी की ओर से सशङ्कित करो।”

“परन्तु शर्मा जी तो ऐसा कोई कार्य ही नहीं करते जिसकी शिकायत की जा सके।”

शास्त्री जी यह सुन कर हँस पड़े। स्वामी जी तथा सेक्रेटरी साहब भी मुस्कराये। शास्त्री जी बोले—“तुम बच्चे ही रहे। अरे शिकायत करो—सच्ची हो या भूठी।”

“भूठी शिकायत करने से भेद खुलने का भय है।”

“‘सुप्रयुक्तस्य दम्भस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति।’ यह नीतिका बचन है। अर्थात् भलीभाँति प्रयुक्त किये हुए ढोंग को ब्रह्मा भी नहीं समझ सकता। मनुष्य की तो गणना ही नहीं। कौशल से काम करो तो योग के समान सिद्धि प्राप्त होगी। गीता में कृष्ण ने कहा है—‘योगः कर्मसु कौशलम्’ कौशल पूर्वक कर्म करना योग है।” शास्त्रीजी ने गीता वाक्य की मिट्टी पलीद करते हुए कहा।

दलजीतसिंह बोल उठे—“आप ठीक कहते हैं शास्त्री जी ! हम लोगों को भेदनीति से ही काम लेना चाहिए। और शीघ्र ही यह काम आरम्भ कर देना चाहिये—विलम्ब होने से शर्मा की शक्ति और अधिक बढ़ जायगी।”

“सत्य बात है। कहा भी है—‘जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत्। महाबलोऽपि तेनैव वृद्धिं प्राप्य स हन्यते।’ जो शत्रु तथा रोग को उनके जन्म लेते ही नष्ट नहीं करता तो वे अर्थात् शत्रु तथा रोग बढ़ कर महाबलवान का भी विनाश कर देते हैं।” शास्त्रीजी ने समझाया।

दलजीत सिंह बोले—“फ्रांसी में भी शेखसादी साहब ने कहा है कि ‘दुश्मन नतवाँ हक़ीरो बेचारः शुमर्द’ दुश्मन को तुच्छ तथा असहाय कभी न समझना चाहिये। इसलिए हम सबको एकमत होकर इस कार्य में प्रयत्न करना चाहिए। क्यों स्वामीजी क्या राय है ?”

“ठीक है। सम्मिलित शक्ति तथा सङ्गठन से ही सफलता मिल सकती है।”

“इस कार्य में महल की कुछ बान्दियों को भी मिलाना होगा।” दलजीत सिंह ने कहा। “और यह कार्य चन्द्रशेखर ही कर सकते हैं।” “बान्दियों को क्या करना होगा ?” चन्द्रशेखर ने पूछा !

“शर्मा के विरुद्ध राजासाहब तथा बड़ी रानी के कान भरना ।”

“हाँ ! यह भी बड़ी महत्वपूर्ण युक्ति है ।” शास्त्रीजी बोले ।

“इन प्रकार जब चारों ओर से शर्मा पर आक्रमण होगा तभी वह परास्त किया जा सकेगा, अन्यथा उलटे हमी लोग मात खा जाँयगे ।”

“यथार्थ है ।” स्वामी जी ने कहा ।

“और आप भी शास्त्रीजी समय समय पर राजासाहब तथा दोनों रानियों को शर्मा की ओर से सावधान करते रहियेगा ।”

“मेरी तो आप चिन्ता ही न कीजिए । मैं अपना कर्तव्य भली भाँति समझता हूँ ।”

“अब रह गये स्वामीजी ।” यह कहकर दलजीत ने स्वामीजी की ओर देखा ।

स्वामीजी बोले—“मेरी ओर से भी आप निश्चिन्त रहें ।”

“आपका प्रभाव सब से अधिक पड़ेगा । आप के कथन को झूठ समझने का साहस न राजासाहब को होगा और न छोटी रानी को । बड़ी रानी तो कदाचित् आपके कथन पर विशेष ध्यान न दे ।” दलजीत सिंह ने कहा ।

“बड़ी रानी मेरे पास बहुत कम आती-जाती हैं ।” स्वामीजी बोले ।

“खैर आप बड़ी रानी को छोड़िये । छोटी रानी को यदि आप शर्मा के विरुद्ध कर देंगे तो बड़ी रानी कुछ न कर सकेंगी । छोटी रानी ने ही तो शर्मा को सिर पर चढ़ा रखा है । बड़ी रानी उसकी इतनी भक्त नहीं हैं ।”

“ठीक कहते हैं आप ! जीजी ही के कारण शर्मा को इतना बल मिला है । बड़ी जीजी को शर्मा की इतनी परवाह नहीं है ।”

“बस अधिक आवश्यकता तो राजासाहब तथा छोटी रानी को

उसके प्रतिकूल करने की है। ये दोनों प्रतिकूल हो गये तो शर्मा कन्नौ से कट जायगा।” दलजीत ने कहा।

“अब शर्मा की कोई रक्षा नहीं कर सकता। जब इतने और ऐसे ऐसे लोग उसका विरोध करना आरंभ कर देंगे तब उसे कौन बचा सकता है।” शास्त्रीजी हँसते हुए बोले।

“देखिये, प्रयत्न तो किया ही जायगा।” छोटी रानी के भ्राता ने कहा।

“देखना-वेखना सब ठीक है। ‘समवायो हि दुर्जयः’ मेल बहुत बड़ी शक्ति है। मिलकर कार्य करने से निश्चय सफलता मिलती है।

“जब स्वामीजी हमारा साथ देंगे तब सफलता मिलने में क्या सन्देह है।”

“वाहवा ! यह तो सुवर्ण में सुगन्ध है।”

“बस, राजा का चित्त जहाँ उसकी ओर से बिगड़ गया—सब काम बन जायगा।” दलजीत सिंह ने कहा।

“और राजा के चित्त का पता दैव भी नहीं लगा सकता। कहा भी है—नृपस्य चित्तां; कृपणस्य वित्तां मनोरथं दुर्जनमानवानाम्। स्त्री चरित्रं, पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥ राजा का चित्त, कृपण का धन, दुर्जेनों का मन्तव्य, स्त्री चरित्र, पुरुष का भाग्य—इन्हें दैव भी नहीं जानता, मनुष्य की तो गिनती ही क्या है। और जहाँ राजा का चित्त बिगड़ गया फिर ‘राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?’ राजा किसी का मित्र नहीं होता।”

स्वामीजी बोले—“त्रिवेदी शर्मा का पत्न लेगा।”

दलजीत सिंह ने कहा—“हाँ लेगा तो अवश्य, परन्तु इतने आद-मियों के सामने अकेले त्रिवेदी की क्या चलेगी।”

“इसके अतिरिक्त त्रिवेदी को महल के सम्बन्ध की बातों का क्या ज्ञान हो सकता है।” चन्द्रशेखर सिंह ने कहा।

“हाँ यह बात भी है । ” दलजीत ने कहा ।

“त्रिवेदी को केवल बाहरी मामलों का ज्ञान हो सकता है । महल से उससे क्या संबंध । इस कारण उसकी ओर से निश्चिन्त रहना चाहिए । ”

स्वामीजी बोले—“मैं तो चतुर्दिक का विचार करता हूँ । ”

शास्त्रीजी ने चाटुकारतापूर्ण मुस्कान के साथ सिर हिलाते हुए कहा—“ठीक है महाराज ! बुद्धिमान सब बातें सोचकर काम करते हैं । इसीलिए तो बुद्धिबल को सब से श्रेष्ठ कहा है । ‘यस्य बुद्धिर्वलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् !’ बुद्धिमान ही बलवान होता है, बुद्धिहीन बलवान नहीं होता । ”

इस प्रलार परामर्श होने के पश्चात् तीनों व्यक्ति विदा हुए ।



(१८)

उपर्युक्त लिखित के एक सप्ताह पश्चात् एक दिन सन्ध्या समय जब कि राजासाहब ज्योत्सना तथा दोनों बच्चों सहित कार पर घूमने गये हुए थे, चन्द्रशेखर सिंह बड़ी रानी के समीप पहुँचा। बड़ी रानी ने पूछा—
“आज बहुत दिनों पश्चात् इधर आया।”

“क्या करूँ बड़ी जीजी, समय ही नहीं मिलता। मेरी तो बड़ी इच्छा रहती है कि आपके पास कुछ देर बैठकर आपके उपदेशों से लाभ उठाऊँ, परन्तु अवसर ही नहीं मिलता।”

“मेरे से क्या उपदेश लेगा, स्वामीजी के पास जाया कर।”
रानी ने मुस्कराकर कहा।

“उनके पास भी जाता हूँ। पर वह तो धार्मिक उपदेश दे सकते हैं।”

“और तू कैसा उपदेश चाहता है?”

“मैं घर-गृहस्थी और राजकाज के उपदेश चाहता हूँ।”

“हाँ! ठीक है। अभी तो तुझे गृहस्थ बनना है। मैं राजाजी से कहूँगी कि तेरे ब्याह का प्रबंध करें।”

चन्द्रशेखर कुछ लजा का भाव दिखाकर बोला—“कौन जल्दी है बड़ी जीजी! जब होना होगा हो जायगा।”

“बाइस-तेइस बरस का तो हो गया—और क्या चाहता है?”

“मैं स्वाधीनता चाहता हूँ बड़ी जीजी, विवाह हो जायगा तो स्वाधीनता नष्ट हो जायगी।”

“पागल ! विवाह से कहीं स्वाधीनता नष्ट होती है ?” रानी ने हँसते हुए कहा।

“सच्ची बात है बड़ी जीजी, पत्नी आयगी तो उससे कुछ तो दबना ही पड़ेगा।” चन्द्रशेखरने मुस्कराते हुए कहा।

“अरे तो तू कौन ऐसा काम करता है जिसके कारण तुझे दबना पड़ेगा। दबना उन्हें पड़ता है जो कोई चोरी का काम करते हैं।”

“खैर सो तो आप बड़ों का आशीर्वाद है। मुझे मे कोई खराब लत नहीं है। व्यायाम करता हूँ और जो समय मिलता है उसमें अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ता हूँ।”

“यह तो बड़ी अच्छी बात है। ऐसा ही करना चाहिए। राजा-साहब के साथ पीता-पीता तो नहीं है ?”

“बड़ी जीजी, हाथ तक से छूता हूँ तो कसम ले लो—अपने वास्ते। वैसे जीजा जी को तो कभी कभी देना ही पड़ती है।”

“वह कैसे ?”

“कभी जब उनके पास होता हूँ तो वह बेरा को न बुलाकर मुझ से ही लाने को कह देते हैं।”

“यह बात दूसरी है। तू कभी मत पीना। बड़ी बुरी चीज है।”

“मैं कभी नहीं पियूंगा जीजी ! मैंने कसम खा रखी है।”

“बड़ा अच्छा किया।”

“कुछ देर दोनों मौन बैठे रहे। इसके उपरांत चन्द्रशेखर बोला—
“बड़ी जीजी, आप से एक बात कहना है।”

“क्या बात ?”

“छोटी जीजी ने शर्मा जी को बहुत सिर पर चढ़ा रखा है, यह बात अच्छी नहीं है।”

“शर्मा जी तो उसे पढ़ाते हैं।” रानी ने कहा।

“यह तो मैं भी जानता हूँ। पढ़ाने में तो कोई हर्ज नहीं; पर कुछ और बात है।”

रानी का सहास्य मुख एक दम गंभीर होगया। माथा सिकोड़कर उन्होंने पूछा—“और क्या बात है?”

“वह शर्मा जी की बात मानती है।”

“बस इतनी ही बात?”

“हाँ बात तो केवल इतनी ही है।”

रानी मुख को ठीकठा छोड़कर बोली—“यह तो कोई वैसी बात नहीं है। शर्मा बहुत बुद्धिमान आदमी है, उचित परामर्श देता है इस कारण उसकी बात माननी पड़ती है।”

“हाँ—आँ, यह हो सकता है, परन्तु इसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता।”

“किन पर?”

“अन्य लोगों पर!”

“क्या प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता?”

“लोग समझते हैं कि शर्मा जी ने जीजी को वशीभूत कर लिया है।”

“क्या तेरे जीजा भी ऐसा समझते हैं?”

“जीजा जी के सम्बन्ध में तो मैं कुछ कह नहीं सकता कि वह क्या सोचते हैं, परन्तु अन्य लोग—जैसे सेक्रेटरी साहब, शंकर सिंह तथा अन्य कर्मचारी ऐसा ही सोचते हैं। शास्त्री जी भी एक दिन कुछ ऐसा ही भाव प्रकट कर रहे थे। हाँ—स्वामी जी ने भी एक दिन मुझसे यही प्रश्न किया था।”

“क्या प्रश्न किया था?”

“यही कि आज कल शर्मा का छोटी रानी जी पर बड़ा प्रभाव है—इसका क्या कारण है?”

“हूँ !” कह कर रानी विचार मग्न हो गईं । चन्द्रशेखर गम्भीर मुख बनाये नतमस्तक बैठा था और मन में सोच रहा था—“तीर निशाने पर लगा ।”

कुछ देर पश्चात् रानी जी बोली—“मैं भी इस बात की जाँच करूँगी ।”

“परन्तु कहीं मेरा नाम न लेना जीजी !”

“पागल है क्या ! मैं किसी का भी नाम न लूँगी ।”

“शास्त्री जी से पूछियेगा ।”

“उनसे भी पूछूँगी ।”

इसके पश्चात् कुछ देर क्षण इधर उधर की बातें कर के चन्द्रशेखर एक आवश्यक कार्य याद आने की बात कह कर चला गया ।

रानी गम्भीरता पूर्वक विचार कर रही थीं ।

चन्द्रशेखर के बीस मिनट पश्चात् ही रानी के कानों में शास्त्री जी का कंठ स्वर सुनाई पड़ा । ‘यदा यदाहि धर्मस्य’—इत्यादि ।

कंठ स्वर निकट आता गया । सहसा एक बाँदी रानी जी के सामने उपस्थित होकर बोली—“शास्त्री जी आये हैं ।”

“आने दो !”

रानी के ओठों पर मन्द मुस्कान प्रस्फुटित हुई, पर शास्त्री जी को देखते ही उनका मुख पूर्ववत् सरल गम्भीर हो गया । वह उठ कर खड़ी हो गईं और विकसित मुख से बोलीं—“आइये महाराज—प्रणाम !”

शास्त्री जी अपनी भग्नदन्तपंक्ति दिखा कर दाहिना हाथ ऊपर नीचे हिलाते हुए बोले—“अचल सुख सौभाग्य हो, भगवत्प्रेम की वृद्धि हो ।”

“बैठिये !” रानीजी ने कौच की ओर सङ्केत करके कहा ।

शास्त्रीजी स्थूल शरीर होने के कारण यथेष्ट भारी थे अतः कौच में धँस गये । रानी उनके सन्मुख कुर्सी पर बैठ गईं ।

“आहा ! इस आसन पर बैठते ही शरीर को ऐसा विश्राम मिलता है कि निद्रा आने लगती है । राजसी आसन है । ”

“राजसी वा तामसी ? निद्रा लाने वाला आसन तो तामसी होता है । ” रानी ने हँसकर कहा ।

शास्त्रीजी चाटुकारतापूर्वक हँसते हुए बोले--“हाँ ! हाँ ! रानीजी ने वास्तविक बात कही । आहा ! कितना शास्त्रज्ञान है आपको, धन्य है । ”

“आज इस समय कैसे कृपा की ? ”

“छोटी रानी के पास आया था; परन्तु वह वायुसेवनार्थ गई हुई है अतः मैंने सोचा कि आपके दर्शन करता चलूँ । ”

“मेरे दर्शन क्या महाराज ! हाँ आपने दर्शन दिया, यह बड़ा कृपा की । ”

“आपके दर्शन क्यों नहीं ? पतिव्रता स्त्री तो देवी होती है, उसके दर्शन बड़े भाग्य से मिलते हैं । ‘पतिव्रता दर्शनीया प्रणम्याच’ ऐसा कहा गया है । ”

“छोटी रानी से कोई विशेष कार्य था ? ”

“ऐसा कोई विशेष कार्य नहीं था—यद्यपि यहाँ आकर मेरा विचार कुछ बदल गया था । यह भी अच्छा हुआ कि वद नहीं मिली—पहिले आपकी सेवा में उपस्थित होने का अवसर मिल गया । ”

“बात क्या है—यह तो बताइये । ”

“कोई ऐसी विशेष बात नहीं, केवल कुछ परामर्श देना था । ”

“छोटी रानी को ? ”

“हाँ उन्हीं को । बात यह है कि अभी उन्हें अनुभव तो है नहीं, इस कारण जैसी रुचि तथा इच्छा होती है उसके अनुसार कार्य सम्पादित करती हैं । और आप जानती हैं रानीजी ‘संसारोऽयमतीव विचित्रः’ यह संसार बड़ा विचित्र है । हाँ, यश तो बड़ी कठिनता से मिलता है, अपयश निमेषमात्र में प्राप्त हो जाता है । ”

“आप बात तो बताइये ।” रानी ने कुछ बेचैन होकर कहा ।

“बात भी बताता हूँ । जब बोलना आरंभ कर दिया है तब सब बता दूँगा । बात यह है कि इधर छोटी रानी ने शर्मा से कुछ इतनी घनिष्ठता उत्पन्न कर ली है कि वह लोकापवाद का कारण बनती चली जा रही है ।”

“छोटी रानी तो शर्मा को पुत्रवत् मानती है और वह भी उसे माता के समान ही समझता है ।”

“छोटी रानीजी शर्मा को पुत्रवत् मानती हैं । निश्चय ही उनका भाव शुद्ध है; परन्तु ‘यद्यपि शुद्धं लोकविषुद्धं न करणीयं न करणीयम्’ ऐसा कहा है । यद्यपि शुद्ध हो परन्तु लोकविषुद्ध हो तो वह कार्य कदापि न करना चाहिये ।”

“हाँ यह तो आपका कथन यथार्थ है ।”

“शास्त्र का कथन है रानीजी, मेरा कथन नहीं है । और शास्त्र ने अनर्गल प्रलाप नहीं किया है—हाँ— ।”

“सो तो नहीं किया है ।”

“आप तो स्वयं सब जानती हैं । ऐसा कौन सा शास्त्र है जो आपने अवलोकन नहीं किया ।”

“आखिर लोकापवाद का कोई कारण भी तो होना चाहिए । केवल कुछ घनिष्ठता देख कर ही कोई विपरीत अनुमान लगा लेना कहाँ तक न्यायसङ्गत है ?”

“नितान्त अन्यायसङ्गत है !” यह मैं स्वीकार करता हूँ । परन्तु जब एक व्यक्ति स्वयं ही कोई ऐसी बात कहे जो सन्देह का प्रादुर्भाव करने में सहायक हो तब तो अन्यायसङ्गत कहना समीचीन नहीं है ।”

रानी जी चौंक पड़ी । और उनका मुख एकदम गम्भीर हो गया । कुछ क्षण रुक कर उन्होंने पूछा—“आपका तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया, इसे स्पष्ट कीजिये ।”

‘शर्मा ने अपनी मित्र मण्डली में बैठ कर कुछ ऐसे—शब्द—कहे हैं जो एक पुत्र अपनी माता के प्रति कदापि नहीं कह सकता।’

‘अर्थात् !’ रानी जी ने माथा सिकोड़ कर किञ्चित् उत्तेजना सहित कहा।

शास्त्रीजी रानीजी की उत्तेजना से तनिक भी विचलित न होकर बोले—‘वे शब्द तो मैंने सुने नहीं और न सुनने की इच्छा है। और यदि सुने भी होते तो कदाचित् मैं उन्हें प्रकाशित न करता। क्योंकि शास्त्र कहता है कि ‘कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत्’ बुद्धिमान को यदि कहीं अच्छा भोजन न मिले अथवा वह कोई बुरी बात सुने तो उसे इनको प्रकाशित नहीं करना चाहिए।’

‘तब फिर आपने कैसे जाना कि शर्मा ने क्या कहा?’

‘प्रसङ्ग का तारतम्य मिलाने से यदि शब्दों का नहीं तो भाव का ज्ञान तो हो ही जाता है।’

‘तो शर्मा ने जो कहा उसका तारतम्य आपने क्या निकाला?’

‘यही कि कदाचित् शर्मा अपने तथा छोटी रानी के पवित्र संबंध को अपनी मित्र मण्डली में बैठ कर कुछ अपवित्र रूप देता है।’

‘ऐसी बात है?’

‘हाँ मेरा अनुभव तो कम से कम ऐसा ही है। परन्तु अभी मैं अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचा हूँ। मैं अभी इसके सम्बन्ध में और अन्वेषण करूँगा।’

‘अवश्य कीजिए ! मेरा भी आपसे यह अनुरोध है। यदि ऐसी बात है तो यह शर्मा बड़ा नीच व्यक्ति है और इसे जितना शीघ्र यहाँ से बिदा कर दिया जाय उतना ही अच्छा है। क्यों ठीक है न ?’

‘निश्चय ! ऐसे व्यक्तिको तो क्षणमात्र भी न टिकने देना चाहिए। ‘सर्वथा परित्याज्यो दुर्जनः’ जो ऐसा मिथ्या प्रचार करता है वह दुर्जन है और दुर्जन सर्वथा परित्याज्य होता है।’

“यथार्थ बात है। आप जितना शीघ्र हो सके इसका निर्णय करके मुझे सूचना दीजिएगा। यह स्मरण रखियेगा कि अभी अन्य किसी को यह बात न ज्ञात हो, न छोटी रानी को, न राजा साहब को—यह मेरा अनु-रोध ही नहीं वरन् आदेश है—ऐसा शब्द कहने के लिये आप मुझे क्षमा करें; परन्तु कभी कभी ऐसा भी करना पड़ता है। राजकाज बढ़ा कठिन होता है।”

“निश्चय ! निश्चय ! मैं रानी जी का मन्तव्य समझ गया। ऐसा ही होगा।”

“और यदि अन्य कोई यह बात जानता हो तो उसे भी रोक दीजिएगा।”

“हरे ! हरे ! ऐसी बात भला मैं किसी अन्य से कह सकता हूँ ! ‘गोपनीयं गोपनीयम्’ मेरा सिद्धान्त है।”

“आप तो न कहेंगे, परन्तु यदि कोई बिना आपके कहे हुए जानता हो और उसकी ओर से यह भय हो कि वह राजा साहब के कानों तक यह बात पहुँचा देगा तो उसे भी रोक दीजिएगा।”

“निश्चय ! यदि मुझे किसी ऐसे व्यक्ति का अनुसन्धान मिला तो मैं उसे रोक दूंगा। अच्छा अब रानी जी मुझे आज्ञा दें।” यह कह कर शास्त्री जी उठ खड़े हुए। रानी भी उठ कर खड़ी हो गई और उन्हें प्रणाम करके बोली—“मेरी प्रार्थना को स्मरण रखियेगा।”

“अवश्य ! रानी जी की इच्छा के विरुद्ध मैं तृण भी नहीं उठा सकता। ‘राजाज्ञा सदैव पालनीया’। अच्छा कल्याण हो।” कह कर शास्त्री श्री “भजगोविन्दं भज गोविन्दम् —” कहते हुए बिदा हुए।

उनके पाठ पीछे रानी जीने मुस्कराकर सिर हिलाया।

इधर ज्यों ही शास्त्री जी महल के अन्तःपुर से निकल कर मर्दाने भाग में पहुँचे त्योंही चन्द्रशेखर से उनकी मुठभेड़ हुई, मानो वह उनकी प्रतीक्षा में था। उसने उत्सुकतापूर्वक शास्त्री जी से पूछा—“क्या हुआ ?”

“कार्य का श्रीगणेश हुआ है। बीजवपन शुभ मुहूर्त में हुआ है—कालान्तर में अच्छा फल देगा। परन्तु सावधान ! अब किसी को इस विषयके सम्बन्ध की कोई बात न ज्ञात हो, न तुम्हारी छोटी जीजी को, न राजा साहब को न किसी अन्य को ! अन्यथा हमारा कार्य चौपट हो जायगा।”

“अच्छा यह कैसे ?”

“बस अभी इतना सङ्केत ही यथेष्ट है। मेरा रानी जी से जो वार्तालाप हुआ है उसके अनुसार अब इस सम्बन्ध में मौन हो जाना ही युक्ति सङ्गत है।”

“क्या वार्तालाप हुआ, कुछ तो बताइये।” चन्द्रशेखर ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

शास्त्री जी ने शीघ्रतापूर्वक संक्षेप में बता कर कहा—“अब समझ में आ गया ?”

“हाँ ! बड़ी जीजी को आपने साध लिया, यह बड़ा अच्छा किया अब उन्हीं के द्वारा हमारा अभिप्राय सिद्ध होगा।”

“यह ! हमें सौभाग्य से प्रारम्भ में ही बड़ा प्रबल अस्त्र प्राप्त हो गया है। अतः अब उसी से काम लेना चाहिए। यह ऐसा अस्त्र है जो शर्मा का अस्तित्व मिटा देगा।”

“तो अभी जीजी से इसका चर्चा न किया जाय ?”

“बिल्कुल नहीं। सेक्रेटरी साहब से भी कह देना कि राजा साहब से अभी कुछ न कहें।

“और स्वामी जी को भी मना करना होगा।”

“हाँ उन्हें भी, अथवा उनसे मैं कह दूंगा।”

“आप जाँय तो आप कह दीजियेगा।”

“अच्छी बात है, मैं तो नित्य ही उनके पास जाता हूँ।”

यह परामर्श करके दोनों अलग हुए।

(१९)

एक सप्ताह व्यतीत हो चुका था। राजासाहब अपने प्राइवेट सेक्रेटरी तथा कुछ अर्दलियो सहित एक अन्य राजा के यहाँ विवाहोपलक्ष में सम्मिलित होने गये थे।

दोपहर का समय था बड़ी रानी तथा छोटी रानी दोनों बैठी हुई परस्पर वार्त्तालाप कर रही थीं। छोटी रानी ने पूछा—“यह तुम्हें कैसे पता लगा जीजी ?”

“मैंने पता लगाया तो पता लगा। बात यह है कि एक दिन चन्द्रशेखर मेरे पास आया और उसने बातों बातों में शर्माजी की शिकायत की। यद्यपि उसकी बात पर आश्चर्य हुआ, परन्तु फिर भी मैंने उसकी बात को सर्वथा मिथ्या नहीं समझा। उस समय ऐसा समझने का कोई कारण भी न था। उसने अपनी बात की साक्षों में शास्त्रीजी का नाम लिया। मैंने चुपचाप सब सुन लिया।

“जब वह मेरे पास से उठकर गया तो उसी समय शास्त्रीजी आ गये। उनके इतनी जल्दी आने से मुझे सन्देह हुआ कि यह सब पूर्व-रचित षडयंत्र है। शास्त्रीजी ने भी शर्माजी की निन्दा की और बिना मेरे पूछे। मैंने शर्माजी के सम्बन्ध में उनसे कोई प्रश्न नहीं किया—वह अपने आप ही कहने लगे।”

“फिर क्या हुआ ?” ज्योत्सना ने पूछा।

“मैंने सोचा कि ये लोग निश्चय ही तुम्हें तथा राजासाहब को शर्मा के विरुद्ध भड़कावेंगे। अतः मुझे एक युक्ति सूझी मैंने शास्त्रीजी को मना कर दिया कि अभी किसी से भी इसका चर्चा न करें, मैं पता लगा लूँ तब कहा जायगा। इस प्रकार मैंने उन्हें रोक दिया कि मैं इसकी जाँच करके तुम्हें तथा राजासाहब को सावधान कर दूँगी।”

“तो तुमने जाँच कर ली ?”

“हाँ कर ली। वह सब बात भूठ है। शर्मा बेचारा बड़ा भला आदमी है। उससे ऐसा नीच कर्म नहीं हो सकता।”

“जाँच कैसे की ?”

“अपनी एक बाँदी तथा उसके पति से जाँच करवाई।”

“जाँच गुप्तरूप से कराई होगी ?”

“और नहीं क्या प्रकट रूप से—पागल कहीं की।”

“परन्तु ये लोग उसके विरुद्ध यह षडयन्त्र क्यों रच रहे हैं ?”

“ईर्ष्या ! तुम और राजासाहब उसपर इतने कृपालु हो, यह लोगों से नहीं देखा जाता। रजवाड़ों में ऐसा बहुत होता है। मेरे मायके में भी यही दशा है। जहाँ कोई व्यक्ति राजपरिवार का कृपापात्र बनने लगा, बस अन्य कर्मचारियों ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचकर उसे निकलवा दिया। एक प्राइवेट सेक्रेटरी के विरुद्ध तो स्वयं मेरी माताजी ने षडयन्त्र रचा था।”

“क्यों ?”

“उसने मेरे पिताजी को ऐसा वश में कर लिया था कि उसके आगे पिताजी माताजी की बात भी नहीं मानते थे। तब विवश होकर माताजी को उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचना पड़ा था ?”

“फिर क्या परिणाम हुआ ?”

“बड़ी देइजती से निकाला गया। यही तुम्हारे भ्राताजी भी करना चाहते हैं, किसी न किसी प्रकार शर्मा को निकलवाना चाहते हैं।”

“ऐसी ही बात है। शर्माजी के सम्बन्ध में मैं उसे कई बार डाँट चुकी हूँ।”

“क्या किया था उसने ?”

“कुछ नहीं ! शर्माजी की निन्दा करता था और मुझसे कहता था कि इसे महल में मत आने दिया करो। कारण यह हुआ कि दो-एक बातों में मैंने उसका परामर्श न मानकर शर्माजी की बात मानी और उनकी सलाह से मुझे लाभ हुआ—बस इस बात पर वह शर्माजी से रुष्ट हो गया।”

“हाँ उसने देखा कि शर्मा के आगे उसकी बात नहीं मानी गई।” बड़ी रानी हँसकर बोली।

“उसकी बात मानना भूल थी—यह बाद को प्रमाणित हो गया।”

“सो तो वह अभी लड़का ही है, न उसे पूरी शिक्का ही मिली है और न उसे अनुभव ही है। केवल तुम्हारे कारण ही वह यहाँ रख लिया गया है।

“सो तो मैं समझती हूँ; पर वह यह बात नहीं समझता।”

“मूर्ख है। उसे तुम्हारे अनुकूल हो कर रहना चाहिए, न कि दूसरों से मिल कर ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध षडयन्त्र करे जिसको तुम अपना हितैषी समझती हो। यह कितनी बुरी बात है।”

“बहुत बुरी बात है जीजी ! इसे यहाँ से हटा दूँ— क्या कहें ?”

“खैर, इतनी सख्ती करने की आवश्यकता नहीं। एक बार उसे अच्छी तरह डाँट दो, समझा दो— न माने तब देखा जायगा।”

“अच्छी बात है। आज ही डाँट दूंगी।”

“और यह भी पूछता कि इस षडयन्त्र में कौन कौन सम्मिलित है।”

“अवश्य पूछूँगी।”

“यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि उसका पता लग जायेगा तो हम लोग उन लोगों से सतर्क हो जायेंगे।”

“निस्सन्देह ऐसे आदमियों से सावधान हो जाना चाहिए।”

“ऐसे आदमी बड़े भयानक होते हैं। जिस राज्य में ऐसे आदमी होते हैं वहाँ कोई भी अच्छा और ईमानदार आदमी नहीं टिकने पाता।”

“ठीक कहती हो जीजी !”

“पहिले उससे यह पूछना कि शर्मा जी कैसे आदमी हैं—देखना उनकी कितनी बुराई करता है। अनजान बनके पूछना।”

“अच्छी बात है।”

थोड़ी देर इधर उधर की बातें काके छोटी रानी अपने स्थान पर आ गई। थोड़ी देर में चन्द्रशेखर उनके पास आकर बोला—“जीजी ! तुम कुछ चीजें मँगवाने को कह रही थीं। उनकी लिस्ट बना दो तो लखनऊ जाकर ले आऊँ।”

“हाँ मँगवानी तो थीं। कुछ सेन्ट, क्रीम, पाउडर इत्यादि मँगाना थे।”

“लिस्ट बना ली है ?”

“नहीं, अभी तो नहीं बनाई।”

“तो लिस्ट बना दो या मुझे लिखा दो।”

“बना दूँगी।”

“मुझे कल लखनऊ जाकर कुछ और सामान लाना है, उसी के साथ तुम्हारी चीजें भी लेता आता।”

“बना दूँगी ! दस-पन्द्रह मिनट का तो काम है। कल किस समय जायगा ?”

“कल जाऊँगा, दस-ग्यारह बजे !”

“तो सबेरे बना दूँगी।”

“अच्छी बात है ।” यह कह कर चन्द्रशेखर जाने लगा ।”

ज्योत्सना ने उसे रोका—“अरे सुन तो सही ।”

चन्द्रशेखर ठिठुक गया । ज्योत्सना से पूछा—“यह शर्मा जी कैसे आदमी हैं । बाहर इनके सम्बन्ध में लोगों की क्या राय है ?”

चन्द्रशेखर सोत्साह बोला—“शर्मा जी अच्छे आदमी नहीं हैं जीजी ! वह न जाने कैसी कैसी बातें लोगों से कहते हैं ।”

“क्या बातें कहते हैं ?”

“यहाँ तो तुम्हें माता कहते हैं और बाहर न जाने क्या क्या बकते हैं ।”

“क्या बकते हैं, कुछ मालूम तो हो ।”

“अब वे बातें तुम्हारे सामने क्या कहें ।”

“हूँ ! अच्छा तुम से किसी ने कहा कि शर्मा जी ऐसा कहते हैं । तुम्हें कैसे पता लगा ?”

“मुझ से लोगों ने बातों बातों में संकेत किया ।”

“वही तो पूछती हूँ— किस किसने संकेत किया ?”

“प्राइवेट सेक्रेटरी साहब ने, शास्त्री जी ने—यहाँ तक कि स्वामीजी ने भी कहा था ।”

“स्वामी जी ने भी !”

“हाँ यही तो आश्चर्य की बात है ।”

“स्वामी जी से किसी ने कहा होगा ?”

“हाँ ! ऐसा ही जान पड़ता है ।”

“यदि ऐसी बात है तब तो बहुत बुरी बात है ।”

“बड़ी बेजा बात है । मैं तो तुम से कहने वाला था, परन्तु बात ऐसी है कि कहने का साहस नहीं होता था ।”

“अच्छी बात है । कल दस बजे लखनऊ जायगा ?”

“हाँ कल जाऊँगा । दस बजे जाऊँगा तो बारह बजे तक

पहुँच जाऊँगा । बाजार से सामान खरीदकर शाम तक वापस आ जाऊँगा ।”

“अच्छा कल लिस्ट दे दूँगी ।”

चन्द्रशेखर चला गया । ज्योत्सना उसी समय बड़ी रानी के पास पहुँची । बड़ी रानी ने उसके इतनी जल्दी आने पर साश्चर्य पूछा—“क्या बात है ।”

“चन्द्रशेखर अभी आया था जीजी ! मैंने उससे पूछा ।”

बड़ी रानी उत्सुकतापूर्वक बोली—“हाँ क्या कहता था ?”

“वह तो गवाही मे बड़े बड़े आदमियों के नाम लेता है । शास्त्री जी को तो तुमने ही मुझे बता दिया था । उनके अतिरिक्त सेक्रेटरी साहब और स्वामी जी का भी नाम भी लेता है ।”

“स्वामी जी !” बड़ी रानी ने विस्मित होकर कहा ।

“हाँ ।”

“इस से तो पता लगता है कि स्वामी जी इस षडयंत्र में सम्मिलित हैं ।”

“भगवान जाने ! स्वामी जी से ऐसी आशा तो नहीं है ।”

बड़ी रानी कुछ देर बिचार करके बोली—“फिर तुमने कुछ डाँटा फटकारा ?”

“उसने स्वामी जी का नाम लिया तो मुझे भी सन्देह हो गया कि सम्भव है शर्मा जी ने कहीं कुछ बक दिया हो । बिना इस बात की भली भौँति जाँच किये हुए उसे डाँटना भी ठीक नहीं ।”

“परन्तु स्वामी जी से पूछे कौन ?”

“तुम्हारी सलाह हो तो मैं पूछूँ ।”

“बड़ी रानी कुछ ज़रा विचार करके बोली—“तुम अपनी ओर से न पूछो । यदि स्वामी जी इस षडयंत्र में सम्मिलित हैं तो वह स्वयं तुम से कहेंगे । किसी समय एकान्त में उन के पास किसी बहाने से जाओ । देखो कुछ कहते हैं या नहीं ।”

“अच्छी बात है, कल जाऊँगी।”

“तुम चुपचाप सुन कर मुझे बताना, फिर मैं तुम को बताऊँगी कि क्या करना चाहिए।”

“अच्छी बात है।”

उधर चन्द्रशेखर छोटी रानी के पास से सीधा शास्त्री जी के निवास स्थान पर पहुँचा। शास्त्री जी उस समय एक संस्कृत पुस्तक देख रहे थे। चन्द्रशेखर को देखते ही मुस्कराकर बोले—“आओ ! क्या समाचार है।”

“आज मैंने जीजी से शर्मा की बात कह दिया।”

“ऐ ! क्यों ? मैंने तो तुम्हें मना किया था।”

“मैंने अपना ओर से नहीं कहा। उन्होंने स्वयं पूछा तो कहना पड़ा।”

“उन्होंने स्वयं पूछा था !”

“हाँ !”

“तब तो बड़ी सुन्दर बात हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें भी कुछ सन्देह हुआ। परन्तु सन्देह होने का कारण क्या हुआ।” शास्त्री जी के अन्तिम वाक्य विचार करते हुए कहा।

“यह मैं नहीं बता सकता।”

शास्त्री जी कुछ क्षण विचार कर के बोले—“ऐसा अनुमान होता है कि बड़ी रानी ने कुछ कहा होगा। अन्य किसी से यह वृत्तान्त उन्हें ज्ञात ही नहीं हो सकता।”

“हाँ और कौन कहेगा। और किसी को यह बात मालूम भी तो नहीं है। मैंने दो बाँदियों को अलवत्ता साव रखा है। सम्भव है उन्होंने कुछ कहा हो।”

“छोटी रानी की बाँदियाँ हैं।”

“एक छोटी की और एक बड़ी की।”

“उन से पूछना उन्होंने कहा होगा तो बता देंगी । ”

“हाँ अवश्य बता देंगी । आज पूछूँगा । मुझे ध्यान नहीं आया अन्यथा अभी पूछ कर आता । ”

“खैर कुछ भी हो; परन्तु छोटी रानी को सन्देह हो गया यह अच्छा ही हुआ । ”

दूसरे दिन छोटी रानी दो दासियों सहित स्वामीजी के पास पहुँची । दोपहर का समय था, स्वामीजी शयन कर रहे थे । ज्योत्सना के आगमन की सूचना मिलते ही वह अपने शयन गृह के बाहर आ गये और जिस स्थान पर बैठकर प्रवचन किया करते थे उस स्थान पर बैठ गये । ज्योत्सना उन्हें प्रणाम करके उनके सन्मुख बैठ गई । दोनों दासियाँ इतनी दूर बैठ गईं कि यदि स्वामीजी तथा ज्योत्सना धीमे स्वर में बात करें तो दासियों को शब्द स्पष्ट न सुनाई पड़े ।

स्वामीजी ने पूछा—“आज इस समय आने का क्या कारण है पुत्री ? ”

ज्योत्सना बोली—“आज कई दिन से मेरा चित्त कुछ उद्विग्न है, पढ़ने-लिखने में नहीं लगता, इस कारण मैंने सोचा कि आपकी सेवा में चलूँ—वहीं कुछ शान्ति मिलेगी । ”

“अच्छा किया । परन्तु उद्विग्नता का कारण क्या है ? ”

“यह मेरी समझ में स्वयं नहीं आता । ” ज्योत्सना ने कहा ।

“क्या पढ़ती हो आजकल ? ”

“हमारे यहाँ जो शर्माजी आये हैं, आप उनको जानते होंगे बच्चों को पढ़ाते हैं—उनसे मैंने भी पढ़ना आरम्भ किया है । ”

“हाँ, यह मैंने भी सुना था कि तुम शर्माजी से पढ़ती हो । परन्तु यह कार्य तुमने अच्छा नहीं किया पुत्री । ”

“कौन सा कार्य महाराज ? ”

“यही, शर्माजी से पढ़ने का ? ”

“इसमें हानि ही क्या है। शर्मा तो बड़ा सज्जन व्यक्ति है।”

“सज्जन ! हुँह !” यह कहकर स्वामीजी मुस्कराये।

“क्यों महाराज, क्या सज्जन नहीं है ?”

“शर्मा ऊपर से जितना सज्जन दिखाई पड़ता है, उतना सज्जन नहीं है। वह तुम्हारी बदनामी करता है और तुम उसे सज्जन कहती हो। वास्तव में सज्जन और भोली तुम हो जो उस धूर्त को भी सज्जन समझ रही हो।”

“वह मेरी बदनामी करता है ?” ज्योत्सना ने विस्मित होने का भाव दिखाकर पूछा।

“निस्सन्देह ! मेरे कानों में कुछ ऐसी बात पहुँची है जिसे बदनामी ही कहा जायगा।”

“क्या बात है वह !”

“वे शब्द मैं तुम्हारे सामने, जिसे मैं अपनी पुत्री समझता हूँ, कदापि नहीं कह सकता। ‘कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत्।’ कही बुरा भोजन खाने को मिले, कहीं कोई बुरी बात सुने तो बुद्धिमान को उसे प्रकट न करना चाहिए। यदि वह यहाँ रहेगा तो उसके द्वारा अनिष्ट ही होगा।”

“तब क्या किया जाय महाराज ?”

“बस उसे शीघ्र ही यहाँ से विदा कर दो।”

“अर्थात् नौकरी से अलग कर दूँ।”

“एवम् !”

ज्योत्सना विचार करने लगी। वह सोचने लगी—“जब स्वामी जी भी शर्मा के सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं तब कुछ बात अवश्य होगी। स्वामी जी से यह आशा तो नहीं की जा सकती कि षडयन्त्र में सम्मिलित हो कर ऐसा कह रहे हैं। महात्माओं को षडयन्त्र से क्या प्रयोजन ! इनका क्या स्वार्थ है जो यह षडयन्त्र में सम्मिलित होंगे।

“परन्तु; एक बात समझ में नहीं आती, शर्मा ने तो स्वयं ही मुझे माता बनाया है। यदि उसके मन में कुछ पाप होता तो वह वैसा आचारण करता, विशेषतः जब कि मैं स्वयं——।” ज्योत्सना आगे कुछ न सोच सकी, उसने उस ओर से ध्यान हटा कर स्वामी जी की ओर देखा, स्वामी जी बड़े ध्यानपूर्वक उसके मुख को ताक रहे थे। ज्योत्सना को अपनी ओर दृष्टिपात करते देख कर उन्होंने पूछा—“क्या सोच रही हो पुत्री?”

“यही सोच रही हूँ महाराज कि यह संसार कितना विचित्र है। कौन आदमी कैसा है इसको समझना बड़ा कठिन है।”

“निस्सन्देह तुम्हारे लिए यह एक कठिन कार्य है, परन्तु मैं तो प्रथम दर्शन में ही समझ गया था कि यह व्यक्ति अच्छा आदमी नहीं है।”

“आप महात्मा हैं। आप समझ सकते हैं; परन्तु सब लोग तो नहीं समझ सकते।”

✓ “जिनका अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है वे ही मनुष्य को समझ सकते हैं। उनका वास्तविक चित्र स्वच्छ अन्तःकरण में वैसा ही दिखाई पड़ता है जैसा कि स्वच्छ दर्पण में किसी का प्रतिबिम्ब।”

“ठीक है महाराज ! परन्तु अन्तःकरण स्वच्छ कैसे हो?”

“अन्तःकरण तपस्या से स्वच्छ होता है।”

“और कोई उपाय नहीं है?”

“कदापि नहीं। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय—अन्य कोई मार्ग नहीं है।”

“तपस्या करना तो बड़ा कठिन है महाराज ! गृहस्थी में रह कर तपस्या नहीं हो सकती।

“कदापि नहीं हो सकती। बिना कर्म संन्यास के तपस्या नहीं होती। कर्म किया जायगा तो उसका फल भी अवश्य होगा और उस फल को भोगने के लिए सुख-दुःख भी होंगे। जहाँ सुख-दुःख हैं वहाँ

संसार है, वहीं बन्धन है । 'तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः' इसी कारण ज्ञानी महात्मा गए कर्म नहीं करते ।

“ठीक है महाराज !”

इसके पश्चात् कुछ देर बैठकर ज्योत्सना ने स्वामीजी से आज्ञा ली । स्वामीजी बोले—“शर्मा को जितना शीघ्र हो सके अलग कर दो, अन्यथा वह बड़ा अनर्थ करेगा । तुम्हारी कीर्ति का नाश करेगा और ‘संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते’ प्रतिष्ठित आदमी के लिए अकीर्ति मरण से भी अधिक है ।”

“मैं प्रयत्न करूँगी महाराज ।”

“प्रयत्न क्या, बस अलग ही कर देना ।”

ज्योत्सना स्वामीजी के पास से सीधी बड़ी रानी के पास पहुँची और सारा वृत्तान्त सुना दिया । सुनकर बड़ी रानी मुस्कराई और ज्योत्सना से बोली—“तुमने क्या निष्कर्ष निकाला ?”

“मेरी कुछ समझ में नहीं आता जीजी ! बड़ी विकट समस्या आ गई ।”

“क्या तेरा चित्त कहता है कि शर्मा ऐसा नीच कार्य कर सकता है ?”

ज्योत्सना कुछ क्षण विचार करके बोली—“मेरा चित्त तो नहीं कहता ।”

“तो बस ! यह सब षडयंत्र है और इस षडयन्त्र में स्वामीजी भी सम्मिलित हैं ।”

ज्योत्सना नेत्र विस्फारित करके बोली—“क्या स्वामीजी भी ?”

“हाँ स्वामीजी भी ।”

“परन्तु स्वामीजी का क्या स्वार्थ है ?”

“स्वामीजी का स्वार्थ न हो, परन्तु उनके कृपाभाजनों का तो स्वार्थ हो सकता है ।”

“वह तो कहते थे कि उन्होंने प्रथम भेंट में ही शर्मा को समझ लिया था।”

“देख ज्योत्सना, स्वामीजी पर कभी भी मेरी श्रद्धा नहीं रही। और इधर जब से मैंने अपने यहाँ की पुस्तकों और ग्रन्थों का अध्ययन किया है तब से तो मैं इसे संन्यासी ही नहीं मानती।”

“वह तो कहते थे कि वह कर्म नहीं करते, तपस्या करते हैं, इस कारण उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया है। उसमें मनुष्य का वास्तविक चित्र उतर आता है।”

“तूने यह नहीं कहा कि तपस्या तो स्वयं ही कर्म है।”

“यह बात सुझे नहीं सूझी।”

“और यदि उनका अन्तःकरण इतना निर्मल है तो उसमें राजा-साहब का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता? यदि पड़ता है तो उन्होंने उनको सुधारने का कुछ प्रयत्न किया? वह राजासाहब के गुरु हैं। गुरु तो महात्मा हो और शिष्य चरित्रहीन! धिक्कार है ऐसे गुरु पर! जो गुरु अपने शिष्य को प्रभावित नहीं कर सकता, वह महात्मा किस ओर से है—यह मेरी समझ में नहीं आता।”

“बात तो जीजी तुम बिल्कुल यथार्थ कहती हो।”

“जिस राजसी सुख में स्वामीजी रहते हैं, वह संन्यासी के योग्य कहाँ लिखा है? इस प्रकार का रहन-सहन तो संन्यासधर्म के सर्वथा विपरीत है। जो संन्यासी किसी का आश्रित होकर रहे, सुस्वाद भोजन खावे, मूल्यवान वस्त्र पहिने, जिसे जरासी सदा लगने से जुकाम हो जाय, गर्मी में जो व्याकुल हो उठे, बिना बर्फ के जिसकी प्यास न बुझे—वह संन्यासी नहीं पाखण्डी है, धूर्त है।” अन्तिम वाक्य बड़ी रानी ने किञ्चित् उत्तेजित होकर कहा।

ज्योत्सना बड़ी रानी की बात सुनकर कुछ देर स्तब्ध बैठी रही, तब परांत बोली—“जीजी, आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। सचमुच ही

यह पाखण्डी आदमी है। सच्चा महात्मा होता तो राजासाहब को कभी वुमार्ग पर न जाने देता।”

“महात्मा और योगी का शिष्य कुमार्गगामी हो, यह बिल्कुल असम्भव बात है।”

“बिल्कुल ठीक बात है।”

“अब हमारा-तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है, जानती हो?”

“तुम बताओ जीजी, मेरी बुद्धि काम नहीं दे रही है।”

“हमारा-तुम्हारा कर्त्तव्य है इन षडयन्त्रकारी धूर्तों से शर्मा की रक्षा करना।”

“हाँ! यह तो आवश्यक है।”

“इसका भी उपाय सोचना होगा।”

“तुम्हीं सोच सकती हो जीजी।”

“हाँ मैं ही सोचूँगी।”

— — —

(२०)

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् राजा साहब वापस आये । दोपहर को जिस समय राजा साहब भोजन करने के पश्चात् शयन कर रहे थे उस समय बड़ी रानी उनके पास पहुँची । ज्योत्सना धहाँ पहिले से ही उपस्थिति थी । बड़ी रानी ज्योत्सना के महल में बहुत ही कम जाया करती थीं । किसी बड़े आवश्यक कार्य से ही कभी चली जाती थीं । राजा साहब बड़ी रानी को आते देख उठ कर बैठ गये और बोले—“कहो रानी, आज इस समय यहाँ कैसे ?” बड़ी रानी शय्या के सामने रखी हुई कौच पर बैठ गईं । ज्योत्सना राजा साहब की शय्या पर ही पायताने की ओर बैठी थी, वह भी शय्या से उतर कर कुर्सी पर बैठ गई ।

बड़ी रानी किञ्चित् मुस्कराकर बोली—“ मैं बाधक तो नहीं हुई ?” राजा साहब नेत्र विस्फारित करके बोले—“ क्या बात करती हो रानी, तुम और बाधक ! तुम और ज्योत्सना तो मेरी आँखों की पुतली हो । क्या कभी एक आँख की पुतली, मनुष्य के किसी कार्य में बाधक हो सकती है । सच बात तो यह है कि अपने समीप तुम दोनों को एकत्र देख कर मुझे बड़ा सुख मिलता है ।”

ज्योत्सना हँस कर बोली—“बातें बनाने में तो इनसे जीतना बड़ा कठिन है जीजी !”

राजा साहब मुस्कराकर बोले—“यह तुम्हारी कैसी शिष्या है रानी ? इसे मेरी किसी बात पर विश्वास ही नहीं होता ।”

बड़ी रानी हँसती हुई बोली—“यह तो पगली है । तुम इसकी बात पर ध्यान न दिया करो ।”

“यह पगली नहीं है, बड़ी सयानी है । तुमने इसे पढ़ा पढ़ा कर पक्की कर दिया है ।”

“आज कल तो इसे शर्मा पढ़ाता है । मुझ से इसने पढ़ना छोड़ दिया है ।”

“रही-सही कसर शर्मा पूरी किये दे रहा है । क्या ठीक है, आज कल तो यह पूरी फिलासफर हो रही है ।”

तुम्हारे सामने मेरी सब फिलासफी व्यर्थ हो जाती है, राजा । तुम्हारी एक बात का भी समुचित उत्तर मुझ से नहीं बन पड़ता ।” ज्योत्सना सहास्य मुख से बोली ।

“चल भूठी, वकीलों की तरह तो प्रश्नोत्तर करती है और उत्तर बन ही नहीं पड़ता । अभी तुम्हारे आने के पहिले, रानी, यह मुझ से जिरह कर रही थी, जैसे वकील लोग जिरह करते हैं । मैंने कहाँ क्या देखा, क्या सुना, कैसे रहा, कहाँ-कहाँ घूमा ये सब बातें खोद खोद कर पूछ रही थी । क्यों पूछ रही थी जानती हो रानी ?”

ज्योत्सना बोल उठी—“देखा जीजी ! अब इसमें भी इन्हें कोई रहस्य दिखाई पड़ता है । कोई कहीं हो कर आता है, विशेषतः ब्याह शादी में तो वहाँ की बात पूछी ही जाती है ।”

“हूँ ! इस तरह पूछी जाती है जैसे कोई वकील कोई खास बात कहलाने के लिए पूछता है । क्यों ?” राजा ने पूछा ।

“अब यह तो राजा वही कहावत है कि चोर की दाढ़ी में तिनका । मैं तो साधारण रूप से वहाँ का वृत्तान्त जानने के लिए पूछ रही थी ।” ज्योत्सना ने चपलतापूर्वक हँसते हुए कहा ।

“अब तू बड़ी चालाक हो गई है, मैं तेरी सब चालाकी समझता हूँ ।” राजा ने प्यार भरी दृष्टि से ज्योत्सना की ओर देखता हुए कहा ।

“जब तुम मेरी चालाकी समझ जाते हो तो मैं अधिक चालाक रही कि तुम ? क्यों जीजी ? तुम बताओ, यह अधिक चालाक हैं या मैं ?”

“मुझे बीच में न डालो, तुम्हीं दोनों आपस में निर्णय कर लो ।” बड़ी रानी ने हँस कर कहा ।

“मैं तेरे मन की बात जान लेता हूँ ।” राजा साहब बोले ।

“यह है महात्मा के शिष्य ज्योत्सना, इनकी दृष्टि दिव्य होगई है ।” बड़ी रानी ने कहा ।

“कौन महात्मा, स्वामीजी ? वह महात्मा हैं ? दुनिया भर का धूर्त, पाखण्डी ।”

राजासाहब का सहास्य मुख गम्भीर हो गया और वह नेत्र विस्फारित करके बोले—“यह क्या कहती हो ज्योत्सना !”

“मैं ठीक कहती हूँ राजा, मेरी बात झूठ मानो तो जीजी से पूछ लो ।”

राजासाहब ने बड़ी रानी की ओर देखा । बड़ी रानी बोली—“इतना तो मैं भी कहूँगी राजा, कि वह संन्यासी तथा महात्मा नहीं है और चाहे जो कुछ हों ।”

“क्यों ? तुम्हारा ऐसा विचार क्यों हुआ ?”

क्या उनका रहन-सहन संन्यासाश्रम के अनुकूल है ?”

“वह एक राजा के गुरु हैं रानी और राजा के गुरु को जिस प्रकार रहना चाहिए, उसी प्रकार वह रहते हैं ।”

“संन्यासी चाहे राजा का गुरु अथवा भिखारी का, वह संन्यासाश्रम के प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकता।”

“प्रतिकूल आचरण से तुम्हारा क्या अभिप्राय है रानी?”

“संन्यासी को किसी गृहस्थ का आश्रित होकर नहीं रहना चाहिए, एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं टिकना चाहिए, सुस्वाद भोजन नहीं खाना चाहिए, मूल्यवान वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। उसे निष्कर्म होना चाहिए। अब आप सोचिये कि क्या ये सब बातें आपके गुरु महाराज पर घटित होती हैं। गीतामें भगवान् कृष्णने कहा है—‘संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्नुम्’ संन्यास बड़ा कठिन है। किस लिए कठिन है कि उसमें इन्द्रियोंका निग्रह करना पड़ता है, शरीरको कष्ट दिया जाता है। हमारे स्वामी जी कष्ट बिल्कुल नहीं सह सकते। न शीत सह सकते हैं, न गर्मी, रुखा—सूखा भोजन नहीं खा सकते, मोटे वस्त्र नहीं पहन सकते। केवल सिर मुड़ा लेने, शिक्षा सूत्र त्याग देने तथा कपड़े रंगा लेने से ही तो संन्यास नहीं हो जाता।

“वह विद्वान् हैं, शास्त्र के ज्ञाता हैं। यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा रानी।”

“विद्वत्ता तथा शास्त्रज्ञता दूसरी बात है राजा, संन्यास कुछ और है। विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ भी पाखण्डी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त केवल ग्रन्थों का ज्ञान ही विद्वत्ता नहीं है। कहा भी है कि—‘शास्त्रा-ग्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुष्पः स विद्वान्।’ शास्त्र पढ़े हुए भी मूर्ख होते हैं, क्रियावान् पुष्प ही विद्वान् है।”

“उनके प्रवचनों से तो उनके विद्वान् होने का पता लगता है।”

“मैं फिर कहती हूँ कि मैं इसे विद्वत्ता नहीं मानती। गीता, उपनिषद्, भागवत, महाभारत तथा नीति इत्यादि के श्लोक कण्ठ कर लेने से ही कोई विद्वान् नहीं हो जाता। स्वामी जी जैसा प्रवचन मैं भी कर सकती हूँ। यह बहुत साधारण बात है, केवल अभ्यास की आवश्य-

कता है। रामायण, भागवत, महाभारत की कथा बाँचने वाले पण्डितों में क्या दुराचारी तथा धूर्त नहीं होते ? ”

“होते क्यों नहीं । ”

“तो बस फिर ! केवल प्रवचन करने से क्या होता है । आचरण मुख्य बात है । आचरण हीन विद्वान् वैसा ही है जैसे ग्रन्थों का भार लादे हुए गधा । अनेक विद्वान् जो दूसरों को काम, क्रोध, लोभ त्यागने तथा ईश्वर के चरणों में चित्त लगाने का उपदेश देते हैं स्वयं महा कामी क्रोधी इत्यादि होते हैं । ऐसों को मैं विद्वान् मानने के लिये कभी तैयार नहीं हूँ । ”

राजा साहब मौन होकर विचार करने लगे । उनके अन्तःकरण ने रानी के कथन की सत्यता को स्वीकार किया । साथ ही उन्हें रानी के ज्ञान पर विस्मय, हर्ष तथा गर्व हुआ । वह बोले—“यदि ऐसी बात थी रानी तो तुम ने उस समय मुझे मना क्यों न किया जिस समय मैंने इन्हें गुरु बनाया था ? ”

“उस समय मुझे स्वयं इन बातों का ज्ञान नहीं था, मैं भी रंगे हुए कपड़ों तथा मौखिक विद्वत्ता को ही सब कुछ समझती थी । वरन्तु अब जब कि मैंने स्वयं ग्रन्थों का अवलोकन किया तब मुझे ये बातें ज्ञात हुई हैं । ”

“बड़ा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तुम ने रानी ! ” रानी को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखते हुए राजा साहब ने कहा ।

ज्योत्सना बोली—“जीजी रात दिन पढ़ा ही करती हूँ । ”

“हाँ मैं भी इनकी ओर जाता हूँ तो इन्हे पढ़ते हुए ही पाता हूँ । ” राजा साहब ने कहा ।

बड़ी रानी बोली—“ग्रन्थ पढ़ने में मुझे बड़ा आनन्द तथा सन्तोष प्राप्त होता है ।

“अच्छा तो स्वामी जी के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है रानी ? ”

ज्योत्सना बोल उठी—“इन्हें यहाँ से विदा करो।”

“परन्तु मैं इन्हें गुरु बना चुका हूँ ज्योत्सना, इसका तो विचार करो।”

“वह भूल थी, अब उसका सुधार होना चाहिए।”

बड़ी रानी बोली—“जिसे एक बार गुरु बना लिया उसका अपमान नहीं करना चाहिए, वह चाहे जैसा हो। केवल इतना होना चाहिए कि इन को यहाँ से हटा कर, कहीं अन्यत्र रखना चाहिए। इन से कहा जाय कि यह किसी तीर्थ स्थान में जाकर रहें। वहाँ इनके रहने सहने खाने-पीने का प्रबन्ध कर देना चाहिए।

“परन्तु वह जाने को राजी होंगे?”

“ढङ्ग से कहा जायगा तो अस्वीकार नहीं कर सकेंगे।”

“वह ढङ्ग क्या है रानी?”

“उनसे कहा जाय कि अमुक स्थान के निवासी आपके दर्शन करने तथा आपके उपदेश सुनने के लिए बड़े लालायित हैं अतः कुछ दिन वहाँ जाकर रहिये। इसे वह अस्वीकार नहीं कर सकेंगे। जब वहाँ चले जाँय तो कुछ दिन पश्चात् उनसे कह दिया जाय कि अब आप यहीं रहें।”

ज्योत्सना प्रसन्न होकर बोली—“यह युक्ति बड़ी अच्छी है।”

राजासाहब ने भी कहा—“हाँ यह युक्ति ठीक है। इस प्रकार हटानेसे उन्हें बुरा न लगेगा।” परन्तु पहिले स्थान सोच लेना चाहिए।

“अयोध्या में अपना जो भवन है, वहाँ भेजिये।” बड़ी रानी ने कहा।

“ठीक! वहीं जाकर रहना चाहिए स्वामी जी को।” राजा साहब बोले।

“वहाँ दो नौकर रहते ही हैं, वे स्वामीजी की सेवा किया करेंगे।”

“यह ठीक है। उचित परामर्श दिया तुमने रानी।” राजा साहब प्रसन्न हो कर बोले।

इसके पश्चात् अन्य बातें होने लगीं। कुछ देर बैठ कर बड़ी रानी अपने महल में चली गईं। उनके जाने के पश्चात् राजा साहब ज्योत्स्ना से बोले—“बड़ी बुद्धिमान है रानी।”

“जीजी बड़ी समझदार हैं।”

राजा साहब सोचने लगे—“ऐसी पत्नी की मैंने कद न की, अफसोस ! क्या कमी है इसमें—सुन्दरी है, सुशिक्षिता है, राजकुल की है, सहनशील है, मुझे प्यार करती है, बुद्धिमान है, चरित्रवान है, इससे अधिक एक कुलाङ्गना में और क्या होना चाहिए। जिनके पास शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त और कोई भी गुण नहीं वरन् वे अवगुणों की खान हैं उनकी ओर मेरा मन पतंग की भाँति दौड़ता है और इस स्त्रीरत्न का मूल्य नहीं समझता, इसका आदर नहीं करता—यह कितनी लज्जा की बात है।”

यह सोचते सोचते राजा साहब की आँख लग गई।

दूसरे ही दिन राजा साहब स्वामी जी से मिले। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके राजा साहब बोले—“स्वामी जी, मेरी इच्छा है कि अब आप कुछ दिन अयोध्या जाकर रहे और अपने प्रवचन से वहाँ के लोगों को लाभ पहुँचावें। हमारा वहाँ एक भवन है। वह बिल्कुल खाली रहता है।”

स्वामी जी बोल उठे—“मैं वहाँ रह आया हूँ, सरयू के तट पर ही है। बड़ा अच्छा भवन है।”

“हाँ ! मुझे स्मरण नहीं था। एक बार आप वहाँ कुछ दिन रह आये हैं। वहीं आप जाकर रहें। वहाँ दो नौकर रहते हैं वे आपकी सेवा करते रहेंगे। आपकी आवश्यकता तथा आराम का वहाँ पूरा प्रबन्ध रहेगा।”

स्वामीजी प्रसन्नता का भाव दिखा कर बोले—“वह स्थान रमणीक है और साधु-संन्यासियों के उपयुक्त भी है। मेरी स्वयं यह इच्छा हो रही

थी कि कुछ दिन कहीं घूम—फिर आऊँ। यहाँ एक ही स्थान पर रहते बड़ा समय हो गया। संन्यासी को एक स्थान पर इतने दिन नहीं रहना चाहिए, परन्तु आपके प्रेम तथा भक्ति से विवश था।”

“आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है और मुझे विश्वास है कि सदा ऐसी ही रहेगी। तो आपके प्रस्थान का प्रबन्ध कर दिया जाय?”

“हाँ! हाँ! कल कौन दिन है, शनिवार, परसों जा सकता हूँ।”

“अच्छी बात है। कार द्वारा चले जाइयेगा। उसी से आराम मिलेगा। वैसे यदि रेल से जाना चाहें तो रेल से जा सकते हैं।”

“कार से ही ठीक रहेगा।”

यह निश्चय करके राजा साहब चले आये।

इधर संध्या समय चन्द्रशेखर तथा सेक्रेटरी साहब स्वामी जी से मिले तो उनसे स्वामी जी ने अपने जाने का हाल बताया। चन्द्रशेखर सिंह कुछ घबराकर बोला—“क्या बात है। जीजा जी ने ऐसा क्यों किया?”

स्वामीजी बोले—“अभी राजासाहब उधर गये थे। वहाँ कुछ हमारा चर्चा चला होगा तो कुछ लोगों ने यह इच्छा प्रकट की होगी कि स्वामीजी कुछ दिन अयोध्या आकर रहें। क्यों सेक्रेटरी साहब, आप तो राजासाहब के साथ थे, ऐसा कोई चर्चा चला था?”

“मेरे सामने तो ऐसा कोई जिक्र नहीं आया।”

“परन्तु आप हर समय तो उनके साथ रहते न होंगे?”

“हाँ, यह बात भी ठीक है। मैं एक अलग कमरे में ठहराया गया था। यद्यपि वह राजासाहब के कमरे के निकट ही था; परन्तु था अलग ही और जब राजासाहब बुलाते थे तभी मैं उनके पास जाता था। वहाँ तो राजासाहब का सम्पर्क ताल्लुकेदारों तथा राजाओं से ही अधिक रहता था—हम प्राइवेट सेक्रेटरी लोग अलग मौज करते थे।”

“परन्तु आपके चले जाने से हमारा बल क्षीण हो जायगा।” चन्द्रशेखर ने कुछ हतोत्साह होते हुए कहा।

“कुछ नहीं ! मैंने छोटी रानी को खूब भर दिया है । बस मेरा कार्य तो एक प्रकार से समाप्त हो चुका । मैं प्रकटरूपेण इससे अधिक और कुछ कर भी नहीं सकता । अब तुम लोगों का काम है । और वैसे यदि परामर्श की अथवा अन्य किसी प्रकार से मेरी सहायता की आवश्यकता होगी तो मैं वहीं बैठे दे सकूँगा । यहाँ आने की आवश्यकता होगी तो यहाँ आ जाऊँगा । मेरे लिए न कोई रोक-टोक है न बाधा है, जब जी चाहेगा चला आऊँगा ।” स्वामीजी ने कहा ।

“हाँ, यह तो हो सकेगा ।” सेक्रेटरी साहब बोले ।

स्वामीजी बोले—“तुम घबराओ नहीं चन्द्रशेखर, मैंने तुम्हारे लिए बहुत कुछ सोच रखा है । तुम्हारा ध्यान भी वहाँ तक नहीं पहुँच रहा होगा ।”

“मैं तो आपका दास हूँ महाराज, जैसा आप आज्ञा करते चले जाँयेंगे करता जाऊँगा ।”

“मेरे कहने पर चलते रहोगे तो एक दिन इस राज्य का शासनसूत्र तुम्हारे ही हाथों में होगा । और आप सेक्रेटरी साहब इस राज्य के प्रमुख अफसर होंगे ।”

चन्द्रशेखर स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा और बोला—“मैं सदैव आप की ही आज्ञा का पालन करूँगा ।”

“और मैं, स्वामीजी यदि कहें तो अपने प्राण दे सकता हूँ । यदि पीछे हट जाऊँ तो क्षत्री के वीर्य से नहीं ।” सेक्रेटरी साहब कुछ उत्तेजित होकर बोले ।

“उस समय मैं बड़ी रानी और शर्मा को देखूँगा । ये दोनों मेरी अवहेलना करते हैं ।”

“और त्रिवेदीजी ?” चन्द्रशेखर ने पूछा ।

“और मुझे किसी का भय नहीं है । त्रिवेदीजी तो अब स्वयं ही

रिटायर होनेवाले हैं और मेरे विरुद्ध जाने का उनमें साहस भी नहीं है। मेरी एक डाँट में उनके होश ठीक हो जाँयगे। शर्माजी के लिए प्रबन्ध हो ही रहा है। इसी में वह ठिकाने लग जाँयगे—और कदाचित्त वह दौंव खाली गया तो आगे फिर कुछ सोचा जायगा। रह जाँयगी बड़ी रानी सो उनको ठीक करने का उपाय भी मेरे पास है, परन्तु वह अन्तिम उपाय है।”

“क्या उपाय है महाराज ?”

“बस इस समय इतना ही। हाँ—मुझे यहाँ के समाचार भेजवाते रहना।”

“वह तो भेजे ही जाँयगे। मैं स्वयं भी आपकी सेवा में उपस्थित होता रहूँगा। मुझे बहुधा लखनऊ जाना पड़ता है, वहाँ से आपके पास पहुँच जाया करूँगा।” चन्द्रशेखर ने कहा।

“ठीक है !”

इसी प्रकार तीनों में बड़ी देर तक परामर्श होता रहा।

— — —

स्वामी जी अयोध्या चले गये । शर्मा जी के विषय जो षड्यंत्र चल रहा था, शर्मा जी को उसका कुछ पता न था । एक दिन संध्या समय वह बच्चों को पढ़ा कर घर लौट रहे थे । जिस मार्ग से वह घर जाया करते थे उसी मार्गकूल पर दलजीत सिंह (प्राइवेट सेक्रेटरी) का भवन था । कभी कभी शर्मा जी उस मार्ग पर आते जाते, यदि दलजीत सिंह बैठे दिखाई पड़ते थे तो उनके पास बैठ जाया करते थे । आज भी दलजीत सिंह अपने कमरे में बैठे थे, उनके पास तीन चार अन्य लोग भी थे । शर्मा जी को देख कर दलजीत ने मुस्कराते हुए कहा—“ आइये शर्मा जी, दो मिनट बैठ लीजिए । ”

शर्मा जी दलजीत के कमरे में पहुँच गये । और एक खाली कुर्सी पर बैठ कर बोले—“कहिये ! सब कुशल ? ”

“हाँ सब आप की दया है ।” दलजीत ने कहा ।

“इन लोगों से आपका परिचय है ? ”

“आप से तो परिचय है । आप जिलेदार हैं । ”

जिलेदार साहब हाथ जोड़ कर दौत दिखाते हुए बोले—
“जी हाँ ! ” “आपका नाम भी.....याद नहीं आता । ” शर्मा जी स्मरण करते हुए बोले ।

“मेरा नाम शिवसहाय । ”

“हाँ शिवसहाय ! आप तो शायद कायस्थ हैं ? ”

“जी ! जी ! ” शिवसहाय दौँत निकाल कर बोले ।

शिवसहाय एक प्रौढ़ व्यक्ति था । साँवलारंग, छोटी छोटी मूंछें, खड़े कान, गोल चमकती हुई आँखें, मुख मण्डल पर कर्कशता ।

“और आप महाफिज दफ्तर हैं । ” सेक्रेटरी साहब ने तीसरे सज्जन की ओर सङ्केत कर के कहा । यह महाशय भी प्रौढ़ावस्था की सीमा पार कर रहे थे । ”

“ आप कौन ? ”

महाफिज दफ्तर साहब बोल उठे—“मैं भी कायस्थ हूँ हुजूर, गिरिधारी लाल मेरा नाम है । ”

“हाँ—दफ्तर का काम कायस्थ लोग ही अच्छा जानते हैं । ” शर्मा जी ने मुस्कराकर कहा ।

“आप हाथीखाने के मुंशी हैं । सज्जाद हुसैन नाम है । ”

“कितने हाथी हैं इस वक्त ? ” शर्मा जी ने मुस्कराते हुए पूछा ।

“इस वक्त तो हुजूर, कुल आठ हाथी हैं । राजा साहब को हाथियों का शौक नहीं है । जितने मौजूद हैं वे पड़े हैं । ” सज्जाद हुसैन ने कहा ।

“राजा साहब को तो सिर्फ मोटरकारों का शौक है । ” शिवसहाय ने कहा ।

“और रानियों को काहे का शौक है ? ” गिरिधारी लाल ने पूछा ।

“रानियों को पढ़ने का शौक है । ” प्राइवेट सेक्रेटरीने मुस्कराकर कहा और शिवसहाय की ओर देखा ।

दलजीत की मुस्कराहट तथा दृष्टि में कुछ ऐसा भाव था कि शर्मा जी का सहाय्य प्रसन्न मुख एक दम गम्भीरता में परिवर्तित होने के

कारण कुछ विकृत हो गया। दलजीत के वाक्य में जो एक व्यङ्ग्य की ध्वनि थी उससे उनके हृदय पर आघात लगा।

शर्मा जी का चेहरा बदलते देख शिवसहाय तथा दलजीत हँसने लगे, गिरिधारी लाल तथा सज्जाद भी मुस्कराने लगे।

अब शर्मा जी के मुख पर भ्रम प्रस्फुटित हो आई।

✓ निर्दोष व्यक्ति जब यह देखता है कि लोग उसे दोषी समझ कर उस पर कटाक्ष करते हैं तो उस के चित्त पर आघात लगता है और उस आघात के कारण उसके मुख का भाव विकृत हो जाता है। इस मुख भाव परिवर्तन को कटाक्ष करने वाले 'भ्रम जाना' समझ कर उसे सत्य ही दोषी समझने लगते हैं। इस प्रकार बहुधा निर्दोष व्यक्ति भी दोषी समझ लिया जाता है।

यही बात यहाँ भी हुई। शर्माजी को 'शर्मा गया' समझकर दलजीत तथा शिवसहाय हँसने लगे। शर्मा जी निर्लज्ज तो थे नहीं, जो उनका भाव समझ कर भी चेहरे पर शिकन न लाते; क्योंकि यह कौशल केवल निर्लज्ज में ही होता है।

दलजीत सिंह ने अपने व्यङ्ग्य का प्रभाव मिटाने के लिए बात का प्रसङ्ग बदलते हुए कहा—“शर्मा जी, एक बार आप जिलेदार साहब के साथ देहात घूमें—बड़ा आनन्द मिलेगा।”

“हाँ इच्छा तो मेरी भी है, परन्तु यहाँ से छुट्टी मिले तब जा सकता हूँ।”

“यदि राजा साहब से आप अपनी इच्छा प्रकट करें तो बह दस-पन्द्रह दिन की छुट्टी दे देंगे ”

“इस बार जब समय आवे तब आप मुझे सूचना दीजियेगा।” शर्माजी ने शिवसहाय से कहा।

“बहुत अच्छा। तहसील के समय पर चलियेगा।”

“जब आप कहेंगे, चला चलूंगा।”

दलजीत सिंह ने पान-इलायची से शर्मा जी का सम्मान किया । थोड़ी देर पश्चात् शर्मा जी बिदा हुए ।

उनके जाते ही दलजीत ने कहा—“देखा आपने, कैसी बुरी तरह भेप गये शर्मा जी ? अब तो आपको यक़ीन आया ?”

“वाक़ई, है मामला कुछ गड़बड़ ! साफ़ होता तो इतना केपने की क्या जरूरत थी ।” शिवसहाय ने कहा ।

“साफ़ कहीं हो सकता है । एक नवजवान आदमी और एक नवजवान औरत—तबियतदार औरत—तनहाई में बैठें और मामला साफ़ रहे—ऐसा भला मुमकिन हो सकता है ?” दलजीत सिंह बोले ।

“हर्गिज़ नहीं ! बड़े बड़े साधू-सन्त तो ऐसे मौक़े पर फ़िसल ही गये, हमारी-आपकी क्या गिनती है ।” शिवसहाय ने कहा ।

“सच है !” गिरिधारी लाल ने समर्थन किया । इसके पश्चात् वह बोले—“मगर हमने तो सुना है कि छोटी रानी साहब ने इन्हें अपना बेटा बनाया है और यह उन्हें माँ कहते हैं ।”

“आज कल यही हो रहा है । भाई—बहिन, माँ-बेटे के रिश्ते की आड़ में ही सब कुछ हो जाता है ।”

“असतग़फ़रुल्लाह ! तोबा ! तोबा ! ऐसों को तो संगसार (पत्थर मार कर प्राण दण्ड देना) कर देना चाहिए । हमारी शरअ (धार्मिक विधान) में तो ऐसा ही लिखा है ।” सज्जाद ने कहा ।

“अमाँ यह बड़ों की बातें हैं, दम मारने की सुजायश नहीं है । ‘टुक टुक दीदम दम न कशीदम’ वाला मज़मून है ।”

“अब तो, सुना है, कि छोटी रानी शर्मा के हुक्म पर चलती हैं ।”

“वह तो चलेगी ही । खूब कहा है शेख़ साहब ने भी, कोई बात छोड़ी नहीं है । फ़र्माते हैं:—ख़्वाजा बाबन्दये परी हज़सार, चूँ दर आयद बवाज़ीओ ख़न्द: । चे अज़ब को चो ख़्वाजा हुक्म कुन्द, वी क़शद बारे नाज़ चूँ बन्द: ।

“क्या मतलब हुआ इसका ?” गिरिधारी लाल ने पूछा।

“इसका मतलब यह हुआ कि जब मालिक, ख्वाजा मालिक को कहते हैं—परीछसार बन्दे से, परीछसार यानी खूबसूरत—जब अपने खूबसूरत बन्दे यानी नौकर से हँसी-मजाक करने लगता है—यानी बे तकुल्लफ हो जाता है तो उस हालत में यह कोई ताज्जुब का बात न समझना चाहिए कि नौकर तो मालिक की तरह हुक्म दे और मालिक उसे नौकर की तरह बजा लावे।” सजाद हुसैन ने समझाया।

“खूब कहा ! वाकई इस वक्क शर्मा और छोटी रानी की ऐसी ही हालत सुनने में आती है।” गिरिधारी लाल ने सिर हिलाते हुए कहा।

इधर तो ये बातें हो रही थीं उधर शर्माजी सोचते जा रहे थे—
“क्या संसार है, चारों ओर भ्रम का जाल बिछा हुआ है। मनुष्य जैसे वातावरण, जैसी परिस्थिति में विचरण करता है उसी के अनुसार उसके विचार बनते हैं। दूषित वातावरण में विचरण करनेवालों को प्रत्येक बात में दोष ही दिखाई पड़ता है। दूषित, अपवित्र वातावरण में रहनेवाले कभी यह सोच ही नहीं सकते कि तृण स्त्री-पुरुष एकान्त में बैठकर भी पवित्र भाव रख सकते हैं। इन दूषित मनोवृत्ति के लोगों को चारों ओर पाप तथा अपवित्रता ही दिखाई पड़ती है। कितने दया के पात्र हैं ये लोग जो अपने भ्रम की ही वास्तविकता माने बैठे हैं।”

घर पहुँचकर शर्माजी नित्यकर्म से निवृत्त होकर मिथीलाल के पास पहुँचे। मिथीलाल उन्हें देखकर मुस्कराते हुए बोले—“धूमने चलियेगा ?”

शर्माजी कुछ अन्यमनस्कता से बोले—“चलिये !”

मिथीलाल झटपट तैयार होकर चल दिये। रास्ते में शर्माजी को विचारमग्न देखकर मिथीलाल ने पूछा—“आज क्या बात है ? आप किसी विचार में हैं।”

“विचार में क्या हूँ लालाजी, यह संसार बड़ा मूर्ख है।”

“क्या बात हुई ?” लाला ने गम्भीर होकर पूछा।

“आज अभी इधर आते हुए दलजीत सिंह ने बुला लिया। मैं चला गया। जब वह बुलाते हैं तो जाना ही पड़ता है। वहाँ जिलेदार साहब, महाफिज दफ्तर तथा हाथीखाने के मुंशी बैठे हुए थे। बात-बात में राजासाहब के शौक का प्रसङ्ग आ गया। गिरधारी लाल पूछ बैठे कि ‘रानियों को काहे का शौक है।’ दलजीत सिंह बोले—“रानियों को पढ़ने का शौक है।” यह कहकर वे लोग इस प्रकार हँसे कि मानो वे मेरे तथा छोटी रानी के सम्बन्ध में अपवित्र भावना का सन्देह करते हैं। यह देख-सुनकर मुझे थोड़ा क्लेश हुआ कि इन लोगों की कैसी दूषित मनो-वृत्ति हो गई है।”

“सो तो होना ही चाहिए। आदमी रात-दिन जो बात देखे-सुनेगा उसी के अनुसार उसकी मनोवृत्ति बनेगी। यहाँ यही दशा है। राजासाहब को तो आप जानते ही हैं—अन्य लोग भी कोई किसीसे फँसा है, किसी का किसी से सम्बन्ध है। यदि इस वायुमण्डल में हमारे आपके जैसे दो-चार लोग हैं भी तो लोग हमें भी वैसा ही समझते हैं। इनमें इन बेचारों का दोष नहीं, इनके संस्कार का दोष है। इनके संस्कार ही वैसे पड़े हुए हैं। इन लोगों के इतने गन्दे विचार हैं कि स्त्री-पुरुष तो क्या यदि स्त्री-स्त्री अथवा पुरुष-पुरुष में घनिष्ठता देख लें तो उसमें भी इन्हें गंदगी ही दिखाई पड़े।”

“राजासाहब तो अब रास्ते पर आ रहे हैं।”

“आजाँय तो अच्छा ही है। परन्तु राजासाहब चाहे रास्ते पर आ भी जाँय, ये लोग नहीं आ सकते।”

“यह कलङ्क बुरा लगा।” शर्माजी उदासभाव से बोले।

“बकने दो जी ! प्रकट रूप से तो ये लोग कुछ कह नहीं सकते—यों खिचड़ी पकाया करें तो पकाने दो।”

“कहीं राजासाहब को न बहका दें। यद्यपि राजासाहब मुझ पर पूर्ण विश्वास करते हैं। क्योंकि मेरा तो यह सिद्धांत है कि—राजपत्नी गुरो:

पत्नी मित्रपत्नी तथैव च । पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः ।
 राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, सास और स्वयं अपनी
 माता—ये पाँच प्रकार की माता शास्त्र ने बताई हैं ।

“आप भी कहाँ की बात करते हैं । इन बातों की इन लोगों को
 हवा भी नहीं लगी । कोई इनके सामने यह बात कहे तो उसे बेवकूफ या
 ढोंगी समझें । आप अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहिये—इन लोगों की भावना
 की चिन्ता न कीजिए । ”

“और वह तो मैं करूँगा ही । परन्तु ऐसी बातें सुनकर खेद होता
 है । अच्छा एक सलाह तो बताइये, छोटी रानी से इसका चर्चा करूँ या
 न करूँ ? ”

मिश्रीलाल कुछ क्षण सोचकर बोले—“कर दीजिए तो कोई हर्ज
 भी नहीं है । ”

“हाँ यही मैं भी सोचता हूँ । ”

“किस समय जाते हो पढ़ाने ? ”

“इधर तो रात में ८ से ९ तक का समय हो गया है । ”

“तो आठ बजे जाओगे—यहाँ से लौटकर ! ”

पौने आठ बजे लगभग ये दोनों लौटे । मिश्रीलाल घर चले
 गये, शर्मा जी सीधे छोटी रानी के पास पहुँचे ।

शर्मा जी जाकर नियत स्थान पर बैठ गये । उस समय ज्योत्सना
 वहाँ उपस्थित नहीं थी । कमरे के बीच में हरे रज्ज की पालिशदार गोल
 मेज लगी हुई—मेज का व्यास ५ फीट से कुछ अधिक था । उसके
 निकट आमने—सामने चार कुर्सियाँ लगी हुई थीं । इनका भी वर्ण हरा था
 तथा बैठने के स्थान और पीठ पर हरी मखमल थी । कमरे का वर्ण भी
 हरा था तथा कारपेट, पर्दे इत्यादि भी सब हरे थे । छत का वर्ण हल्का
 नीला—उस में से दो हरे तथा दो श्वेत बड़े बड़े बिजली के गोले लटक रहे
 थे । बीच में छतपंखा चल रहा था ।

मेज पर दो आमने सामने की कुर्सियों के आगे एक एक अंग्रेजी बनावट के मूल्यवान कलमदान जिसमें एक और फाउन्टेन पेन तथा दूसरी और पेन्सिल लगी थी। लाल तथा नीली पेन्सिल और पिंने भी रखी थीं। उस के निकट सादे कागजों का एक एक पेड। उसके पश्चात् बिल्कुल आगे रजतराजित धातु के चौखटे में ग्लाटिङ्ग पेपर। ग्लाटिङ्ग पर एक ही अंग्रेजी पुस्तक की एक एक प्रति रखी थी। दोनों श्वेत गोलों के प्रकाश से कमरा पूर्ण था।

शर्मा जी जाकर एक 'सेट' के सम्मुख बैठ गये। उन्होंने पुस्तक खोली और देखने लगे। उन्हें बैठे पाँच मिनट हुए होंगे कि ज्योत्सना आ गई। ज्योत्सना को देखते ही शर्मा जी उठ कर खड़े हो गये। ज्योत्सना एक कपासी रङ्ग की सादी रेशमी साड़ी तथा उसी रङ्ग का ग्लाउज़ पहिने थी। साड़ी से बाँहें कोहनी तक ढकी हुई थीं।

शर्मा जी ने ज्योत्सना को प्रणाम किया। ज्योत्सना ने सरलता पूर्वक किञ्चित् मुस्कराते हुए कहा—“भगवान पुत्र दे।” शर्मा जी हँस कर बोले—“आप तो खर्च बढ़ाने वाला आशीर्वाद देती हैं रानी जी।”

“खर्च बढ़ेगा तो उनके भाग्य से आय भी तो बढ़ेगी।”

दोनों हँसते हुए कुर्सियों पर बैठ गये। रानी के हीरों से इन्द्रधनुष के रङ्गों की किरणें निकल कर शर्मा जी के मुख तथा वस्त्रस्थल पर खेल रही थीं।

ज्योत्सना बोली—“आज बहू आई थी—अच्छी उन्नति कर रही है। लिख-पढ़ लेने भी लगी है और बोल चाल तथा शिष्टाचार भी यथेष्ट आ गये हैं। आप बहुत अच्छे शिक्षक हैं।”

अपनी प्रशंसा सुनकर शर्मा जी कुछ लज्जित से हो जाते थे। उन्हें यह सन्देह रहता था कि उनका प्रशंसक खुशानन्द भ्रम अथवा उत्साह-बढ़ाने के निमित्त प्रशंसा कर रहा है। अतः वह ऐसे प्रसंग को शीघ्र दालने के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

शर्माजी बोले—“आज जिलेदार साहब मिले थे। सेक्रेटरी साहब के यहाँ बैठे थे। उन्होंने मुझे देहात घूमने का निमन्त्रण दिया है।”

“तो हो आइयेगा, क्या हर्ज है।”

“हाँ देखा जायगा।”

शर्माजी ने यह प्रसंग इसलिये उठाया था कि वह ज्योत्सना से सेक्रेटरी साहब के यहाँ का वृत्तान्त कह दें; परन्तु अकस्मात् उनकी मति बदल गई और उन्होंने वह कार्य स्थगित कर दिया।

शर्माजी ने पढ़ाना आरंभ किया। ज्योत्सना पढ़ती थी, शर्माजी अपनी पुस्तक देखते थे। बीच-बीच में कभी शर्माजी कोई प्रश्न पूछ लेते थे और कभी ज्योत्सना शङ्का-समाधान कर लेती थी। बीस मिनट के पश्चात् यह कार्य स्थगित कर दिया गया। इसके पश्चात् एक हिन्दी की पुस्तक के कुछ पृष्ठ पढ़े गये, फिर एक काव्यसंग्रह में से दो तीन कविताएँ पढ़ी गईं। अब नौ बजने में केवल १० मिनट शेष रहे।

इसी समय द्वार पर से राजकुमार ने भौंक कर पूछा—“अम्मा जी, मैं आऊँ?”

“हाँ आजाओ बेटा।” शर्मा जी बोल उठे।

राजकुमार दौड़ता हुआ आया और मेज पकड़ कर खड़ा हो गया। सहास्य मुख से कभी ज्योत्सना तथा कभी शर्मा जी को देखता रहा।

“आज घूमने नहीं गये?” शर्मा जी ने पूछा।

“गये थे। आज शर्मा जी हम बड़ी दूर तक गये थे।”

“भला कहाँ?” शर्मा जी ने मुस्कराकर पूछा।

“कोई दस मील। पिता जी मोटर चला रहे थे, बस वह चलते ही रहे।”

“दस मील तो अधिक नहीं हुआ—मोटर के लिए।”

“हम जब अकेले जाते हैं तो लछमन (डाइवर) इतनी दूर नहीं ले जाता।

“हाँ, तब तो तुम अवश्य दूर गये थे। परन्तु देखो, ‘जब’ के साथ ‘तब’ आता है ‘तो’ नहीं आता। ‘तो’ ‘यदि’ के साथ आता है। तुमने कहा—‘जब हम अकेले जाते हैं तो लछमन—!’ यहाँ ‘तब’ होना चाहिये, क्योंकि पहले ‘जब’ आ चुका है। ‘यदि’ अथवा ‘जो’ के साथ ‘तो’ कह सकते हो—‘यदि हम अकेले जाते हैं तो लछमन’—ऐसा। समझ गये—अब याद रखना।”

“अब नहीं भूलूँगा शर्मा जी।” राजकुमार ने अपने दोनों कान पकड़ कर कहा। ज्योत्सना हँस पड़ी।

जितनी देर शर्मा जी कुमार से बातें करते रहे उतनी देर ज्योत्सना दोनों की ओर दृष्टि लगाये सोचती रही—“कुमार भी एक दिन शर्मा जी जितना ही बड़ा होगा; परन्तु क्या यह भी इतना ही योग्य तथा सरल स्वभाव होगा?” ऐसा सोचते सोचते उसे कुछ क्षणके लिए शर्मा जी में अपने पुत्र के भावी रूप का आभास सा प्राप्त हुआ। शुद्ध दृष्टि दोनों की थी; परन्तु दोनों की दृष्टि में अन्तर था। शर्मा जी केवल ज्ञानदृष्टि से ज्योत्सना को माता समझते थे। मस्तिष्क ने जो चित्र खींचा, हृदय को वही स्वीकार करना पड़ा। परन्तु ज्योत्सना का भाव ठीक इसके विपरीत था। उसका हृदय ही शर्मा जी को पुत्र के समान मानने लगा था। कुमार के प्रति उसके हृदय में जो मातृत्व था उसका प्रतिबिम्ब उसे शर्मा जी में भलीभाँति दिखाई पड़ता था। अतः शर्मा जी को पुत्ररूप देखने में उसके हृदय को सन्तोष तथा सुख मिलता था। यहाँ मस्तिष्क को हृदय का अनुगामी होना पड़ा।

ज्योत्सना हँसते हुए बोली—“अपने हाथ से अपने काम उमेठ लेने से क्या बात याद हो जाती है?”

“हाँ अम्माँ जी! याद हो जाती है। मैं जब अपने हाथ से अपने कान उमेठ लेता हूँ तो फिर वह बात कभी नहीं भूलता।”

ज्योत्सना जोर से हँसकर बोली—“देख अभी अभी भूल गया । फिर ‘जब’ के साथ ‘तो’ कहा ।”

“कहाँ ? ऐं — ! हाँ ठीक ! कह गया ।” कुमार कुछ लज्जित होकर बोला । शर्मा जी भी हँसने लगे । इसी समय घड़ी ने नौ बजाये । शर्मा जी उठ खड़े हुए, ज्योत्सना भी खड़ी हो गई ।

इसी बीच में एक अन्य राजा धीरेन्द्रसिंह राजासाहब के यहाँ आये । यह राजासाहब के समवयस्क तथा मित्र थे । राजा ने इनका यथोचित अतिथिसत्कार किया । राजा धीरेन्द्रसिंह के साथ उनके प्राइवेट सेक्रेटरी तथा चार अर्दली भी थे ।

सन्ध्या समय जबकि दोनों राजा तथा उनके प्राइवेट सेक्रेटरी बैठे मद्यपान कर रहे थे तो राजा सुलोचन सिंह बोले—“कल शिकार को चलें धीरेन, क्यों क्या राय है ?”

“चलो ! परन्तु यहाँ शिकार ही क्या—वही हिरन और चिड़ियाँ !”

“हाँ इधर तो यही है । तुम्हारी तरफ तो गुलदार और तेन्दुए भी मिल जाते हैं ।”

“मैंने हाल ही में दो तेन्दुए और चार गुलदार मारे हैं ।” राजा धीरेन्द्रसिंह ने कहा ।

“तुम्हारी तरफ शिकार अच्छा मिलता है । हाँ, इधर मगर मिलते हैं ।”

“पिछली दफा जब मैं आया था तब दो मगर मारे थे ।”

“परन्तु बड़ा परेशान किया था उन्होंने !” राजा धीरेन्द्र के प्राइवेट सेक्रेटरी साहब बोले ।

“हाँ काफी परेशान किया था ।” राजा धीरेन्द्र ने कहा ।

“तो क्या राय है, चलोगे ?” अतिथेय राजा ने पूछा ।

अतिथि राजा ने उत्तर दिया—“चलो ! आखिर यहीं पड़े क्या करेंगे—जरा धूमना-फिरना भी हो जायगा ।”

“अच्छा दलजीत सिंह, जरा राबिन को बुलाइये ।”

दलजीतसिंह उठकर बाहर गये और कुछ क्षण पश्चात् लौटकर अपने स्थान पर आ बैठे । थोड़ी देर पश्चात् राबिन आ गया ।

राजासाहब राबिन से बोले—“राबिन साहब, कल हम लोग शिकार के लिये जायेंगे ।”

“बहुत अच्छा राजासाहब !” राबिन ने शिष्टतापूर्वक कहा ।

“हमारे मेहमान यह राजासाहब शिकार खेलेंगे । सब सामान तैयार कर लेना-सबेरे ही चल देंगे ।”

“सब तैयार रहेगा हुजूर ! बन्दूकें चार काफी होंगी ?”

“हाँ और क्या-दो राइफिलें और दो ‘ट्वेल्व बोर’ ।”

राबिन सलाम करके चला गया ।

उसके जाने के पश्चात् राजासाहब ने धीरेन्द्रसिंह से पूछा—

“हाथियों पर चलना ही ठीक होगा ?”

“और क्या, शिकार में हाथी ही ठीक रहता है ।”

“देखो दलजीतसिंह हाथीखाने के मुंशी से कहलवा दो कि सबेरे पाँच बजे चार हाथी तैयार रखे । शेष अन्य प्रबन्ध आप करवा लीजिएगा । कुछ खाने-पीने का सामान, कुछ फल-इत्यादि साथ ले लीजिएगा । हाँ, और मास्टर साहब को कहलवा दीजिए-वह भी चले चलेंगे, उन बेचारों ने कभी काहे को शिकार देखा होगा ।”

दलजीतसिंह ने कहा—“बहुत अच्छा !” परन्तु वह मन ही मन कुढ़ गये कि राजासाहब को शर्मा जी का इतना ध्यान है ।

तबके छः बजे के लगभग राजासाहब अपने दल सहित शिकार के लिए चले । एक हाथी पर राजासाहब तथा राजा धीरेन्द्रसिंह थे, दूसरे पर दोनों के प्राइवेट-सेक्रेटरी, तीसरे पर शर्मा जी और राबिन चौथे पर चार

अर्दली थे। चार आदमी भाले लिए हुए पैदल चल रहे थे। राबिन और शर्मा जी में बातें होने लगीं। शर्मा जी ने कहा—“आज बहुत दिन बाद राजासाहब शिकार के लिए निकले हैं।”

“जी हाँ ! राजासाहब को शिकार का शौक नहीं है।”

“आप भी बहुत दिन बाद निकलें होंगे।”

“नहीं, मैं तो अक्सर शिकार के लिए निकलता हूँ। राजासाहब के लिये शिकार लाना पड़ता है।”

“अच्छा तो आप राजासाहब के लिए शिकार खेलने निकला करते हैं।”

“जी हाँ ! और आप क्या समझते थे कि मैं सिर्फ राजासाहब के साथ आता हूँ।”

“मेरा तो यही ख्याल था।”

“नहीं शर्मा जी, ऐसे बैठे की तनख्वाह कौन दे देगा। और बैठे मेरा भी तो जी न लगे।”

“ठीक बात है।”

“हफ्ते में कम से कम तीन बार तो शिकार को जाना ही पड़ता है।”

“क्या शिकार लाते हैं आप ?”

“जो मिल गया। चिड़ियाँ, हिरन, जङ्गली सुअर।”

“सुअर ! राजासाहब सुअर खाते हैं ?”

“हाँ खाते दयों नहीं !”

शर्माजी के मुख पर ग्लानि का भाव उत्पन्न हुआ।

राबिन मुस्कराकर बोला—“सुअर का गोشت बड़ा लजीज होता है शर्माजी ! चौपायों में सुअर के गोشت से बढ़कर और कोई गोشت नहीं होता।”

“तो राजासाहब के यहाँ सब लोग गोشت खाते हैं ?”

“बड़ी रानी ने तो अब शायद गोश्त खाना छोड़ दिया है। छोटी रानी खाती हैं; लेकिन सुअर वह नहीं खाती—ऐसा सुना है।”

“चिड़ियों में किसका गोश्त अच्छा होता है?”

“अपनी अपनी पसंद है। मुर्ग, कबूतर, तीतर-बटेर, मुर्गाबी, सुखबि, चहा—ये सब चिड़ियाँ अच्छी होती हैं। मुझे सबसे ज्यादा ‘ग्रीन पीजन’, जिसे हरियल कबूतर कहते हैं, अच्छा लगता है।”

“क्या हरा कबूतर भी होता है।”

“जी हाँ। बिल्कुल तोते के रङ्ग का, बल्कि उसके रंग से कुछ हल्का।”

“यह एक नयी बात मालूम हुई।”

“जी हाँ! अजी आपको बहुत सी नयी बातें मालूम होंगी। आप गोश्त खाते हैं?”

“जी नहीं।”

“खाया कीजिए, बहुत ताकतवर चीज है। आप खाया करें तो मैं भेजवा दिया करूँ।”

“हम लोगों में गोश्त नहीं खाया जाता। हालाँकि अब बहुत लोग खाने लगे हैं—कोई खुले तौर से, कोई चुरा छिपाकर; लेकिन मैं नहीं खाता। बचपन से नहीं खाया तो अब उधर रुचि नहीं होती। रही यह बात कि गोश्त खाने से ताकत आती है, इसे मैं नहीं मानता।”

“आप न मानें! डाक्टर लोगों से पूछ कर देखिये।”

शर्माजी सँकर बोले—“यह एक बहसतलब बात है। इसके खिलाफ़ और मुवाफ़िक़ काफी दलीलें हैं। वैसे मैं गोश्त खानेवालों को बुरा नहीं समझता। जो खाते हैं वे शौक से खाँय।”

“दुनिया की आबादी का ज्यादा हिस्सा गोश्तखोर है।”

“यह आप ठीक कहते हैं। लेकिन जो गोश्त नहीं खाते वे भी

काफी ताकतवर, तन फस्त और बड़ी उम्र के होते हैं। विलायत वगैरह में तो बहुत से लोग गोश्त खाना छोड़ रहे हैं।”

ये दोनों इसी प्रकार की बातें करते चले जा रहे थे। सहसा कुछ दूर पर खेतों से घिरे बज्जर भूमि के एक मैदान में कुछ हिरन दिखाई पड़े। राजासाहब ने हाथी रोकने का हुक्म दिया। चारों हाथी रोक दिये गये। राजासाहब का हाथी बिठा दिया गया और दोनों राजा उतर पड़े। दोनों ‘खाकी-ट्रेस’ में थे—कोट, ब्रीचेज (बिरजिस) बादामी बूट—बूट के ऊपर बादामी रज्ज के चमड़े के गेटर्स तथा सिर पर सोला हेट। दोनों प्राइवेट सेक्रेटरी भी ऐसे ही परिच्छादन में थे—केवल ‘गेटर्स’ नहीं लगाये थे, पट्टियाँ बाँधी थीं। राबिन घटिया मेल के गेटर्स लगाये हुए था। शर्मजी कोट धोती, पड़ने तथा सिरपर साफा बाँधे हुए थे।

राबिन भी खड़े हाथों पर से रस्से के सहारे लटक कर कूद पड़ा शर्मा जी बैठे रह गये। राबिन से वह बोले—“मैं क्या कलूंगा उतर के मुझे शिकार तो खेलना ही नहीं है—केवल तमाशा देखना है।”

“जी हॉ, आप बैठे रहिये। हाथी पर से अच्छा दिखाई पड़ेगा।”

दोनों प्राइवेट सेक्रेटरी तथा दो अर्दली भी हाथी पर बैठे रहे शेष सब लोग राजासाहब के साथ चले गये। उनके कुछ दूर निकल जाने पर पर चारों हाथी भी उनके पीछे पीछे चले। शर्मा जी ने दलजीत सिंह से पूछा—“आप शिकार नहीं खेलते ठाकुर साहब?”

दलजीतसिंह ने उत्तर दिया—“खेलता हूँ, परन्तु बहुत कम! और इस समय तो राजासाहब के साथ कई शिकारी हैं, मेरी आवश्यकता नहीं है। आप भी शिकार खेलना सीख लीजिए।”

“कौन मैं? अजी हम ब्राह्मण लोग शिकार खेलना क्या जानें, यह काम तो क्षत्रियों का है।”

“यह आप क्या कहते हैं—बहुत से ब्राह्मण शिकार खेलते हैं।”

“खेलते होंगे। मेरी इस ओर रुचि नहीं है।”

“यह बात दूसरी है ।”

थोड़ी देर बाद दो बन्दूक के फौर सुनाई पड़े । दलजीतसिंह बोले—
“हिरनों पर फायर हुआ ।” इसी समय कुछ हिरन चौकड़ियाँ भरते हुए
भागे जाते दिखाई पड़े । दलजीत सिंह बोले—“वह हिरन जारहे हैं ।
देखा शर्मा जी ! ”

“हाँ देख रहा हूँ—वह जा रहे हैं, अब निकल गये । ”

“शायद बार खाली गये । ”

“हमारे राजासाहब का बार खाली नहीं जा सकता, बड़ा सच्चा
निशाना लगाते हैं । ” धीरेन्द्र सिंह के सेक्रेटरी ने कहा ।

हमारे राजासाहब का निशाना तो ऐसा ही है, लग गया तो लग
गया, नहीं खाली गया । बहुत कम शिकार खेलते हैं—अभ्यास नहीं है । ”

“आरं यह राबिन कैसा निशानेबाज है ? ” शर्माजी ने पूछा ।

“अरे साहब, यह तो बड़े कमालका निशानेबाज है । जिस पर
बन्दूक छतिया लेता है, उसे गिराकर ही छोड़ता है । बला का शिकारी है ।

“हिरन निकल गये । ” दूसरे सेक्रेटरी ने कहा—“इस समय
‘हाउण्ड’ (शिकारी कुत्ते) होते तो हिरनों का पीछा करते । हमारे यहाँ
आठ ‘हाउण्ड’ हैं । किस बला के हैं वे—हिरन को देख भर पावें फिर
उसका निकल भागना जरा कठिन काम हो जाता है । ”

“हमारे राजासाहब को तो शिकार का शौक ही नहीं है अन्यथा
‘हाउण्ड’ भी आज्ञाय ! राबिन शिकार ला लाकर देता रहता है—बस इतने
से ही सन्तुष्ट रहते हैं । ” दलजीतसिंह ने कहा ।

“हमारे राजासाहब को तो बड़ा शौक है । सप्ताह में दो बार तो
अवश्य ही शिकार खेलते हैं । ”

“आपकी तरफ शिकार मिलता भी काफी है—चीते—तेन्दुए भी
मिलते हैं । ”

“जी हाँ ! ”

“यहाँ क्या धरा है। चिड़ियाँ मारिये, हिरन, जङ्गली सुअर और मगर इत्यादि।”

“हमारे राजा साहब अपने हाथ से चिड़ियाँ कभी नहीं मारते— कहते हैं हम क्या चिड़ीमार हैं जो चिड़ियाँ मारें।”

दलजीतसिंह हँसकर बोले—“ठीक बात है। परन्तु खाते तो होंगे ही?”

“हाँ खाते क्यों नहीं हैं। हमारे यहाँ भी एक शिकारी नौकर है— वह चिड़ियाँ लाता रहता है।”

ये लोग ये बातें करते हुए जा ही रहे थे कि सामने से मनुष्यों का एक दल आता दिखाई पड़ा। दल में दस आदमी थे। दो व्यक्ति साहिबी ठाट-बाट में आगे आगे आ रहे थे—दोनों के हाथ में एक एक दोनाली बन्दूक थी। उनके पीछे दो व्यक्ति थे जो वेशभूषा से अर्दली प्रतीत होते थे— शेष व्यक्ति चौकीदार थे और इनके पास बल्लम थे।

दलजीतसिंह अपने ही आप बोले—“डिण्टी साहब आ रहे हैं?”

“कौन डिण्टी साहब?” दूसरे सेक्रेटरी ने पूछा।

“हाकिम परगना।”

इतनी ही देर में हाकिम परगना का दल निकट आ गया। दल-जीत सिंह ने महावत से कहा—“हाथी बिठाओ।”

महावत ने ‘धत् धत् तक् तक्’ कहकर हाथी बिठाया। दलजीत सिंह हाथी से उतर पड़े, दूसरा सेक्रेटरी भी उतर पड़ा। शेष तीन हाथी खड़े रहे।

हाकिम परगना साहब सामने आगये। दलजीत सिंह ने आगे बढ़कर उनसे हाथ मिलाया। हाकिम परगना मुस्कराकर बोले—कहिये ठाकुर साहब शिकार को निकले हो?”

“राजासाहब भी तो आये हैं।” दलजीत सिंह ने कहा।

“अच्छा! किधर गये हैं?”

“इस तरफ कुछ हिरन दिखाई पड़े थे, उन्हीं के पीछे गये हैं।—
के राजा आये हुए हैं, वह भी साथ में हैं। आप उनके सेक्रेटरी हैं।”

“ओ !” कहकर डिप्टी साहब ने सेक्रेटरी की ओर हाथ बढ़ाया।
सेक्रेटरी ने उनसे हाथ मिलाया।

“आपको भी ‘इन्ट्रोड्यूस’ करा दूं। यह हमारे दोस्त ठाकुर अनि-
रुद्ध सिंह डिप्टी-कलेक्टर ! अभी हाल में ही आये हैं। हाकिम-परगना ने
अपने साथी की ओर सङ्केत करके दलजीत सिंह से कहा।” तत्पश्चात
डिप्टी साहब से बोले—“यह ठाकुर दलजीत सिंह, हमारे राजासाहब के
प्राइवेट सेक्रेटरी।”

डिप्टीसाहब ने मुस्कराकर दलजीत सिंह की ओर हाथ बढ़ाया
दलजीतसिंह ने उनसे हाथ मिलाया। दूम्रे सेक्रेटरी से भी परस्पर
आलिङ्गन हुआ।

हाकिम परगना की वयस पैंतीस वर्ष के लगभग थी, गेहुँआ रङ्ग,
क्लीन शेवड-दोहरा बदन। शर्माजी ने उन्हें पहचाना—ये वही महाशय थे
जो दशहरा समारोह पर एक वेश्या को गोद में लेकर नाचे थे। यह
ध्यान आते ही शर्माजी के ओठों पर मुस्कान की हल्की रेखा दौड़ गई।
दूसरे डिप्टी साहब की वयस तीस के लगभग थी। इकहरा शरीर, लम्बा-
कार, चेहरा साधारण। यह भी ‘क्लीन शेवड’ थे। इनका व्यक्तित्व कुछ
ऐसा था कि डिप्टी कलेक्टर न माजूम होकर ‘कामिक एक्टर’ से प्रतीत
होते थे।

शर्माजी की ओर संकेत करके हाकिम परगना ने पूछा—“यह
कौन साहब हैं ?”

“यह हैं पं० मदनमोहन शर्मा—बच्चों के प्राइवेट ट्यूटर !” दल-
जीत सिंह ने कुछ उपेक्षायुक्त स्वर में कहा। हाकिम परगना ने केवल सुन
लिया। इसके पश्चात वह बोले—“अच्छा ! चलो !”

“किधर जाइयेगा ?”

“जिधर निकल गये ।”

“बहुत दिनों से आप हमारे यहाँ नहीं पधारे ।”

“आऊँगा किसी दिन !”

“आपको भी लाइयेगा ।” दूसरे डिप्टी साहब की ओर संकेत करके दलजीत सिंह ने कहा ।

“हाँ लाऊँगा । इन्हें राजासाहब से इन्ट्रोज्यूस कराना है । हाँ, खूब याद आया । इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया है, दो मास हुए—कोई लड़की आपकी जान में हो तो बताइयेगा । वैसे तो विवाह आरहे हैं, पर डिप्टी साहब कोई पढ़ी-लिखी सुशिक्षित लड़की से विवाह करना चाहते हैं ।”

“बहुत खूब ! ख्याल रखूँगा ।”

“अच्छा !” कहकर हाकिम परगना साहब अपने दल सहित एक ओर चले गये ।

“बहुत अच्छे आदमी हैं ।” दलजीत सिंह ने दूसरे सेक्रेटरी से कहा ।

“कौन जाति हैं ?”

“कायस्थ हैं—श्रीवास्तव ! बड़े रंगीले लोग हैं ।” दोनों पुनः हाथी पर सवार हो गये ।

— — —

जिलेदार शिवसहाय के साथ शर्मा जी एक गाँव में आये हुए हैं । गाँव की तहसील हो रही है । गाँव में एक पक्का डेरा बना हुआ है, इसी में शर्मा जी सहित शिवसहाय ठहरे हुए हैं ।

सबरे नौ बजे का समय था । डेरे के प्रांगण में जिलेदार साहब मेज-कुर्सी लगाये बैठे थे । मेज के निकट बीच में जिलेदार साहब, एक ओर एक मुंशी जो रसीदें काट रहा था दूसरी ओर शर्मा जी । मेजके निकट ही एक तख्त पर एक अन्य व्यक्ति कागज पत्र खोले बैठा था । डेरे के द्वार पर एक बन्दूकधारी चपरासी बैठा था । एक ओर चार आदमी खड़े थे जिनमें से दो के पास बल्लम थे और दो के पास लाठियाँ । ये लोग आसामियों को ला रहे थे । चार किसान सामने खड़े थे ।

जिलेदार साहब तख्त पर बैठे हुए व्यक्ति से बोले—“इन पर कितना रुपया चाहिए ?”

तख्तासीन व्यक्ति ने किसानों से कहा—“नाम बोलो ।” चारों ने नाम बताये । वह व्यक्ति बोला—“एक एक करके बताओ ।”

नाम पूछ कर उस व्यक्ति ने चारों के नाम लगी हुई रक्कम बताई !

तीन किसानों ने तो रुपये दे दिये—मुंशी ने रसीदें काट दीं । एक किसान बोला—“अभी तो सरकार मेरे पास है नहीं, दो-तीन दिन में इन्तजाम करके दूँगा ।”

जिलेदार साहब भ्रुकुटी चढ़ाकर बोले—“तेरे लिए साबो दो-तीन हम यहाँ पढ़ें रहेंगे—क्यों ? हमें और काम थोड़े ही है । ”

“तो हुजूर मैं वहीं दफ्तर में पहुँचा दूँगा । ”

“ठीक है । सब लोग वहीं दफ्तर में पहुँचा दिया करो, फिर हमारी क्या जरूरत रह जाय । निकाल (गंदी गाली) रुपये जल्दी । ”

“इस वखत तो नहीं हैं, हुजूर ! ” किसान ने कातर दृष्टि से देखते हुए कहा ।

जिलेदार साहब एक लाठीधारी से बोले—“मटरू ! लगा तो इस (गन्दी गाली) के बीस जूते । ” मटरू आगे बढ़ा ।

तीन किसानों में से एक वृद्ध बोला—“अरे इन्तजाम करके ले आओ—किसी से कर्ज ले आओ । जिलेदार साहब यहाँ पढ़े थोड़े रहेंगे ! ”

“हुजूर शामतक की मोहलत मिल जाय । ” कहीं से लाऊँगा ।

“अच्छा जाओ सरऊ शामतक की मोहलत है । ”

इस प्रकार बारह बजे तक तहसील होती रही । कई किसान पिट-वाये गये—गालियों का तो कोई हिसाब ही नहीं था, बात बात में उनका प्रयोग होता था । जब कोई किसान पीटा जाता था तो शर्माजी उस और से मुँह फेर लेते थे और मन में सोचते थे कि—“हम नाहक यहाँ आये । आये थे कि कुछ मन बहलेगा, यहाँ उलटे चित्त को क्लेश होता है । ” शर्माजी की समझ में एक बात नहीं आई । किसान के ऊपर जितना लगान वाजिब होता था उससे एक रुपया अधिक वसूल किया जाता था, परन्तु रसीद उसे वाजिब लगान की ही दी जाती थी ।

बारह बजे के बाद तहसील स्थगित कर दी गई । गर्म पानी तैयार था—जिलेदार साहब ने धूप में बैठकर पहिले मालिश करवाई, फिर स्नान किया । शर्माजी प्रातःकाल ही कूपजल से स्नान कर चुके थे । एक बजे के लगभग भोजन किया गया । भोजन था रोटी, दाल, दो साग, खीर ! जिलेदार साहब के लिये गोश्त अलग दूसरे चूल्हे पर पकाया गया था ।

शिवसहाय अपने सहकारी कर्मचारियों सहित अलग बैठे—इन तीनों को गोश्त भी परोसा गया। शर्माजी चौके के निकट बैठे।

शिवसहाय ने कहा—“थोड़ा गोश्त लीजिए शर्माजी।”

“बस जनाब, आप ही शौक कीजिए।” शर्माजी ने कहा।

भोजन करके सबने आराम किया।

चार बजे के लगभग जिलेदार साहब उठे और पुनः बाहर आ बैठे और तहसील का कार्य होने लगा। शर्माजी बिस्तर पर पड़े पड़े एक पुस्तक, जो वह साथ लाये थे, पढ़ने लगे।

पाँच बजे के लगभग शर्माजी उठकर बाहर आये और शिवसहाय से बोले—“मैं जरा घूम-फिर आऊँ।”

“हाँ! हाँ! हो आइये! आप तो घूमने-फिरने आये ही हैं। देख मटरू, परिडतजी के साथ चला जा, घुमा-फिरा ला।”

मटरू बोला—“चलिये परिडत जी।”

शर्माजी कपड़े पहिन कर और हाथ में छड़ी लेकर मटरू के साथ घूमने निकले।

“किधर चलोगे परिडत जू?”

“चलो, इधर खेतों की तरफ चलें। यहाँ कोई तालाब वालाब नहीं है?”

“है, तालाब है—पक्का, सिवाला है।”

“तो चलो उसी तरफ चलें।”

कुछ क्षण पश्चात शर्माजी ने पूछा—“कितना बड़ा गाँव है यह?”

“अच्छा है! छः हजार की तहसील का गाँव है।”

“बस्ती किनकी अधिक है?”

“अहीरों की बस्ती ज्यादा है परिडत जू! वैसे बाबान ठाकुर, पासी, चमार भी हैं, पर ज्यादा अहीर ही हैं।”

“अहीर सब खेती करते हैं ?”

“हाँ खेती भी करते हैं और गाय-भैंसे भी रखते हैं।”

“हाँ एक बात तो बताओ। जिलेदार साहब सब से एक रुपया अधिक क्यों तहसील रहे हैं ?”

मटरू हँसकर बोला—“यह जिलेदार साहब का नजराना है। फी पट्टा एक रुपया नजराना लेते हैं।”

“साल में, या हर तहसील में।”

“हर तहसील में—साल में दो तहसीलों होती हैं—दो रुपया साल लेते हैं।”

“तो यह सब रुपया जिलेदार साहब ले लेते हैं।”

“थोड़ा थोड़ा हिस्सा मुंसी, पटवारी, और चपरासी को भी मिलता है। बकौ आमदनी है जिलेदार साहब को। आठ-दस गाँव तहसीलते हैं, सब जगह यही कायदा बना रक्खा है।”

“यह दूसरा जो तख्त पर बैठा था पटवारी था ?”

“हाँ ! यह राजा साहब का पटवारी है—सरकारी पटवारी दूसरा है।”

“परन्तु ये तो हमारे साथ नहीं आया, क्या यहीं रहता है ?”

“नहीं रहता तो दूसरे गाँव में है, जहाँ की तहसील होती है वहाँ पहले से ही पहुँच जाता है।

“यह जो नजराना लेते हैं जिलेदार साहब, यह चुरा-छिपा कर लेते होंगे ?”

“सो तो कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती। यहाँ तो खुले आम लेते हैं।”

थोड़ी देर में ये दोनों तालाब पर पहुँच गये। तालाब पक्का बना था। तालाब से मिला हुआ ही एक पक्का चबूतरा था—कोई ३०० वर्ग फीट का। इसके एक कोने पर कुँआरा था और एक सिरे पर शिव मन्दिर। चबूतरे

पर गाँव के दो चार आदमी उपस्थित थे। शर्मा जी चबूतरे पर चढ़ गये। शिव मन्दिर देखा—थोड़ी देर चबूतरे पर बैठे। तत्पश्चात् मटरू से वह बोले—“यदि एक लोटा मिल जाता तो शौच हो आते।”

यह सुनते ही एक उपस्थित व्यक्ति बोल उठा—“लीजिए ! यह लोटा ले जाइये।” यह कह कर उसने अपना लोटा दे दिया। शर्मा जी ने इस व्यक्ति को ध्यानपूर्वक देखा। यह एक अर्द्धवयस्क व्यक्ति था—जनेऊ पहिने था, शिर पर मोटी शिखा थी। शर्मा जी ने उससे पूछा—“आप ब्राह्मण हैं ?”

“जी हाँ !”

मटरू बोल उठा—“यह गाँव के खास आदमी हैं। बच्चालाल सुकुल नाम है। बड़े भले आदमी हैं।”

बच्चा सुकुल मटरू की ओर देखकर बोले—“आप कौन हैं।” शर्मा जी की ओर संकेत किया।

“यह तो हम जानते नहीं—जिलेदार साहब के साथ आये हैं।”

शर्मा जी बोल उठे—“महाराज मैं भी ब्राह्मण हूँ—सनाढ्य। राजा साहब के बच्चों को पढ़ाता हूँ।”

बच्चा सुकुल प्रसन्न होकर बोले—“वाह ! तब तो आप अपने भाई हैं। ब्राह्मण ब्राह्मण सब एक हैं।

“हाँ—यही बात है।”

शर्मा जी शौच से निवृत्त होकर वह चबूतरे पर बैठ गये बच्चा सुकुल ने तमाखू बनाकर उनके सामने हाथ बढ़ाया। शर्मा जी हाथ जोड़कर बोले—“मैं तो तमाखू खाता नहीं।”

“अच्छा !” कहकर बच्चा सुकुल ने हाथ खींच लिया। मटरू बोला—“लाओ हमें दे देओ।”

“हाँ ! हाँ ! लेओ !” कहकर बच्चा सुकुल ने थोड़ी तमाखू मटरू को दे दी और शेष स्वयं फाँक गये।

कुछ देर गाँव के सम्बन्ध में बातचीत होती रही। इसके पश्चात् बच्चा सुकुल मटरू से बोले—“जरा हमारे घर चलें जाओ ! चार बीड़ा पान लगवा लाओ—बबुआ से कह देना, वह ले आयागा।”

शर्मा जी बोल उठे—“अजी रहने दीजिए, क्यों कष्ट कीजिएगा।”

“कष्ट की कौन बात है परिचित जी, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ जो आपकी कुछ सेवा कर सकें।”

मटरू चल दिया। “इलायची भी दो चार लेते आना। अच्छा।” बच्चा सुकुल ने पुकार कर कहा।

“हौ !” कहकर मटरू चला गया।

बच्चा सुकुल शर्मा जी से बोले—“सरकार ? आप अपने भाई हैं। जरा राजा साहब के कानों तक हमारी फरियाद भी पहुँचा देना।”

“हाँ ! हाँ ! कहिए।” शर्मा जी ने उत्सुक होकर कहा।

“यह शिवसहाय जिलेदार बड़ा पाजी आदमी है सरकार ! जरा, जरा सी बात पर आबरू लेने पर उतारू हो जाता है। आप जानो रुपया हर समय किसान के पास नहीं रहता। रखता कोई है नहीं, दो चार दिन आगे पीछे सब दे देते हैं। लेकिन यह ऐसा पाजी है कि एक दो दिन की मोहलत भी बड़ी कठिनाता से देता है। जरा जरा सी बात में गाली दे बैठता है, कोई कुछ बोले तो पिटवा देता है। नजर-बेगार अलग लेता है। गाँव में दारू बनवाता है। खुद भी पीता है और बिकवाता भी है।”

“अच्छा !” शर्मा जी विस्मित होकर बोले।

“जी हाँ !”

“कौन ब्पाते हैं दारू ?”

“पासी लोग बनाते हैं। इसी मारे पासी लोग हम लोगों से दबते नहीं। नहीं सरकार पासी चमारों की यह मजाल नहीं थी कि हम लोगों से बेजा बर्ताव करें। परन्तु जिलेदार साहब ने इन्हें सिर चढ़ा रख है—इस मारे शेर रहते हैं।”

“पुलीस को यह बात मालूम है ?”

“मालूम क्यों नहीं है। पर पुलीस भी राजा साहब का आदमी समझ कर इनसे नहीं बोलाती। यह भी पुलीस की खातिर करते रहते हैं।

“क्या खातिर करते रहते हैं।”

“घी-दूध भेजवते रहते हैं। कभी गाँव में कोई खोरी-बदमासी होती है तो थानेदार को घूस दिलवा देते हैं।”

“यह यट्ठू भी पार्सी मालूम होता है।”

“पामो तो हई है।”

“राजा साहब भी नजर-बेगार लेते हैं ?”

“राजा साहब तो कभी इधर भूल कर भी नहीं आते। आते तो उन्हें हम लोग खुद ही नजर दें—हमारा फरज है। एक दफा शिकार खेलते खेलते आ निकले थे—तब हम लोगों ने नजर दी थी, लेकिन उन्होंने ली नहीं—खाली हाथ से छू छू कर लौटा दी थी। हाँ! कभी कभी चन्दा वसूल किया जाता है।”

“चन्दा काहे का ?”

“हाथी खरीदना होता है—घोड़ा खरीदना होता है या मोटर, तब चन्दा लिया जाता है।”

“अच्छा ! यह तुम लोगों से लिया जाता है ?”

“हाँ सरकार !”

“यह कहो ! हूँ और... ?”

“बस यही बातें हैं। खैर चन्दा-वन्दा तो हम लोगों को नहीं अखरता, कभी दूसरे—तीसरे साल लिया जाता है और वह भी हैसियत के अनुसार। परन्तु जिलेदार साहब का व्यवहार बहुत अखरता है। बेजा दबाव, गाली गलौज, मार पीट - जबरदस्ती जमीन छीन कर दूधरे को दे देना - ये बातें बहुत अखरती हैं।

“जमीन जबरदस्ती क्यों छीनते हैं ?” शर्माजी ने पूछा।

“किसी से नाराज हो गये या किसी ने कहा कि फलाने की जमीन हमें दिलवा दो तो इतना नजराबा देंगे। इन्हीं कारणों से छीन लेते हैं।”

“तो तुम लोगों में आपस में भी चलों करती है ?”

“खूब ! एक को एक देख नहीं सकता सरकार ! फूट का राज्य है। प्रत्येक आदमी जिलेदार का प्यारा बनने की चेष्टा करता रहता है इस मारे दूसरों का अनिष्ट करता है।”

“यह बेजा बात है। तुम लोगों में आपस में संगठन होना चाहिए।”

“संगठन हो तो जिलेदार की ऐसी-तैसी, टेढ़ी आँख से देख नहीं सकता, परन्तु संगठन नहीं है। एक को एक नीचा दिखाने के लिए तत्पर रहता है।”

इसी प्रकार बच्चा सुकुल जिलेदार साहब की निन्दा करते रहे। इसी समय सामने से मटरू आता दिखाई पड़ा, उसके साथ एक दश-वर्षीय बालक था। मटरू को आता देखकर बच्चा सुकुल शर्मा जी से बोले— “जिलेदार को ये बातें न मालूम हों नहीं तो मेरा शत्रु हो जायगा।”

“नहीं जी, ऐसा क्या मैं बच्चा थोड़ा ही हूँ।”

“राजा साहब के कानों तक किसी तरह पहुँचा दीजियेगा, मेरा नाम उनको भी न मालूम हो।”

“नहीं ! राजा साहब से स्वयं कहूँगा।”

“बढ़ी दया होगी।”

लड़के ने आकर पान-इलायची दिये। बच्चा सुकुल लड़के से बोले— “पैर छुओ परिडतजी के !”

लड़के ने शर्माजी के पैर छुए-शर्माजी ने आशीर्वाद दिया।

“यह आपका लड़का है ?”

“जी सरकार ! सब से छोटा यही है । दो इसमें बड़े हैं ।”

पान-इलायची खाकर शर्मा जी बोले—“अच्छा तो अब चलें ।”

“जाइयेगा ? अच्छा नमस्कार !”

“नमस्कार !” कहकर शर्मा जी चल दिये ।

“अभी तो रहियेगा ? ” बच्चा सुकुल ने पूछा ।

“हाँ, जिलेदार साहब के साथ ही जाऊँगा ।”

तीन दिवस पश्चात जिलेदार साहब ने उस गाँव से प्रस्थान किया । चलते समय एक आदमी शर्माजी के लिए पाँच सेर खोया और पाँच सेर घी लाया । जिलेदार साहब ने पूछा—“किसने भेजा है ?” लाने वाले ने उत्तर दिया—“बच्चा सुकुल ने शर्माजी खातिर भेजा है ।”

जिलेदार साहब का मुँह विकृत हो गया । मुस्कुराने का विफल प्रयत्न करते हुए शर्माजी से वह बोले— “लीजिये शर्माजी आपके लिए सौगात आई है ।”

शर्माजी ने जिलेदार के मुख का भाव देखा और उसका अभिप्राय समझा । वह बोले—“भई मैं इसे लेकर क्या करूँगा । ले जाओ मुझे नहीं चाहिए ।”

जिलेदार साहब बोले— “ले लीजिए, बेचारों ने आदर से भेजा है । रख दो जी ।”

लाने वाला रखकर चला गया । उसके चले जाने पर जिलेदार साहब शर्माजी से बोले— “आप कष्टदा न बिगाड़ें । इन लोगों का फर्ज है देना और हम लोगों का फर्ज है लेना ।”

“हाँ तो आप लीजिए ! आपसे इन लोगों का काम रहता है । मैं काहेमें हूँ ।”

“वाह ! आप भी तो उसी दरवार के आदमी हैं ।”

शर्मा जी अधिक वाद-विवाद करना उचित न समझ कर चुप हो रहे ।

इस गाँव से चल कर शिवसहाय दूसरे गाँव पहुँचे। यहाँ भी सरकारी डेरा बना हुआ था। इसी में सब लोग ठहरें।

संध्या समय यहाँ भी शर्मा जी घूमने निकले। इस बार इनके साथ इस गाँव का एक अहीर था—नाम शिवदीन ! यह एक हठ पुष्ट कसरती पट्टा था। यह गाँव पूर्व के गाँव से कुछ छोटा था। इसमें ब्राह्मणों की बस्ती अधिक थी। ब्राह्मणों के पचास-साठ घर थे। शेष में अन्य जातियाँ थीं।

इस गाँव में देवी जी का मन्दिर था और केवल एक यही स्थान इस गाँव में अच्छा था। संध्या समय इसी स्थान पर लोग जमा होते थे। यहाँ भी देवी जी के मन्दिर के साथ एक बड़ा चबूतरा तथा पक्का कुँआ था। एक दालान भी बना था जो राह चलने वालों को विश्राम गृह का काम देता था।

शर्मा जी जिस समय इस स्थान पर पहुँचे उस समय यहाँ चार पाँच व्यक्ति थे। यहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण से शर्मा जी का परिचय हुआ। यह ब्राह्मण वैद्य थे। आस-पास के दो चार ग्राम में चिकित्सा का कार्य कर के अपना निर्वाह करते थे। शिवदीन से शर्मा जी का परिचय प्राप्त कर के वैद्य जी ने शर्मा जी का स्वागत किया। बात का प्रसङ्ग आने पर शर्मा जी ने पूछा—“यहाँ कोई अस्पताल अथवा औषधालय नहीं है ?”

“बुद्ध नहीं। अस्पताल तथा औषधालय राजधानी (जहाँ राजा साहब रहते हैं) में है।”

“तो क्या लोग वहाँ जाते हैं ?”

“जिन के निकट पड़ता है वे जाते हैं, जिन से दूर पड़ता है वे नहीं जाते।”

“वे क्या करते हैं ?”

“बस इसी प्रकार दो-चार ग्राम पीछे एक-दो वैद्य रहते हैं उन्हें

से चिकित्सा करवाते हैं अथवा कही सुनी हुई औषध का प्रयोग करते हैं । जी गये तो जी गये—अन्यथा मर गये ।”

“दो चार ग्राम पीछे एक अस्पताल अथवा औषधालय होना आवश्यक है ।”

“कौन बनवावे ! राजा साहब तो केवल पैसा वसूल करना जानते हैं और किसी बात से उन्हें मतलब नहीं । पैसा वसूल करने में भी ग्रामीणों की जो दुर्दशा की जाती है वह आप देखते ही होंगे । न किसी की आबरू का ख्याल है न इज्जत का । गाँव की प्रजा को तो ये राज्य कर्मचारी पशु समझते हैं ।

“इधर कुछ काँग्रेस का कार्य नहीं होता ?” शर्माजी ने पूछा ।

“कुछ होता है । परन्तु उसका प्रभाव संतोषजनक नहीं है । काँग्रेस कार्यकर्ता भी अधिकांश अपना ही स्वार्थ सिद्ध करते हैं । ऐसे कोई कोई हैं जो काँग्रेस का वास्तविक ध्येय सामने रखकर कार्य करते हों । हो-हल्ला तो बहुत मचाते हैं, परन्तु भय अथवा प्रलोभन में पड़ कर दब जाते हैं । जो बाहर से आते हैं वे तो कुछ निर्भीक होते हैं और कुछ ठोस कार्य भी करते हैं, परन्तु जो यहीं के हैं वे तो केवल नेता भर हैं—हम लोगों पर रोब जमाने और चन्दा लेने के लिए, पुलिस तथा राज्य कर्मचारियों का सामना पड़ने पर लिबलिबा जाते हैं ।

“यह दुःख की बात है । इन्हें ग्रामों में सुधार करवाने चाहिए । राजा साहब से कह कर अस्पताल पाठशालाएँ इत्यादि खुलवावें ।”

“यह कार्य कोई नहीं करता । ग्रामीण भी बड़े धूर्त हैं । अपने स्वार्थ की बात तो मान लेते हैं; परन्तु जिन बातों में इनका कोई तात्कालिक स्वार्थ नहीं होता, केवल काँग्रेस के ध्येय की पूर्ति होती है वे बात ये लोग नहीं मानते ।”

“स्थानीय काँग्रेसी यदि प्रयत्न करें तो ग्रामों में बहुत से सुधार हो सकते हैं ।”

“परन्तु सुधार का ध्यान हो तब तो। ये लोग तो केवल जमींदारों के विरुद्ध ग्रामीणों को भड़काना और उनसे ऐसे काम कराना जिनके कारण उनसे और राज्य तथा पुलिस से संघर्ष हो—कॉंग्रेस की परम्परा पूर्ति सम्भते हैं।”

“यह बात गलत तथा भ्रम पूर्ण है। सच पूछिये तो यदि कॉंग्रेसी चाहें तो राजा तथा पुलिस की सहायता से गाँवों में बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। कोई आन्दोलन हो तब तो दूसरी बात है अन्यथा शान्त वातावरण में तो कॉंग्रेसियों को निर्माण कार्य करने का अच्छा अवसर मिलता है। आवश्यकता इस बात की है कि वे राज्य तथा पुलिस पर अपनी नेकनीयती का प्रभाव डाल कर उनका सहयोग प्राप्त कर सकें।” शर्माजी ने कहा।

“इन लोगों में न इतनी लगन है और न साहस ! केवल नेता बनने का शौक है।”

एक ओर एक दूसरे वृद्ध सज्जन बैठे थे। गौर वर्ण, शान्त-गम्भीर मुख मगडल ! चुप चाप उदास चित्त विचार मग्न के समान बैठे थे। शर्मा जी इनको कुछ क्षण ध्यानपूर्वक देखते रहे। सहसा उनके मुख पर कुछ विस्मयपूर्ण उत्सुकता का भाव उत्पन्न हुआ।

उन्होंने वैद्यजी से पूछा—“यह सज्जन कौन है ?”

“यह एक आपद् प्रस्त ब्राह्मण हैं—शुक्ल हैं।”

“आपद् प्रस्त क्यों हैं ?”

“अब क्या बतावें परिचित जी, इज्जत आबरू का मामला बड़ा कठिन होता है।”

“कुछ तो बताइये, कदाचित मैं इनकी कोई सहायता कर सकूँ।”

वैद्य जी शर्मा जी के निकट खिसक कर धीमे स्वर में बोले—
“यह गाँव के रहने वाले हैं। यहाँ आये इन्हें एक वर्ष के लग भग

हुआ। यहाँ इनकी ससुराल का परिवार रहता है। जब यह अपने गाँव में थे तब इनकी एक विवाह योग्य कन्या निकल गई।”

शर्मा जी चौंक कर बोले—“कहाँ निकल गई?”

“कुछ पता नहीं चला। यद्यपि कन्या बड़ी सुशील तथा सच्चरित्र थी, परन्तु मनुष्य की कब कैसी प्रवृत्ति होती है यह जानना बड़ा कठिन है। गाँव का कोई व्यक्ति गायब नहीं पाया गया इस से अनुमान होता है कि किसी बाहरी आदमी के साथ भाग गई।”

“अच्छा फिर?” शर्मा जी ने कुछ घबराये हुए स्वर से पूछा।

“फिर क्या—यह बेचारे लज्जा के मारे वह गाँव छोड़ कर यहाँ आ बसे। तब से यही है।”

“इन के और कोई है?”

“एक पुत्र है—बस! पत्नी को मरे चार-पाँच वर्ष होगये। लड़का के निकल जाने का एक कारण यह भी हुआ। अन्यथा यदि माता होती तो वह ध्यान रखती।”

“लड़का क्या करता है?”

“लड़का लखनऊ में नौकर है। वही इनके खर्च भर को भेजता रहता है। बेचारे यही पड़े रहते हैं। मिलते जुलते और बातचीत कम करते हैं।”

“इनके ससुराल में कौन है?”

“इन के साले का लड़का और उस का परिवार है। वही इनकी सेवा-सुश्रूषा करता है।

“इनका नाम क्या है?” शर्मा जी ने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा।

“इनका नाम त्रिवेणीशङ्कर शुक्ल है।”

शर्मा जी स्तम्भित हो गये। यही नाम उन के स्वसुर का भी था। उनकी पत्नी ने जो जो बातें बताई थीं, अर्थात् माता का अभाव भाई का लखनऊ में नौकरी करना—वे सब बातें इन से मिलती हैं। शर्मा जी को

विश्वास हो गया कि यही उन के श्वसुर हैं। यह जान कर उन का चित्त अशान्त हो गया। श्वसुर से वार्त्तालाप करने के लिए उनका मन मचलने लगा। कुछ क्षण सोच कर वह बोले—“इन से आप मेरा परिचय करवा दें तो सम्भव है मैं इनकी कुछ सहायता कर सकूँ।”

“हाँ! हाँ! अभी लीजिए।” यह कह कर वैद्य जी ने पुकारा शुक्ल जी! शुक्ल जी ने वैद्य जी की ओर देखा। वैद्य जी बोले—“यह परिणित जी हमारे राजा साहब के कुमारों के अध्यापक हैं। यह आप से मिलना चाहते हैं।”

शुक्ल जी श्वसुरन्त उठे और उनके पास आकर बैठ गये और बोले—
कहिये महाराज, आज्ञा

वैद्य जी उठ कर बोले—“अच्छा मुझे आज्ञा हो तो जाऊँ। दो एक श्रेणियों को देखना है। कल पुनः इसी स्थान पर भेंट होगी।”

शर्मा जी हाथ जोड़ कर बोले—“अच्छा महाराज! हाँ कल यही भेंट होगी।”

वैद्य जी ‘नमस्कार’ कर के चले गये। उन के जाने पर शर्मा जी बोले—“क्षमा कीजियेगा, मैं कुछ अनधिकार चेष्टा कर रहा हूँ।”

“नहीं सो कोई बात नहीं, आप हमारे मालिक हैं। आप को सब प्रकार का अधिकार है।

“आपकी कन्या सरस्वती का मुझे पता है।”

शुक्ल जी चौंक पड़े। कुछ क्षण तक शर्मा जी को ध्यानपूर्वक देख कर बोले—“मेरे तो कोई कन्या नहीं।”

“आप मुझ से संकोच तथा भय मत कीजिए। आपकी कन्या को कुछ कुचक्री उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे धोखा देकर उड़ा ले गये थे। परन्तु ईश्वर ने उसकी रक्षा की। उसका सतीत्व बच गया। एक ब्राह्मण ने उसको आश्रय दिया और अब वह उसी ब्राह्मण की अर्द्धाङ्गिनी है। उसने विधिपूर्वक आपकी कन्या पाणि ग्रहण किया है। वह उसे आपके पास सुरक्षित पहुँचा देना चाहना था; परन्तु लड़की भय के मारे आपके

पास जानि को सहमत नहीं हुई-कि कदाचित आप उसे घर में रखना स्वीकार न करें। तब उसने आपकी कन्या से विवाह कर लिया। ब्राह्मण युवक तथा अविवाहित था।”

त्रिवेणी शङ्कर नेत्र विस्मारित करके कुछ क्षण तक शर्माजी को ताकते रहे तत्पश्चात् भ्रुकुटी सिकोड़ कर बोले—“मेरे कोई कन्या नहीं थी। आप कहीं की बात करते हैं?”

शर्मा जी एक क्षण के लिए अप्रतिभ हो गये। उन्होंने सोचा कि कदाचित् यह सज्जन कोई दूसरे हों। अतः उन्होंने पूछा—“क्या आपका नाम त्रिवेणी शङ्कर नहीं है।

“नाम तो मेरा यही है।

“आप.....गाँव के रहने वाले नहीं हैं?”

“हाँ मैं वहीँ का रहने वाला हूँ।”

“आप का एक पुत्र है वह सखनऊ में है?” सहसा शुक्ल जी का करण गद्गद हो गया, आँठ फड़कने लगे, नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने गर्दन हिला कर शर्मा जी की बात स्वीकार की। शर्मा जी बोले—“तब तो आप निश्चय ही ‘सरस्वती’ के पिता हैं।” शर्मा जी ने हृदय-पूर्वक कहा।

अब शुक्ल जी के नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली। वह अँगोछे से अपना मुँह ढक कर बोले—“हाँ मैं उसका पिता हूँ। वह कहीं है?”

“वह मेरे घर के पास ही रहती है। यदि आप वहाँ पधारें तो मैं उस से आप की भेंट करवा सकता हूँ।”

कुछ क्षण तक शुक्ल जी रोते रहे। शर्मा जी चुपचाप बैठे उन की ओर देखते रहे। वह सोच रहे थे—“इन बेचारों ने अपनी पुत्री के वियोगमें बड़ा कष्ट उठाया है। इस ब्राह्मणकी आत्माको जो क्लेश पहुँचा है उसका प्रायश्चित्त किसे करना पड़ेगा?”

कुछ देर बाद शुक्ल जी शान्त हो कर बोले—“ आप घर कब पहुँचेंगे ।”

यहाँ की तहसील समाप्त होते ही मैं चला जाऊँगा ।”

“तो मैं आपके पास कब आऊँ ?”

“जिस दिन मैं यहाँ से चला जाऊँ उसके दूसरे दिन आप आ सकते हैं । मेरा नाम मदनमोहन शर्मा है, मैं राजा साहब के बच्चों को पढ़ाता हूँ । वहाँ जिससे पूछियेगा वह बता देगा । दोपहर को मैं घर पर रहता हूँ—सुबह-शाम महल में पढ़ाने जाता हूँ । वहाँ अपना अभिप्राय न बताइयेगा, केवल मुझे पूछ लीजिएगा ।

“बहुत अच्छा, मैं अवश्य आऊँगा । इतना और बता दीजिए कि सरस्वती सुखी तो है ।”

“मेरा विश्वास तो यही है कि वह सुखी है । आप स्वयं मान लेंगे ।”

“आपने मेरा बड़ा उपकार किया शर्मा जी ! सरस्वती का शोक मेरा तन-मन भस्म किए डाल रहा था । आज आपने एक शोकसन्तप्त ब्राह्मण का उद्धार किया । इसके लिए मैं आपका चिरञ्छणी रहूँगा ।” यह कहकर शुक्ल जी पुनः रोने लगे ।

“अब चिन्ता न कीजिएगा ।” ईश्वर ने जो किया अच्छा किया ।

“हाँ ! वह दीनदयालु है, दीनों पर सदा दया करता है ।”



जिस दिन शर्मा जी घर पहुँचे उसी दिन रात में उन्होंने सरस्वती से कहा—“कल तुम्हारे पिता तुमसे मिलने आ रहे हैं ?”

सरस्वती अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक बोली—“सच ?”

शर्मा जी मुस्करा कर बोले—“सच नहीं तो क्या झूठ ?”

“हँसी करते हो। ऐसी भिष्टुर हँसी नहीं करनी चाहिए।”

सरस्वती ने उदास होकर कहा।

“क्या तुम समझती हो कि मैं ऐसी हँसी करके तुम्हारा हृदय दुखाऊँगा। मैं सच कहता हूँ कि वह मुझे……गाँव में मिले थे।”

सरस्वती चौंक कर बोली—“इस गाँव में तो मेरी ननिहाल है।”

“अब तो विश्वास हुआ। आजकल तुम्हारे पिता वहीं रहते हैं, मुझसे भेंट हुई थी। मैंने उनसे सारा हाल कह दिया, केवल यह नहीं बताया कि मैंने ही तुमसे विवाह किया है।”

“कब आयेंगे ?”

“कल ! या परसों !”

“मैं उन को कैसे मुँह दिखाऊँगी।” सरस्वती ने कहा।

“क्यों ? तुम्हारा इसमें क्या अपराध ! मैंने सब बात उनको बता दी है।”

“श्रया यह कह दिया कि राजा साहब के आदमी——।”

शर्मा जी जल्दी से बोले—“नहीं, राजा साहब का नाम नहीं लिया और न तुम बताना। मैंने तो केवल यह बताया कि कुछ आदमी बहका लाये थे।”

सरस्वती कुछ क्षण सोचती रही तदुपरांत बोली—“कैसे हैं?”

“अच्छे हैं। उदास रहते थे।”

“सो तो रहते ही होंगे। पिता जी को बड़ा क्लेश हुआ होगा।” कहते हुए सरस्वती के नेत्रों में आँसू आ गये।

“हाँ, क्लेश तो बहुत हुआ। मैंने जो बताया तो फूट फूट कर रोने लगे।”

यह सुनते ही सरस्वती की आँखों से भी अश्रु धारा निकली।

शर्मा जो बोले—“अरे अब तुम भी रोने लगे। उन्होंने तो क्लेश उठाया तुम ने क्या क्लेश उठाया?”

“पिता जी को मेरे पीछे कितना कष्ट हुआ। एक तो बेचारे माता जी के मरने से ही दुखी थे उस पर यह दुःख देखना पड़ा। जब मैं यह सोचती हूँ तो मेरा कलेजा फटने लगता है।”

शर्मा जी प्रेमपूर्वक सरस्वती के आँसू पोंछते हुए बोले—“अब तुम दोनों सुखी हो जाओगे, पिछला सब कष्ट भूल जायगा यह जीवन-संग्राम है सरस्वती! इसमें सुख दुःख आते ही रहते हैं।”

सरस्वती ने पूछा—“उन्हें यह मालूम हो गया कि मैं सनाढ्य ब्राह्मण से व्याही गई हूँ।”

“यह तो मैंने नहीं बताया। यहाँ तो बताना ही पड़ेगा।”

“अभी इतना खटका बाकी है।”

“सो कोई बात नहीं, मैं समझा लूँगा। त्रिवेदी जी बुलीन कान्य कुब्ज हैं, वह भी समझा देंगे तो फिर कुछ न कहेंगे।”

“हाँ बस इतना ही भय है।”

“यह कोई भय नहीं!”

“भाई जी तो लखनऊ में ही होंगे ?”

“हाँ वह लखनऊ में ही हैं । क्या नाम है तुम्हारे भाई का, मुझे याद नहीं रहा ।”

“नर्मदाशङ्कर !”

“हाँ, नर्मदाशङ्कर !”

“उसका पता मालूम हो जाता तो मैं उससे भी जाकर मिलता ।”

“पिता जी से पूछ लेना ।”

“हाँ उन से पूछूँगा ।”

दूसरे दिन दोपहर को जब कि शर्मा जो विश्राम ले रहे थे कि त्रिवेणीशङ्कर शुक्ल आ गये । नौकर ने आकर कहा—“आप से कोई मिलने आया है ।”

शर्मा जी तुरन्त उठ बैठे । सरस्वती उन के समीप बैठी हुई थी, उस से बोले—“जो तुम्हारे पिता जी आ गये ।” यह कह कर शर्मा जी बाहर चले ।

सरस्वती घबरा गई । पति से बोली—“पहिले, पूछ जाना तब आन्दर लाना । मैं कपड़े बदल लूँ ।”

“कपड़े बदलने की क्या आवश्यकता है ?” कहते हुए शर्मा जी बाहर चले गये ।

सरस्वती उठ कर दूसरे कमरे में चली गई ।

बाहर बरामदे में तीन चार कुर्सियाँ और एक छोटी मेज लगी रहती थी । इन्हीं में से एक कुर्सी पर सरस्वती के पिता विराजमान थे । पास ही भूमि पर विस्तर का एक छोटा सा बगडल रखा हुआ था । शर्मा जी ने बाहर आकर शुक्ल जी को प्रणाम किया । शुक्ल जी उठ कर खड़े हो गये । शर्मा जी बोले—“बैठिये !” यह कह कर शर्मा जी उन के सामने दूसरी कुर्सी पर बैठ गये । शुक्ल जी भी बैठ गये । शर्मा जी ने पूछा—“आपको मेरा घर ढूँढ़ने में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?”

शुक्ल जी बोले—“नहीं। बस एक जगह पूछना पक्ष आपको यहाँ सब जानते हैं।”

शर्मा जी बोले—“छोटी जगह है इस से यहाँ पता लगने में विशेष अड़चन नहीं होती।”

“यह भी बात है और आप को सब जानते भी हैं।”

दोनों कुछ क्षण मौन रहे। शुक्ल जी बोले—“थोड़ा सा जल मँगाइये तो हाथ मुँह धो डालूँ।”

शर्मा जी ने नौकर को बुला कर जल मँगवाया। शुक्ल जी हाथ-मुँह धो कर पुनः अपने स्थान पर आ बैठे।

शर्मा जी ने शुक्लजी का असबाब अन्दर भेजवा दिया। इसके पश्चात् शर्माजी ने थोड़ा जलपान मँगवाया। शुक्लजी ‘नहीं’ ‘नहीं’ करते रहे। जलपान के पश्चात् शुक्लजी को पान दिया गया। शुक्ल जी बोले—“पान तो मैंने मुद्दत हुई खाना छोड़ दिया—खाली तमाखू खा लेता हूँ।”

“तो तमाखू मँगवाऊँ ?”

“नही मेरे पास है।” यह कह कर शुक्लजी ने अपनी तमाखू की थैली निकाली।

तमाखू फाँक कर शुक्ल जी बोले—“सरस्वती का निवास यही—कहीं पास ही है ?”

“हाँ, बिल्कुल निकट ही ! मैं उसे यहीं बुलवा दूँगा।” यह कहकर शर्माजी उठ खड़े हुए। अन्दर जाकर देखा तो सरस्वती धोती इत्यादि बदल कर प्रतीक्षा में बैठी थी। शर्माजी को देखते ही उसने पूछा—“क्या आ रहे हैं ?”

“अभी नहीं।”

“मेरा कलेजा धड़ धड़ कर रहा है।”

“क्यों ?” शर्माजी ने हँस कर पूछा।

“देखो क्या कहें। उन्हें मुँह दिखाते शरम लगती है।”

“वाह शर्म की कौन बात है ?” शर्माजी ने कहा ।

“वह तो यही समझते होंगे कि भाग आई ।” सरस्वती ने कहा ।

“मैंने सब समझा दिया है । भाग आने की बात पर उन्हें विश्वास होता तो तुम से कदापि मिलने न आते । अच्छा तो बुलाता हूँ ।”

“हे भगवान ! मेरा तो शरीर काँप रहा है ।”

“पागलपन की बात तो करो नहीं ।” कहते हुए शर्माजी बाहर चले गये ।

शर्माजी शुक्लजी के पास पहुँच कर बोले—“आइये ।”

शुक्ल जी उठकर शर्माजी के साथ चले । जिस कमरे में सरस्वती थी उसके द्वार पर पहुँच कर शर्माजी बोले—“अन्दर जाइये ।”

शुक्लजी अन्दर प्रविष्ट हुए । शर्माजी उसके निकट वाले कमरे में चले गये ।

शुक्लजी के कमरे के भीतर पहुँचते ही सरस्वती ‘चाचा’ कह कर उठी और शुक्लजी से लिपट गई । शुक्लजी के नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली—सरस्वती भी रोने लगी । कुछ क्षण तक शुक्लजी सरस्वती के सिर पर हाथ धरे और सरस्वती शुक्लजी के कंधे पर सिर रखे अश्रु विसर्जन करते रहे । इसके पश्चात् सरस्वती ने नेत्र पोंछते हुए शुक्लजी को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं उनके चरणों के समीप सिर झुका कर बैठ गई ।

एक घण्टे के पश्चात् शर्माजी के पास सरस्वती पहुँची । शर्माजी ने पूछा—“क्या हुआ ?”

“हुआ क्या ! मैंने सब बात बता दी ।”

“अच्छा ! क्या अपना और मेरा संबंध भी बता दिया ?”

“बता दिया । जम्हो तुम्हें बुला रहे हैं ।”

“तुमने थोड़ी जल्दी की । अब मुझे उनके सामने जाने में संकोच मालूम होता है ।”

“और सुनो ! मुझे तो कहते थे कि शरम की क्या बात है और अब खुद अपना शरमाने लगे ।”

“मैं उनसे यह बात छिपा गया था । सोचा था कि उपयुक्त अवसर पाकर बता दूँगा । परन्तु तुम्हीं ने सब कबूल दिया । वह मन में कहेंगे कि शर्मा ने मुझे धोखा दिया ।”

“वह कुछ नहीं कहेंगे । वह तो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे ।”

“अच्छा ! क्या कहते थे ?” शर्मा जी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

“अब पहिले उनके पास हो आओ-वह प्रतीक्षा कर रहे हैं ।”

“हाँ, अच्छा !” कह कर शर्मा जी उठे ।

शुक्ल जी के कमरे के द्वार पर पहुँच कर शर्मा जी कुछ ठिठुके । दो मिनट खड़े रहे तत्पश्चात् अन्दर प्रविष्ट हुए और शुक्ल जी के सम्मुख पहुँच कर सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठ गये ।

शुक्ल जी बोले—“आपने मेरी लड़की और मेरे साथ जो उपकार किया के उसके लिए मैं जन्मभर आपका ऋणी रहूँगा । यदि आप उसे शरण न देते तो भगवान जाने उसकी क्या दशा होती ।” यह कह कर शुक्ल जी नेत्र पोंछने लगे ।

शर्मा जी बोले—“उस समय मुझे जो सचित्त जान पड़ा वह मैंने किया । यदि कुछ अनुचित हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ ।”

“अनुचित ! इससे अधिक उचित और कुछ हो ही नहीं सकता था । कदाचित्त सनाढ्य ब्राह्मण होने से आप इतना संकोच करते हैं । इसमें संकोच की कोई बात नहीं । ब्राह्मण मात्र एक हैं । जो ब्राह्मणों में भेद मानते हैं उन्हें शास्त्रज्ञान नहीं है । ये भेद केवल देशान्तर के कारण उत्पन्न हो गये हैं—वास्तविक भेद कोई नहीं है ।”

शर्मा जी प्रसन्न मुख होकर बोले—“आप ठीक कहते हैं ।” पुनः दोनों कुछ क्षण तक मौन बैठे रहे । सहसा शुक्ल जी बोले—“आज मेरा

हृदय शान्त हुआ । अन्यथा एक आग सी लगी रहती थी । अब मेरा शेष जीवन शान्तिपूर्वक बीतेगा ।’

“मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप का कष्ट दूर हो गया ।”

“ईश्वर ने बड़ी दया की ! यदि वह आपको सहायक न बना देता तो—।”

“हाँ जो कुछ हुआ उसी की इच्छा से हुआ ।”

शुक्ल जी चार दिवस शर्मा जी के यहाँ रहे । पहिले उन्होंने शर्मा जी के यहाँ भोजन करने में आपत्ति की । परन्तु शर्मा जी तथा सरस्वती के समझाने से मान गये । क्यों कि और कहीं ठिकाना नहीं था । या तो अपना सामान मँगवा कर बनवाते अथवा स्वयं बनाते; परन्तु ये दोनों बातें सरस्वती तथा शर्मा जी ने स्वीकार नहीं की । अन्त को शुक्ल जी ने यह सोचकर कि चलते समय सब खर्च दे देंगे, स्वीकार कर लिया ।

चार दिन में शुक्ल जी का काया-पलट हो गया । पहिले उनका मुख-मण्डल उदास रहता था, परन्तु अब उस पर प्रसन्नता थी । पहिले चुपचाप बैठे रहते थे, अब खुल कर हँसने बोलने लगे । मुख पर कान्ति भी आई गई और शरीर की शिथिलता भी दूर हो गई ।

पाँचवे दिन शुक्ल जी विदा हुए । सरस्वती ने उनसे बचन ले लिया कि वह बराबर आते-जाते रहेंगे । सरस्वती ने यह इच्छा भी प्रकट की कि शुक्लजी अब उसीके पास रहें; परन्तु शुक्लजीने यह बात स्वीकार नहीं की ।

चलते समय शुक्ल जी ने सरस्वती को २५००) रुपये के नोट भेंट में दिये । सरस्वती अकचका कर बोली— “यह क्या चाचा ?”

“बेटा मैंने तेरे ब्याह के लिए जोड़ कर रखे थे, इस लिए ये तेरे ही हैं ।”

“ये अपने ही पास रखो चाचा ! तुम्हारा बुढ़ापा है, कुछ जरूरत लगे ।”

“मुझे क्या जरूरत है बेटी ! मुझे तो केवल रोटी—कपड़ा चाहिए सो उस भर को नर्मदा भेजता ही रहता है । इस रुपये की रक्षा में मुझे बड़ी असुविधा हो रही थी—अब निश्चिन्त हो कर सोऊँगा । बस ! अब मुझे कुछ नहीं करना है, आनन्द से ईश्वर भजन करूँगा और मस्त रहूँगा—न किसी का लेना न देना ।”

“भइया और भौजी को देखने को बहुत जी चाहता है ।”

“तो किसी दिन मेरे साथ लखनऊ चलकर मिल आना ।”

“जब तुम चलो मैं चल सकती हूँ ।”

“पहिले एक दफा उससे मिलकर सब हाल बता दूँ तब ले चलूँगा ।”

शुक्लजी विदा हुए । शर्मा जी उन्हें कुछ दूर तक पहुँचाने गये ।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् कुछ दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन त्रिवेदीजी ने वार्त्तालाप करते हुए कहा—“कल हाकिम-परगना की दावत है ।”

“क्यों क्या कोई खास बात है ?” शर्माजी ने पूछा ।

“खास बात तो कोई मालूम नहीं होती । यहाँ तो हाकिम-हुकामों की दावतें होती ही रहती हैं ।”

“तो केवल हाकिम-परगना की दावत है या और भी किसी की ।”

“सुना तो यही है केवल उन्हीं की दावत है । शायद उनके साथ कोई दूसरे हुकाम भी आवें ।”

शर्माजी विरक्त भाव से बोले —“हो दावत-अपने को उससे कोई दिलचस्पी नहीं है ।”

“आपको भी तो दावत में सम्मिलित होना पड़ेगा ।”

“मुझे ! मुझ से क्या मतलब ?”

“आप राज दरबार के आदमी हैं ।”

“इस हिसाब से तो आपको भी भाग लेना पड़ेगा ।”

“मैं तो किसी दावत में सम्मिलित नहीं होता । मेरे लिए माफी है ।” त्रिवेदी जी ने मुस्कराकर कहा ।

“आपके लिए माफी क्यों है ?”

“मेने पहिले से ही ऐसा नियम बना लिया है।”

“और आपके इस नियम को राजा साहब ने स्वीकार कर लिया है ?”

“राजा साहब के पिता के समय से नियम चला आरहा है—इनके समय का नहीं है। इसी कारण इस नियम को तोड़ने का इनका साहस नहीं पड़ा।”

“यह कहिये, पुराना हिसाब-किताब चल रहा।”

“जी हाँ ! इसी लिए तो बचत है।”

दूसरे दिन राजा साहब ने शर्माजी से कहा—“आज हाकिम-परगना और उनके कुछ मित्र आने वाले हैं। आप भी उस समय उपस्थित रहें।”

“बहुत अच्छा !”

संध्या के पाँच बजे दो मोटर कार आईं। एक कार से हाकिम-परगना, ठाकुर अनिरुद्धसिंह तथा एक अन्य व्यक्ति उतरे। दूसरी कार से दो ब्रियॉ और दो बच्चे निकले।

ब्रियॉ तथा बच्चे तो जनाने महल में चले गये, पुरुषों को सेक्रेटरी, साहब मर्दाने भाग में ले गये। शर्माजी कुछ देर से पहुँचे अतः उन्हें ब्रियॉ के आने की बात नहीं मालूम हुई।

ड्राइंग रूम में सब लोग एकत्र थे। राजा साहब भी वहीं उपस्थित थे। राजा साहब का पारस्परिक परिचय कराया। तीसरे सज्जन हाकिम परगना के साले साहब थे। यह डिप्टी साहब के प्राइवेट-सेक्रेटरी के समान थे। हाकिम परगना राजा साहब से बोले—“राजा साहब मैं आपको एक शुभ-समाचार सुनाता हूँ।”

राजा साहब उत्सुकता पूर्वक बोले—“वह क्या ?”

“हमारे दोस्त ठाकुर अनिरुद्धसिंह का विवाह हो गया।”

“अच्छा ! तब तो दावत का डौल है।” राजा साहब ने मुस्कराकर कहा।

“जी हाँ ! परन्तु यह इतने कृपण हैं कि दावत के नाम पुट्टे पर हाथ ही नहीं धरने देते ।”

“क्यों ठाकुर साहब—डिण्टी साहब क्या कह रहे हैं ?” राजा साहब ने अनिच्छा सिंह से पूछा ।

“यह ऐसी ही उड़ाया करते हैं । सच मानिये राजा साहब ऐसा पेदू आदमी मैंने कभी नहीं देखा । इन्हें चौबीसो घंटे खाने की ही चिन्ता रहती है ।”

“अरे भई, खानेके लिए ही आदमी सागी मुसीबतें सहता है । यदि खाना ही न मिला तो सब व्यर्थ है ।

“तो आप खाने के लिए जीते हैं ?” ठाकुर साहब ने पूछा ।

“जी हाँ ! और आप ?”

“जीने के लिए खाता हूँ ।”

हाकिम परगना हँस कर बोले—“सच कहते हो ! बिना खाये जीवित रहने का प्रबन्ध हो सकता तो आप भोजन करना ही त्याग देते ।”

“मैं क्या सभी त्याग देते ।”

“अच्छा दावत कब दिलवाओगे यह तो बताओ ! सौभाग्य से पत्नी भी लाजवाब मिली है । वही कहावत है कि ‘जाग की चोंच में अँगूर खुदा की कुदरत ! पहलूए हूर में लंगूर खुदा की कुदरत ! आप जैसे खबीस के लायक तो वह न थीं । भगवान जाने आपकी किस अदा पर रीक गई ।

“माँ-बाप ने जिसका हाथ पकड़ा दिया—।”

हाकिम परगना साहब बोल उठे—“यह बात नहीं है राजा साहब ! देख-सुनकर पसन्द करने के पश्चात् विवाह हुआ है ।”

“तो आखिर हमारे ठाकुर साहब में क्या दोष है—पढ़े-लिखे हैं, सरकारी नौकर हैं—पद भी ऊँचा है, और क्या चाहिए ।”

“और तो सब ठीक है पर जनाब का हुलिया उन से मेल नहीं खाता ।”

इसी प्रकार कुछ हँसी मजाक होता रहा। इस के पश्चात् सब लोग उठ कर दूसरे कमरे में गये। वहाँ मदिरापान होने लगा। शर्मा जी बेचारे बेगार में पकड़े गये की भौंति बैठे थे। हाकिम परगना ने पूछा—
“शर्मा जी डिन्क (मदिरापान) नहीं करते ?” राजा साहब बोल उठे—
“हमारे शर्मा जी बड़े सात्विक आदमी हैं। न डिन्क करते हैं, न मांस खाते हैं, न सिगरेट पीते हैं।”

“तो फिर जीवित किस लिए हैं ?” हाकिम परगना ने पूछा। इस पर बड़े जोर का कह कहा लगा। राजा साहब बोले—“बेल सेड (खूब कहा) डिण्टी साहब ! वाकई इन चीजों के बिना तो जीने का लुत्फ ही नहीं।”

“बताइये ! दुनिया के यही मजे हैं। खाओ-पियो मौज करो ! मरते समय अफसोस तो न हो कि हमने दुनिया में आकर कुछ नहीं किया।”

“तो क्या संसार में और कोई कर्त्तव्य नहीं है, डिण्टी साहब ?” शर्मा जी ने पूछा।

“हैं तो हुवा करें। मुख्य तो अपने शरीर का सुख और अपनी इच्छा पूर्ति है।”

“संसार के प्रति आपका कोई कर्त्तव्य नहीं ?” शर्मा जी ने पूछा।

“सो हम बराबर उसका पालन करते हैं। किसी को जेल भेजते हैं किसी को छोड़ते हैं, किसी को मारते हैं किसी को जिलाते हैं—यही हमारा कर्त्तव्य है।”

“इस के अतिरिक्त भी आपका कुछ कर्त्तव्य है।”

“वह कर्त्तव्य तो हिमालय की कन्दरा में बैठकर पूरा हो सकता है—क्षमा कीजिएगा, संसार के अन्दर रह कर तो नहीं हो सकता।”

“ठीक है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तथापहृत चेतसाम् ! व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते !”

“हाँ जरा इसका मतलब भी समझा दीजिए। हम संस्कृत वाजिबी ही वाजिबी जानते हैं।” डिप्टी साहब ने कहा।

“इस का मतलब यह है कि भोग तथा ऐश्वर्य में अनुरक्त लोगों की बुद्धि ठीक नहीं होती।” शर्मा जी ने कहा।

“न हो ! हम कुबुद्धि ही भले हैं-राजा साहब, क्या ख्याल है ?”

“आप ठीक फर्माते हैं डिप्टी साहब !”

“अर्जुन को बेवकूफ बना कर लड़वा दिया। एक ही चालाक और कूटनीतिज्ञ थे हमारे श्रीकृष्ण महाराज ! उन्होंने ने सोचा कि इस अन्धे बैल को घुमा कर जोतना चाहिए—तब यह चलेगा। सो वैसा ही हुआ। ऐसा पट्टी पढ़ाई कि सब सफाया करवा दिया।” डिप्टी साहब ने कहा।

“खूब ! खूब ! डिप्टी साहब ने बिल्कुल ठीक कहा।” राजा साहब बोले। राजा साहब की डिप्टी साहब की चापलूसी करते देख शर्मा जी को बड़ा बुरा लगा। इनकी इच्छा हुई कि किसी प्रकार वहाँ से टल जाँय। परन्तु कोई उपाय न था।

शर्माजी के अतिरिक्त अन्य सब नशे में उन्मत्त हो गये।

“अभी से गीता ज्ञान में पड़ गये तो बस छुड़ी है। अभी तो आप की खाने-खेलने की उम्र है शर्मा जी ! ऐसी भी क्या जल्दी पड़ी है। अरे यार राजा कुछ गाने-बजाने का सामान है ? यह रात कैसे कटेगी।”

“सब है घबड़ाओ नहीं।” राजा साहब ने कहा।

“मैंने सब प्रबन्ध कर रक्खा है डिप्टी साहब !” दलजीतसिंह कहा।

“अरे साहब आप तो मालिक ही हैं। राजा साहब बेचारे क्या क्या याद रखें।”

अन्य सब लोगों ने तो पीना बन्द कर दिया, परन्तु हाकिम मरगना साहब पेग पर पेग उड़ाते रहे। परिणाम यह हुआ कि आपे के बाहर हो गये। दलजीत सिंह के मुँह से निकल गया कि “बस अब न

“पीजिए, डिप्टी साहब !” यह सुन कर डिप्टी साहब आग हो गये । बोले—
“अबे तेरा दम क्यों निकला जाता है सिकत्तर ! बड़ी खैरख्वाही छोटता है ।”

अनिष्ट सिंह बोले—“क्या बेहूदा बकते हो—होश की बातें करो ।”

“मैं बेहूदा बकता हूँ । इस लौण्डे की भी इतनी मजाल कि मुझे कहे कि बेहूदा बकते हो । मैं फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट हूँ, इस जैसे लौण्डे मैने पढ़ा कर छोड़ दिये हैं । इस राजा पर घमण्ड करते हो । यह राजा नहीं हजाम है । इसको क्या वक्त है, कहो तो अभी मुझको धवा कर भेज दूँ । मैं फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट हूँ । ऐसे ऐसे राजा मेरे जूते साफ करते हैं ।”

“जबान सँभाल कर बात कर बे, वरुन: इतने जूते लगवाऊँगा कि कि सारी मेजिस्ट्रेटी भूल जायगा । जितनी तुझे तनख्वाह मिलती है उतने का मेरे यहाँ ईंधन जल जाता है ।”

“लाना तो मेरा पिस्तौल ! इस राजा साले की लाश गिरा कर ही चैन लूँगा ।” यह कर डिप्टी साहब खड़े हो गये परन्तु पैर डगमगा रहे थे । उधर राजा साहब भी खड़े हो गये दोनों ओर बाँहे चढ़ गईं । उपस्थित लोगों में से कुछ ने राजा साहब को संभाला कुछ ने डिप्टी साहब को । राजा साहब तो शान्त हो गये, परन्तु डिप्टी साहब आपे के बाहर थे—जो मुँह में आ रहा था बक रहे थे । अन्त को सब मिल कर उन्हें दूसरे कमरे में ले गये और पलंग पर लिटा दिया । पलंग पर लेटते ही डिप्टी साहब बेहोश हो गये । अनिष्ट सिंह बोले—“इसमें यही सख्त ऐब है ! बेतहाश पी जाता है ।”

सेक्रेटरी साहब ने कहा—“अरे साहब ऐसा भी पीना क्या । पीते हम लोग भी हैं लेकिन क्या मजाल जो जरा भी कायदे से बे कायदे हो जाँय ! अच्छे अच्छे लोगों के साथ बैठ कर पीते हैं । डिप्टी साहब तो, चूमा कीजिएगा, फोरी-चमारों की तरह पीते हैं ।”

“मैंने इनको कई बार समझाया, परन्तु बाज नहीं आते। होश में आयेंगे तब पकड़तायेंगे और भविष्य में सावधान रहने का वादा कर लेंगे, परन्तु जब पीने लगेंगे तब सब भूल जायेंगे।”

“ऊँची सोसायटी में तो यह धँसने भी न पाँय। हर जगह मेजि-स्ट्रेटी थोड़े ही चलती है।”

“ऐसी जगह पट्टा हाथ से भी नहीं छूता। अपनी दुर्बलता जानता है। अफसरों की उपस्थिति में कभी नहीं पीता। इतना गुण है। और इसी लिए बचे हुए हैं अन्यथा अभी तक टिकट कट गया होता।”

“अच्छा चलिये खाना खायें! यह तो अब खा-पी चुके।” राजा साहब ने कहा।

“इन्हें तो अब छेड़िये नहीं।”

“कल इतवार है—शिकार के लिए चलने की बात थी।”

“सवेरे तक तो दुष्ट हो जायेंगे।”

उपर्युक्त के एक सप्ताह पश्चात् एक दिन ज्योत्समा ने शर्मा जी से कहा—“शर्मा जी, मेरा एक काम कर दीजिएगा ।”

“अवश्य ! बताइये !”

“डिप्टी अनिरुद्ध सिंह के यहाँ एक चीज पहुँचानी है । उस दिन उनकी पत्नी आई थी ! उससे मुझे बड़ा स्नेह हो गया है । बड़ी समझदार और पढ़ी लिखी है ।”

“हाँ ! हाँ ! पहुँचा दूंगा ।”

“कार लेते जाइयेगा । कल सबेरे चले जाइयेगा और शाम को लौट आइयेगा ।”

“हाँ ! हाँ !”

“वहाँ अपनी कोठी है—वहीं ठहर जाइयेगा ।”

“वह सब हो जायगा ।”

“तो बस ठीक है ।”

दूसरे दिन छोटी रानी ने एक बरगडल दिया । शर्मा जी वह बरगडल लेकर लखनऊ चले दिये ।

लखनऊ पहुँच कर शर्मा जी ने ड्राइवरसे पूछा—“क्यों भई, पहिले काम कर लें तब कोठी चलें ?”

“जैसी आपकी इच्छा हो ! खाना तो कोठी ही पर खाइयेगा ?

“और कहाँ ठिकाना है ।”

“तो कोठी पर कहते चलें ! जब तक डिप्टी साहब के यहाँ से लौटेंगे तब तक खाना बन जायगा ।”

“यह बात ठीक है । लौटते ही खाना मिल जायगा, इन्तजार न करना पड़ेगा ।”

डिप्टी साहब के बंगले पर पहुँचे तो मालूम हुआ कि डिप्टी साहब कचहरी चले गये । नौकर से अन्दर सूचना भेजवाई । नौकर ने उन्हें एक कमरे में बिठाया और कहा—“मेम साहब अभी आती हैं ।”

शर्मा जी सोचने लगे—“इन हिन्दुस्तानियों पर भी क्या फिटकार है ! अंग्रेज बनने को मरे जाते हैं । अंग्रेज तो बनते नहीं, हिन्दुस्तानी भी नहीं रहते—दोनों दीन से जाते रहते हैं । यह दासता का परिणाम है । गुलाम की महत्वाकाँक्षी यही रहती है कि वह भी अपने मालिक जैसा बन जाय ।”

शर्मा जी इसी प्रकार की बातें सोच रहे थे कि अन्दर से स्त्री कंठ स्वर सुनाई पड़ा—“ब्वाय ! ब्वाय !” कुछ क्षण पश्चात् पुनः सुनाई पड़ा—“हम तुम से बोला था…………।” अन्तिम भाग सुनाई नहीं दिया ।

ब्वाय का कथन भी धीमे स्वर में होने के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं दिया । स्त्री कण्ठ पुनः बोला—“आयन्दा इस माफिक होगा तो फाइन (जुर्माना) किया जायगा । इस बार माफ किया—आगे से माफ नहीं होगा ।”

शर्माजी ने सोचा—“यह पूरी मेम साहब बनेंगी-मानेंगी नहीं ।”

इसी समय मेम साहब के पैरों का ‘कट—पट’ शब्द शर्माजी के कमरे की ओर आता सुनाई पड़ा । शर्माजी सावधान हो गये । सहसा मेम साहब कमरे में प्रविष्ट हुईं । शर्माजी उठ कर खड़े हो गये । दोनों की दृष्टि मिली । शर्माजी के मुख से निकला—“अरे !” मेम साहब बोली—“एँ !” और दोनों स्तब्ध रह गये । कुछ क्षण पश्चात् शर्मा जी बोले—“तुम ! स्नेहलता—!”

“तुम यहाँ कैसे मदन मोहन ?”

“मैं ? मैं राजा साहब के यहाँ ट्यूटर हूँ ।”

“अच्छा !” कह कर स्नेहलता कुर्सी पर बैठ गई ।

स्नेहलता का सिर खुला हुआ था । शर्मा जी ने देखा कि स्नेहलता के केश अंग्रेजी ढंग के पट्टे नुमा (बाब्ब) कटे हुए हैं । शरीर पर साड़ी और ब्लाउज—ऐसी ब्लाउज जिसमें कंधों तक दोनों बाहें नग्न थीं और कुत्ति का भी कुछ भाग दिखाई दे रहा था । स्नेहलता का वर्ण शुभ्र गौर था, बाँहें पुष्ट और सुझौल थीं अतः बाहों की नग्नता ने उसका सौंदर्य बढ़ा दिया था ।

“बैठ जाओ, खड़े क्यों हो ।” स्नेहलता ने कहा ।

शर्मा जी बैठ कर बोले—“तुमने इन डिप्टी साहब से विवाह किया है ? शर्माजी के स्वर में आश्चर्य की पुट थी ।

“हाँ ! क्यों ?”

“कुछ नहीं — ऐसे ही पूछा ।”

“तुमने इस प्रकार पूछा मानों मैंने कोई पाप किया है ।”

“पाप की कोई बात नहीं—केवल रुचि पर कुछ आश्चर्य हुआ ।

“रुचि ! क्यों डिप्टी साहब में ऐब क्या है ?”

“ऐब कोई नहीं ! कालेज में तुम्हारा आदर्श कुछ और था ।”

“वह सब लड़कपन की बातें थीं । हाँ, तुम अपना वृत्तान्त कहो ।”

शर्मा जी ने अपना सब वृत्तान्त सुना दिया । स्नेहलता ने अपना वृत्तान्त संक्षेप में सुनाया—“बी० ए० करने के पश्चात् तुरंत ही यह संबंध हो गया । पिता जी और माता जी दोनों ने संबंध पसंद किया—मैंने भी स्वीकृति दे दी ।”

“मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा था तुमने उसका उत्तर नहीं दिया । वह पत्र पहुँचा था ?”

“मुझे ठीक याद नहीं। कदाचित्त नहीं पहुँचा, पहुँचा होता तो मैं अवश्य उत्तर देती।”

“न पहुँचने का तो कोई कारण न होना चाहिये।”

“खैर ! कोई भी कारण हो—अब उससे क्या मतलब।” शर्मा जी ने छोटी रानी का भेजा हुआ बगडल दिया, उसी के साथ में एक बन्द लिफाफा था। स्नेहलता ने पत्र पढ़ कर मुस्कराते हुए कहा—“छोटी रानी से मेरा बड़ा स्नेह हो गया है। उन्हें भी तो तुम पढ़ाते हो।”

“हाँ ! तुम्हें कैसे पता लगा ?” शर्मा जी ने पूछा।

“वह स्वयं कह रही थी कि बच्चों के ट्यूटर से वह भी पढ़ती हैं। काफी अँग्रेजी जान गई हैं। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करती थी। मुझे क्या मालूम था कि तुम हो।”

कुछ देर बात करने के पश्चात् शर्मा जी बोले—“अच्छा तो अब जाऊँगा—कुछ उत्तर दोगी ?”

“क्यों, ठहरोगे नहीं ?”

“नहीं, आज शाम को ही लौट जाना है।”

“तुम्हारी पत्नीसे भी भेंट हुई थी। पत्नी तो तुम्हें अच्छी मिली। सुन्दर है, शिष्ट है। परन्तु विचार पुराने हैं।”

“मेरे अनुकूल हैं।” शर्मा जी गम्भीरता पूर्वक बोले।

“हाँ तुम भी तो दकियानूसी विचार के हो।” स्नेहलता ने हँसकर कहा। “अच्छा मैं उत्तर लिखे देती हूँ।”

यह कह कर स्नेहलता उठकर कट-पट करती हुई दूसरे कमरे में चली गई।

इस समय शर्मा जी का मन विचलित हो रहा था। स्नेहलता के प्रति उनका मृतप्राय प्रेम पुनः जीवित हो उठा। वह उन्हें अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ रही थी। स्नेहलता जिस वेश में थी उस वेश में अन्य स्त्री को

देखकर उनके हृदय में उसके प्रति, यदि घृणा नहीं तो चिढ़ अवश्य उत्पन्न होती परन्तु स्नेहलता के प्रति उनके हृदय में प्रेम उमड़ रहा था ।

कुछ देर में स्नेहलता ने एक बन्द लिफाफा लाकर शर्मा जी को दिया । जिस समय स्नेहलता उनके हाथ में लिफाफा देने लगी उस समय शर्मा जी की इच्छा हुई कि उसका हाथ पकड़कर घसीट लें और हृदय रें लगा लें, परन्तु उनका साहस न हुआ । अतः वह मन मसोसकर रह गये

चलते समय स्नेहलता बोली—“अब तो भेंट होती रहेगी ।”

“हाँ जब लखनऊ आऊँगा तब तो अवश्य ही भेंट होगी ।”

“मैं भी आया करूँगा ।”

“अब कब आओगी ?” शर्मा जी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

“आऊँगी—जल्दी ही आऊँगी । इसबार तुम्हारे यहाँ भी आऊँगी ।”

“बड़ी कृपा होगी ।”

शर्मा जी बिदा हुए । उनका चित्त अस्थिर था, मस्तिष्क केवल स्नेहलता की बात सोच रहा था ।

कोठी पर वापस आये तो भोजन तैयार था । यद्यपि शर्मा जी कं चूधा ने उनसे असहयोग कर दिया था तथापि उन्होंने किसी प्रकार भोजन किया । थोड़ी देर आराम करके, यदि वह आराम कहा जा सके, क्योंकि वह स्नेहलता की याद में इधर उधर करवटें बदलते रहे—वह लखनऊ रें घर की ओर वापस हुए ।

(२७)

लखनऊ से वापस आने के चार-पाँच दिन पश्चात् शर्मा जी का चित्त स्नेहलता को पुनः देखने के लिए व्याकुल हो उठा। लखनऊ में अपना निजी कार्य बता कर उन्होंने दो दिन की छुट्टी ली और रेल द्वारा लखनऊ जा पहुँचे। राजा साहब की कोठी में डेरा डाल कर दोपहर के समय डिप्टी साहब के बङ्गले पहुँचे। डिप्टी साहब कचहरी गये हुए थे—स्नेहलता अकेली थी। स्नेहलता ने पूछा—“कहो, इस बार क्या लाये ?”

“इस बार तो मैं अपने निजी काम से आया हूँ।”

“अच्छा ! दो चार दिन ठहरोगे ?”

“हाँ दो दिन ठहरूँगा। तुम उधर नहीं आईं ?”

“हाँ आऊँगी ! अगले सप्ताह अवश्य आऊँगी। ज्योत्सना याद करती होगी।”

“हाँ याद कर रही थीं। उन्हें भी तुम से स्नेह हो गया है। बड़ी रानी से भेंट हुई थी ?”

“हाँ ! उन से भी भेंट हुई थी, परन्तु उन में वह बात नहीं है जा ज्योत्सना में है। वैसे शिष्टाचार इत्यादि सब अच्छा था। पढ़ी-लिखी भी काफी मालूम हुई।”

“हाँ वह बहुत योग्य हैं; परन्तु कुछ विरक्त रहती हैं।”

“विराग का कारण क्या है?”

“राजा साहब कुछ मनचले हैं और छोटी रानी से अधिक स्नेह करते हैं।”

“मन चले से क्या तात्पर्य? क्या.....?”

शर्मा जी स्नेहलता का भाव समझ कर शीघ्रतापूर्वक बोल उठे—

“हाँ! स्वाभाव के कुछ लंपट हैं—प्रायः राजा लोग होते ही हैं।”

स्नेहलता केवल सिर हिला कर रह गई।

कुछ देर तक स्नेहलता राजा साहब के सम्बन्ध में पूछती रही। इस के पश्चात् कुछ देर कालेजजीवन पर वार्त्तालाप होता रहा। शर्मा जी बोले—“स्नेह, कालेज में तुमने हम से क्या क्या वादे किये थे—वे सब भूल गईं।”

स्नेहलता हँसकर बोली—“वह सब लड़कपन था शर्मा जी! कालेज जीवन में विद्यार्थी भविष्य के स्वप्न देखा करते हैं। वे काल्पनिक संसार बनाकर उस में बिचरण किया करते हैं। कालेज छोड़ने पर जब वास्तविकता का साक्षात् होता है तब आँखें खुलती हैं और पता लगता है कि संसार क्या है।”

“यह बात किसी हद तक यथार्थ है, परन्तु ऐसा भी नहीं है कि कालेज जीवन के समस्त स्वप्न निष्फल ही होते हों।”

“कभी कभी सफल भी हो जाते हैं; परन्तु निश्चयात्मकरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तुम अपने ही पर घटा कर देख लो। तुम जिस परिस्थित में हो क्या तुमने कभी इसका स्वप्न भी देखा था?”

“नहीं! प्रत्युत मैंने जो सोचा था उसके सर्वथा विपरीत हुआ।” शर्मा जी ने विषादपूर्ण स्वर में कहा।

“ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण के रहते हुए अब और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती।”

“हाँ-आँ बात तो ठीक कहती हो ।”

कुछ देर बातचीत करने के पश्चात् शर्मा जी बोले—“अच्छा अब चलो ! फिर मिलूँगा ।”

“अभी तो कल रहोगे ?”

“हाँ, कल रहूँगा ।”

“तो फिर मिलना ।”

“हाँ मिलूँगा, डिप्टी साहब से मिलना है ।”

“शाम को आना-सिनेमा चलेंगे ।”

“अच्छा !”

शर्मा जी उठकर विदा हुए, और कमरेके द्वार तक आये । अन्तिम द्वार पर पर्दा पड़ा हुआ था । पर्देके पास पहुँच कर उन्होंने स्नेहलताकी ओर घूम कर देखा । स्नेहलता उनके पीछे पीछे आई थी और उनसे लगभग दो फीट की दूरी पर थी । शर्मा जी ने घूम कर देखा तो स्नेहलता एक मधुर मुस्कान के साथ बोली—“संध्या समय आना अवश्य !” शर्मा जी ने उत्तर न दिया । कुछ क्षण स्नेहलता को स्थिर दृष्टि से देखते रहे । सहसा उन्होंने लपक कर स्नेहलता को अपने अङ्ग में ले लिया । स्नेहलता अपने को शर्मा जी के बाहुपाश से छुड़ाने का कृतम प्रयत्न करते हुए बोली—“हैं ! हैं ! यह क्या ?” इस से अधिक वह कुछ न बोल सकी क्योंकि शर्मा जी के अधरद्वय ने स्नेहलता के अधरोपर आक्रमण करके उसका बोल बन्द कर दिया ।

तृषार्त्ता जिस प्रकार शीतल जल का पान करता है उसी प्रकार शर्मा जी ने स्नेहलता का अधरमुखा पान किया । कुछ क्षण पश्चात् मानों उनकी निद्रा भङ्ग हुई । उन्होंने स्नेहलता को अपने बाहुपाश से मुक्त कर दिया और लाजित की भाँति कहा—“स्नेह ! मुझे क्षमा करना, मैं अपने आपे में नहीं रहा ।”

स्नेहलता मुसकुराकर बोली—“तुम तो बड़े आदर्शवादी हो मदन—
फिर यह आदर्शहीनता कैसी ?”

“मेरे जीवन का सब से बड़ा आदर्श तुम हो स्नेह ! तुम्हारे सामने
अन्य सब आदर्श निर्जीव से हो जाते हैं ।”

“तो क्या अब भी तुम्हें मुझ से प्रेम है मदन ?”

“इस जीवन में उसे अपने हृदय से निकाल सकूँगा इस में मुझे
सन्देह है ।”

“तब फिर तुमने विवाह क्यों किया ?”

“परिस्थिति से विवश होकर अनिच्छा से ।”

“अनिच्छा से !” स्नेहलता साश्चर्य बोली ।

“हाँ अनिच्छा से ! सुनोगी ?”

“यदि बताने में कोई हानि न हो ।”

“तो सुनो—” शर्माजी ने सब वृत्तान्त कह दिया । सब सुनने
के पश्चात् स्नेहलता बोली—“एक अबला का उद्धार करने के अभिप्राय से
तुमने जो किया वह उचित था । यदि मैं जानती कि तुम्हें मुझ से इतना
प्रेम है तो—खैर ! संघर्ष समय आओगे न ?”

“हाँ आऊँगा ।” कहकर शर्माजी कमरे के बाहर हो गये । इस
समय तीन बजने वाले थे ।

कोठा पहुँच कर शर्माजी अपनी शय्या पर जा लेटे । इस समय
उनको अपनी दुर्बलता पर आश्चर्य हो रहा था । वह सोच रहे थे कि आखिर
स्नेहलता में ऐसी कौनसी बात है जो उन्हें उन्मत्त बना देती है । ज्योत्सना
भी कम सुन्दरी नहीं है; परन्तु उसके प्रति उनके हृदय में कभी भी कोई
अन्यथा भाव उत्पन्न नहीं हुआ । उनकी अपनी पत्नी भी रूप लावण्य में
स्नेहलता से न्यून नहीं कही जा सकती परन्तु उसके प्रति भी उनका हृदय
कभी इतना विचलित नहीं हुआ । इनके अतिरिक्त उनका ‘परदारा मातृ-
वत्’ वाला आदर्श कहाँ विलीन हो गया । आज उन्हें पता लगा कि

लालसित वस्तुको सामने पाकर मनुष्य के आदर्श की इमारत किस प्रकार धराशायी हो जाती है। आज तक वह अपनी जिस आदर्श राशि को अपनी सब से बड़ी पूँजी समझते रहे—वह पूँजी सटोरिये की पूँजी के समान क्षण मात्र में हाथ से निकल गई !)

संध्या समय शर्माजी पुनः स्नेहलता के यहाँ पहुँचे। डिप्टी साहब कचहरी से आ गये थे। शर्माजी से मिलकर वह बड़े प्रसन्न हुए। प्रथम दर्शन में डिप्टी साहब के प्रति शर्माजी की जो धारणा हुई वह, अब शर्मा जी की समझ में, गलत थी ! डिप्टी साहब उन्हें अब बड़े अच्छे आदमी प्रतीत हुए। स्नेहलता बोली—“शर्माजी से सिनेमा चलने का वादा है।”

“तो तुम चली जाओ, मैं तो जा न सकूँगा।”

“क्यों ? अब आपको काम ही क्या है ?” शर्माजी ने पूछा। डिप्टी साहब किञ्चित् मुस्कराकर बोले—“आप समझते हैं कि मुझे कोई ऐसा विशेष कार्य नहीं रहता। मैं एक फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट हूँ शर्माजी, लेकिन एक क्लर्क का जीवन मेरे जीवन से कहीं अधिक अच्छा है। मेरी दिनचर्या सुनिये—प्रातःकाल चाय पीकर बाहर आ बैठता हूँ ! किस लिए ? लोग मिलने आते हैं। उनमें अधिकांश वे आदमी होते हैं जिन्हें हाकिम हुक्मामों से मिलने का व्ययसन होता है अथवा वे दलाल लोग जो यह मशहूर किये रहते हैं कि अमुक डिप्टी से उनके खास ताल्लुकात हैं। अतः जब कोई मुझ से काम निकालना चाहता है तो इन दलालों से मिलता है। इन लोगों से बात करने में कचहरी का समय हो जाता है।

“इनको विदा करके झटपट स्नान करता हूँ और जल्दी जल्दी खाना खाकर कचहरी पहुँच जाता हूँ। जब तक कचहरी में रहता हूँ तब तक दम मारने की फुरसत नहीं मिलती। डेरों कागज़ों पर दस्तखत करने पड़ते हैं। मुझे नहीं पता रहता कि उनमें क्या सोंप-बिच्छू हैं। पेशकार ने जो बता दिया वह समझकर दस्तखत कर दिये। फिर रुकदमे सुनने पड़ते हैं। मुकदमे के समय सबके बयानों का तरजुमा करके लिखना पड़ता

है। बयान हिन्दुस्तानी में होते हैं, मैं उनका अनुवाद करके अँग्रेजी में लिखता हूँ। साथ ही वकीलों से खोपड़ी भी लड़ाता रहता हूँ। इस बीच मैं यदि कलक्टर साहब का बुलावा आ गया तो लश्च के नाम से जो थोड़ा अवकाश मिल जाता है वह भी ग्रायब !

“कचहरी से वापस आकर इतना थक जाता हूँ कि कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। रात में खाना खाकर फैसला लिखने बैठता हूँ—ग्यारह-बारह बजे तक उससे फुरसत पाकर सुअर की तरह सो रहता हूँ। यदि कोई पब्लिक जुनूस निकलने वाला हुआ और कलक्टर साहब का हुक्म आ गया कि जुनूस में जाओ तो फिर क्या कहना है—दिन भर का थका, घोड़े पर सवार टिकटिक करता हुआ जुनूस के साथ बँधा फिरा करता हूँ।”

“पुलीस का प्रबन्ध होते हुए आपकी जुलूस में क्या आवश्यकता रहती है ?”

“यदि शान्ति भंग हो जाय तो उस समय गोली चलवाने के लिए तो कोई होना चाहिये—विना किसी मेजिस्ट्रेट की आज्ञाके पुलिस स्वच्छा से गोली नहीं चला सकती। अतः इस जल्हादी काम के लिए हम भेजे जाते हैं। आप समझते हैं यह काम कितना कठिन है। यदि शान्ति भंग हुई और हमने लाठीचार्ज न कराया अथवा गोली न चलवाई तो हम नालायक—मेजिस्ट्रेट की योग्य नहीं। और यदि कहीं लाठीचार्ज करा दिया अथवा गोली चलवा दी तो उसके औचित्य का ब्योरा देते देते नाक में दम ! जब जनता और समाचार पत्र शोर मचाने लगते हैं तब अफसर हमारी गर्दन दबाते हैं कि बताओ ऐसा क्यों किया।

“इधर जनता की ओर से रिश्वत के इतने प्रलोभन आते हैं कि कोई योगी ही उनसे बच सकता है। यदि रिश्वत लेओ तो उचितानुचित कार्य करो, फिर भी यह खटका लगा रहता है कि कहीं धर न लिये जाँय ! यदि रिश्वत न लेओ तो श्रीमती जी की खरी-खोटी सुनो ! क्यों कि केवल

वैतनसे इनका खर्च पूरा नहीं होता। अभी उस दिन मैंने एक व्यक्ति का एक हजार रुपया वापस कर दिया तो स्नेह मुझ से लड़ने लगी कि आई हुई लक्ष्मी का अनादर करते हो।”

“तो मैंने कौन अनुचित बात कही थी। यदि कोई स्वेच्छा से लाकर देता है तो उसे क्यों लौटाया जाय— यह तो बुद्धिमानी नहीं है।” स्नेहलता तुनककर बोली।

“परन्तु तुम्हें क्या मालूम कि उन एक हजार के बदले में मुझे क्या करना पड़ता—सत्य के गले पर छुरी फेर कर असत्य का पक्ष लेना पड़ता।”

“ऐसे हरिश्चन्द्र बनने से काम नहीं चलता।” स्नेहलता ने कहा।

“सुन लिया आपने शर्मा जी? कहने को मैं एक फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट हूँ परन्तु एक क्लर्क का जीवन भी मुझ से अच्छा है। तो आज मैं बहुत थका हुआ हूँ—काम अधिक करना पड़ा। रात में एक फैसला भी लिखना है—कल उसके देने की तारीख है। इस लिए आप दोनों हो आवें।”

“इनका काम हाँ नहीं सिमटता! और भी तो डिप्टी हैं।” स्नेहलता बोली।

“हाँ तो यदि मैं भी कामको बकाया में डालता रहूँ तो मुझे भी फुर्सत मिल सकती है; परन्तु मैं अपना काम बाकी नहीं रखता—जो सामने आया वह हाथ के हाथ निबटा दिया। काम इतना अधिक रहता है कि न्यायतः दो आदमी हाने चाहिएँ। सरकार एक आदमी से दो का काम लेकर तनख्वाह देती है, तब बताइये फुर्सत कैसे मिले?”

“बात तो आप कुछ ठीक ही कहते हैं।” शर्मा जी हँसते हुए बोले।

डिप्टी साहब सिनेमा नहीं जा सके। स्नेहलता शर्माजी को साथ लेकर चली गई।

(२८)

स्नेहलता और शर्मा जी कार में बैठ कर सिनेमा चले। स्नेहलता पिछली सीट पर थी और शर्मा जी डाइवर के बगल में बैठे हुए थे। कुछ क्षण दोनों मौन बैठे रहे। सहसा शर्मा जी ने स्नेहलता से अंग्रेजी में कहा—“क्षमा करना स्नेह, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।”

स्नेहलता ने अंग्रेजी में ही पूछा—“क्या बात है पूछो।”

“नाराज तो न होगी?”

“नहीं!”

“तुमने क्या समझ कर इनसे विवाह किया?”

“क्या समझकर विवाह किया! क्यों, इनमें दोष क्या है?”

“दोष चाहे न हों; परन्तु तुम्हारे योग्य नहीं हैं।”

“क्यों? फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट हैं!”

“फर्स्ट क्लास मेजिस्ट्रेट होना क्या ऐसा गुण है कि अन्य किसी बात के देखने की आवश्यकता नहीं।”

“अन्य कौन सी बातें।”

“सूरत-शकल, स्वभाव, स्वास्थ्य इत्यादि बातें भी तो देखी जाती हैं। सूरत-शकल तो, तूमा करना, तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है। इनके साथ बाहर निकलते तुम्हें लज्जा मालूम होती होगी।”

“हाँ सूरत-शकल अधिक अच्छी नहीं है—यह मैं मानती हूँ, परन्तु मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।”

“स्वास्थ्य भी कुछ अधिक अच्छा नहीं मालूम होता। चेहरे पर पीलापन, कान्तिहीन सूखा सा दिखाई पड़ता है। शरीर से भी कुछ अधिक बलवान नहीं दिखाई पड़ते। वयस में भी कम से कम पन्द्रह वर्ष का अन्तर है।

“तेरह वर्ष का ! मेरी वयस बाइस वर्ष की है उनकी पैंतीस वर्ष की।”

“खैर, तेरह ही सही ! तब भी अधिक है। अब रहा स्वभाव—उसके सम्बन्ध में अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। वैसे मुझे तो स्वभाव अच्छा ही लगा—रिश्वत नहीं लेते यह अच्छी बात है।”

“यह अच्छी बात है ? यह तुमने खूब कही। जिसे मैं दोष समझती हूँ उसे तुम अच्छी बात कहते हो !”

“रिश्वत न लेना तो अच्छा ही कहा जाता है।”

“केवल सिद्धान्त रूप से ! व्यवहार में रिश्वत न लेना अच्छा नहीं कहा जा सकता। रिश्वत लेकर किसी का भला ही करते हैं।”

“परन्तु न्याय का गला घोटकर।”

“न्याय है कहाँ ? खामखाह एक ढोंग बना रखा है। सिफारिश भी तो चलती है। यह रिश्वत नहीं लेते परन्तु सिफारिश तो मान लेते हैं। सिफारिश मानकर पक्षपात करने से भी न्याय का गला घुटता है। तब यदि कुछ अपना लाभ करके वही काम किया तो इसमें क्या बुराई है।”

सिनेमा भवन आ गया। दोनों बालकोनी में जा बैठे। खेल

आरम्भ होने में कुछ देर थी—अतः पुनः वार्त्तालाप होने लगा । जहाँ दोनों बैठे थे वहाँ कुछ एकान्त था । शर्मा जी बोले—“हाँ ! उम समय क्या बात चल रही थी ।”

“वही रिश्वत लेने की ! सच बात तो यह है कि इन्हें रिश्वत लेने का ढँग ही नहीं मालूम ! अन्य मेजिस्ट्रेट भी तो हैं । वे बराबर लेते हैं और इस युक्ति से लेते हैं कि किसी को पता भी नहीं चलता ।”

“क्या बच्चों की सी बात करती हो । पता सब चल जाता है, परन्तु प्रमाण नहीं मिलता—यह कह सकती हो । जो हाकिम रिश्वत लेता उसे सब जान जाते हैं । जो रिश्वत देते हैं वे ही प्रसिद्ध कर देते हैं ।”

“तो बिना प्रमाण के कोई कर क्या सकता है ?”

“हाँ, यह कह सकती हो । परन्तु अच्छे आदमी का अन्तःकरण भी तो विरोध करता है ।”

“अच्छे आदमियों का मत कहो ! दुर्बलहृदय आदमियों का, डरपोकों का । उन के मस्तिष्क के अर्द्ध चैतन्य भाग में रिश्वत लेने की जोखिम का भय समाया रहता है इस वास्ते रिश्वत लेने का साहस नहीं होता—लोग समझते हैं कि बड़े भले आदमी हैं ।”

“हाँ ऐसा भी होता है, परन्तु ऐसे लोग भी हैं जो रिश्वत लेना अधर्म तथा सरकार के प्रति विश्वासघात समझते हैं ।”

“होंगे ! संसार में बेबकूफों की संख्या अधिक है । जब सभी लेते हैं अथवा अधिकांश लेते हैं तब कुछ का धर्म तथा सरकार के प्रति स्वामि-भक्ति का विचार करके न लेना—मैं तो इसे बुद्धिहीनता समझती हूँ ।”

शर्मा जी ने सोचा—“ऐसे विचार की अर्द्धाङ्गिनी के रहते हुए भी जो रिश्वत नहीं लेता वह अपने सिद्धांत का पक्का है और निश्चय ही उसकी आत्मा बलवान है ।” स्नेह से इस सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करना व्यर्थ समझ कर शर्मा जी ने वह प्रश्न किया जो उन के मन में प्रमुख था और

जिस के पूछने के लिए शर्मा जी ने यह भूमिका बाँधी थी। वह बोले—
“अच्छा और सब बातें जाने दो, केवल एक बात का जवाब दो।”

“पूछो!”

“ठीक उत्तर दोगी?”

“जहाँ तक सम्भव होगा।”

इसी समय और धेरा हो गया और पर्दे पर फिल्म चलने लगा।
शर्मा जी बोले—“अच्छा! इन्टरवल में बात करेंगे।

इन्टरवल आया! स्नेह बोली—“हाँ क्या बात पूछना चाहते थे?”

“मैं यह जानना चाहता था कि तुम्हें अपने पति से प्रेम है?”

स्नेह विचार में पड़ गई। शर्मा जी उस के मुख को ध्यानपूर्वक देखते रहे। कुछ क्षण पश्चात् स्नेह बोली—“क्या पति से प्रेम होना आवश्यक है?”

“मेरी तो धारणा ऐसी ही है कि एक अच्छी पत्नी अपने पति से प्रेम करती है।”

“यह मत कहो, प्रत्युत यह कहो कि जो पत्नी अपने पति से प्रेम करती है उसी को तुम पुरुष अच्छी पत्नी मानते हो।”

“हम अच्छा पति भी उमी को मानते हैं जो अपनी पत्नी से प्रेम करता है।”

“परन्तु व्यवहार में तुम लोग अपने इस मत की उपेक्षा करते हो। अन्यथा संसार में बहुविवाह की प्रथा तथा बेश्याओं का अस्तित्व ही न होता।”

शर्मा जी सोचने लगे—“यह तो बड़ी तेज है, हमारी कोई बात जमने नहीं देती।” स्नेह से उन्होंने कहा—“तो इस से यह निष्कर्ष निकला तुम अपने पति से प्रेम नहीं करती।”

“अब तुम जो समझो!”

शर्मा जी नीरव होकर विचार मग्न हो गये ।

खेल पुनः आरम्भ हुआ और समाप्त हो गया । दोनों खेल की आलोचना करते हुए बाहर निकले ।

जिस समय ये दोनों बँगले पहुँचे उसी समय भोजन का उपक्रम होने लगा । डिप्टी साहब बोले—“शर्मा जी भोजन कर के जाइयेगा ।”

“भोजन तो वहाँ भी तैयार होगा ।”

“यहाँ तैयार है तब यहीं खाइये—यहाँ हम लोगों का साथ होगा—वहाँ अकेले रहियेगा ।”

“हाँ यह बात तो है । अच्छी बात है, यहीं खालूँगा ।”

“कैसा खेल था ? वही पुराना चरखा होगा—एक प्रेमी, एक प्रेमिका और ! एक खलनायक ! अन्त में खलनायक की पराजय और प्रेमिक प्रेमिका का विवाह !”

शर्माजी हँसकर बोले—जी हाँ ! था तो कुछ ऐसा ही सा ! परन्तु मनोरंजन के लिये अच्छा था ।”

“मैंने तो देखना छोड़ दिया ! एक से कथानक, सेक्स अपील, भाग-दौड़ ! बस यही रहता है । हाँ कुछ फिल्म तो अवश्य अच्छे बन गये हैं, शेष सब ऐसे ही हैं ।”

“हमारे देशके फिल्म निर्माता साहित्य और कलाकी उपेक्षा करके केवल पैसे पैदा करने के लिए फिल्म बनाते हैं । ये समाज के लिए वैसे ही हैं जैसे कि कोकेन बेचने वाले, जुआ खेलाने वाले इत्यादि ! अपना लाभ करने के लिए ये जनता की रुचि को बिगाड़ते हैं ।”

भोजन के समय भी फिल्म पर बात होती रही । डिप्टी साहब के विचारों को सुनकर उनके संबंध में शर्मा जी का मत बहुत अच्छा होगया । अब वह डिप्टी साहब को एक अच्छा आदमी समझने लगे ।

शर्मा जी विदा हुए स्नेह उन्हें द्वार तक पहुँचाने आई । द्वार पर-

पहुँचकर सहसा स्नेह ने शर्माजी के गले में बाँहें डाल कर कहा—“कल आना अवश्य ।”

शर्माजी ने उसे हृदय से लगा लिया ।

वह कोठी की ओर जा रहे थे और स्नेह के व्यवहार का मन ही मन आनन्द ले रहे थे । सहसा उनके मुख से निकला—“एँ !” और एक क्षण के लिए वह खड़े हो गये और अपने ही आप बोले—“अच्छा, यह बात है । स्नेह मुझ से अनुचित संबंध स्थापित करना चाहती है !” यह विचार आते ही उनका मस्तिष्क उत्तप्त हो उठा । अब उनकी समझ में आया कि स्नेह ने डिप्टी साहब से केवल सुखपूर्वक रहने के अभिप्राय से विवाह किया है—प्रेम के कारण नहीं । प्रेमाचार के संबंध में उसने अपने को स्वाधीन रखा है ।

शर्मा जी उन लोगों में से थे कि स्त्री का प्रेमप्रदर्शन अथवा गले पड़ना उनके मन में ग्लानि उत्पन्न करता था—चाहे वह स्त्री कितनी ही रूपवती हो । वह स्त्री में लज्जा तथा संकोच को पसन्द करते थे । स्त्री में पुरुष जैसी धृष्टता उन्हें रुचिकर न थी ।

शर्मा जी खिन्न चित्त लेकर कोठी पहुँचे । वहाँ पहुँच कर उन्हें पता लगा कि राजा साहब भी आये हुए हैं । कोठी के एक नौकर से उन्होंने पूछा—“राजा साहब कब आये ?”

“शाम को सात बजे के करीब आये थे ।”

“और कोई साथ है ?”

“खाली दो अर्दली ।”

“कहाँ गये हैं ?”

“मालूम नहीं । यहाँ आये, थोड़ी देर ठहरे । शौचादि गये इसके बाद फिर मोटर पर कहीं चले गये ।

शर्माजी की विचार धारा बदल गई । वह राजा साहब के संबंध में सोचते हुए अपने कमरे में चले गये ।

(२९)

रात में राजा साहब के देर से लौटने कारण शर्मा जी की उन से भेंट न हो सकी । सबेरे चाय के समय राजा साहब ने शर्मा जी को बुलवाया ।

“कहिये शर्मा जी ! आपका काम हो गया ?”

“आज हो जायगा । अभी शाम तक की छुट्टी है ।”

“छुट्टी की कौन सी बात है । जब तक काम न हो आप रह सकते हैं ।” राजा साहब ने मुस्कराकर कहा ।

“प्राइवेट सेक्रेटरी साहब नहीं आये क्या ?” शर्मा जी ने पूछा ।

“नहीं ! वह भी छुट्टी लेकर गये हैं ।”

“तब तो श्रीमान को बड़ी असुविधा हो रही होगी ।”

“नहीं जी ! ऐसी कोई विशेष असुविधा नहीं है । फिलहाल तो आप यहाँ हैं ही, कोई काम होगा तो आप को कष्ट दिया जायगा ।”

“मैं तो आपका आदमी हूँ—कष्ट की कौन सी बात है ।”

ग्यारह बजे के लग भग राजा साहब अकेले ही मोटर लेकर चले, गये, खाना भी नहीं खाया । शर्मा जी ने रसोइये से पूछा—“राज साहब भोजन करके नहीं गये क्या ?”

“नहीं ! उन्होंने ने पहिले ही मना करवा दिया था । यह तो आप के लिए बना है ।”

“राजा साहब कही और भोजन करेंगे ?”

“हाँ, कही न कहीं तो करेंगे ही । किसी के यहाँ दावत होगी या, होटल चले जाँयेंगे ।”

शर्मा जी ने भोजन किया । भोजन कर के लेट रहे । परन्तु चैन न पड़ा ! स्नेहलता से मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई । अतः कपड़े पहिन कर डिप्टी साहब के बंगले पहुँचे । वहाँ पहुँच कर ज्ञात हुआ कि स्नेहलता कही गई हुई है । कहाँ गई हैं यह पता नहीं ।

“क्या अकेली गई हैं ?” शर्मा जी ने नौकर से पूछा ।

“नहीं ! राजा साहब के साथ गई हैं ।”

शर्मा जी चौंक पड़े । “किन राजा साहब के साथ ?” शर्मा जी ने माथे पर बल डालकर पूछा । नौकर ने शर्मा जी के राजा साहब का नाम लिया । अब तो शर्माजी के विस्मय का ठिकाना न रहा । उन्होंने पूछा—
“क्या राजा साहब दस बार यहाँ आये ?”

“नहीं ! एक बार पहिले भी हो गये हैं । डिप्टी साहब से दोस्ताना है ।”

शर्माजी चुपचाप वहाँ से लौट पड़े, परन्तु उनका रक्त गर्म हो गया “ स्नेहलता राजा साहब के साथ गई है । राजा साहब के साथ कोई अर्दली नहीं, ड्राइवर तक नहीं, कार स्वयं ड्राइव करके ले गये हैं । कुछ दाल में काला अवश्य है ।”

शर्माजी राजा साहब के चरित्र को समझते थे ।

शर्मा जी कांटा लौट आये । दोपहर का एक बज चुका था । वह कपड़े उतार कर पलंग पर लेट रहे; परन्तु उनका मन अत्यंत विचलित हो रहा था । वह सोचने लगे—“क्या स्नेहलता इतनी गिरी हुई स्त्री है ? डिप्टी साहब कैसे पुरुष हैं जो उन्होंने स्नेह को इतनी स्वाधीनता दे रखी

है। आदमी तो बड़े समझदार और सज्जन है। क्या स्नेह का उन पर ऐसा प्रभाव जम गया है कि वह उसके किसी भी उचितानुचित कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकते? अथवा राजा साहब से अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने स्नेहलतारूपी पाश में राजा साहब को फँसाया है? परन्तु डिप्टी साहब तो रिश्वत लेना भी बुरा समझते हैं तब ऐसा घृणित कार्य वह कैसे कर सकते हैं?’ इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उनके मन में उठ रहे थे; परन्तु उन्हें अपने आपसे किसी भी प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं मिल रहा था।

तीन बजे के लगभग राजा साहब वापस आये। उनके आगमन की सूचना पाकर शर्मा जी शीघ्रतापूर्वक उनके पास पहुँचे। राजा साहब एक कुर्सी पर अर्द्धशयनावस्था में विराजमान थे। एक नौकर उनके मोझे उतार रहा था, दूसरा उनका उतारा हुआ कोट अलमारी में टाँगने जा रहा था। शर्माजी को देखकर राजा साहब मुस्कराते हुए बोले—“क्या आराम कर रहे थे शर्मा जी?”

“जी हाँ श्रीमान्!”

राजा साहब के हाव-भाव से शर्मा जी को ज्ञात हुआ कि वह शराब पिये हुए हैं। शर्मा जी का हृदय डूबने लगा। शराब और स्नेहलता! सर्वनाश! शर्मा जी का सिर चकराने लगा। बड़ी कठिनता से अपने को सँभाल कर वह बोले—“आज्ञा हो तो मैं जरा घूम आऊँ।”

“वेशक! वेशक! शौक से जाइये! आप तो लुट्टी पर हैं। और आवश्यकता हो तो अभी एक-दो दिन और ठहर जाइयेगा।”

“श्रीमान् क्या चले जायेंगे?”

“हाँ मैं तो शायद आज शाम तक चला जाऊँ! जरा डिप्टी साहब से मिलना है। उनसे मिल कर चला जाऊँगा।”

“कौन डिप्टी साहब, हाकिम परगना?” शर्माजी ने अनजान बन कर पूछा।

“नहीं ! अनिच्छा सिंह ! अच्छे आदमी हैं । मुझे उनसे कुछ स्नेह हो गया है ।”

“हाँ, श्रीमान् उनसे मिलेंगे तो स्नेह के कारण ही मिलेंगे-और श्रीमान् का उनसे कौन स्वार्थ है ।”

राजा साहब शर्माजी के व्यंग्य को न समझ कर हँसते हुए बोले—
“मेरा उनसे कौन स्वार्थ । केवल स्नेह के कारण मिलता हूँ ।”

“मैं भी उनसे मिल चुका हूँ ।”

“अच्छा ! ऐसे ही या किसी काम से ?”

“ऐसे ही ! वह जब हमारे यहाँ गये थे तो उन्होंने कहा था कि कभी लखनऊ आओ तो मिलना ।”

“अच्छे आदमी है ।”

“हाँ मालूम तो अच्छे ही पड़ते हैं ।”

शर्मा जी अपने कमरे में लौट आये उनके हृदय में राजा साहब के प्रति विद्वेषाग्नि उत्पन्न हो गई । उनकी इच्छा थी कि संध्या समय स्नेहलता से मिले, परन्तु वह सुन चुके थे कि राजा साहब डिप्टी साहब से मिलने जायेंगे । अतः वह डिप्टी साहब की ओर न जाकर सिनेमा चले गये । सिनेमा में बैठे तब भी उनका भस्तिष्क स्नेह तथा राजा साहब के संबंध में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न कर रहा था । सामने पर्दे पर फिल्म चल रहा था, परन्तु शर्मा जी की समझ में वह कुछ भी न आ रहा था ।

सिनेमा समाप्त होने पर जब शर्माजी कोठी लौटे तो उन्होंने पहिला प्रश्न यह किया—“राजा साहब चले गये ?”

कोठी के नौकर ने कहा—“हाँ यहाँ से तो चले गये ।”

“क्या कह गये हैं ।”

“हाँ ! दोनों अर्दली भी साथ गये ।”

दूसरे दिन भोजन कर के दोपहर के समय शर्मा जी स्नेहलता के

पास पहुँचे। शर्मा जी ने बैठते ही कहा—“कल तो राजा साहब के साथ खूब झूमीं ! कहाँ गई थीं ?”

स्नेहलता की भ्रुकुटी चढ़ गई। उसने कहा—“राजा साहब के यहाँ रहके भी तुम्हें शिष्टाचार न आया। बड़े आश्चर्य की बात है।”

“क्या मतलब ? मैं समझा नहीं।” शर्मा जी बोले।

“किसी की ‘प्राइवेट’ बात जानने की अनधिकार चेष्टा करना अशिष्टता है।”

“किसी की ! मेरे लिए तुम्हारी गिनती ‘किसी’ में नहीं है। मैं तुम पर अपना अधिकार समझता हूँ।”

“परन्तु इतना नहीं कि मैं उसे अनधिकार समझूँ।”

शर्मा जी आँठ चबाते हुए बोले—“स्नेह ! मैं देख रहा हूँ कि तुम विनाश के पथ पर जा रही हो।”

स्नेहलता खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसते हुए बोली—“विनाश के पथ पर ! आज तुम पुनः व्यास गद्दी पर आसीन हो गये। तुम पुरुष लोग कितने स्वार्थी हो। जब तक स्त्री तुम्हारे अनकूल रहती है, तुम्हारी आज्ञा और इच्छा का पालन करती है तब तक वह चाहे जो करे, वह ठीक रास्ते पर है; परन्तु जहाँ उसने अपनी इच्छा से, अपने हृदय की प्रेरणा से कोई काम किया और वह तुम्हारे प्रतिकूल पड़ा, बस तुम लोग ‘विनाश’ ‘पतन’ अधर्म की हाँक लगाने लगते हो। हम स्त्रियों की तो प्रत्येक दशा में मिट्टी पलीद है। वही कहावत है कि ‘जिसके लिए चोरी करें वही कहे चोर।’ पुरुष हमें चोरी करने के लिये बाध्य करते हैं और फिर कहते हैं कि ‘तुम चोर हो।’ क्यों ? यही आप लोगों का न्याय है ?”

“तुम व्यक्तियों की बात करती हो। ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जो तुम्हारे कथनानुसार व्यवहार करते हों; परन्तु पुरुष जाति सामूहिकरूप से ऐसे आचरण को बुरा ही समझती है।”

“यह बात भी बड़ी विचित्र है कि सामूहिक रूप से पुरुष जिसे बुरा समझते हैं व्यक्तिगत रूप से उसे बुरा नहीं समझते। समूह व्यक्तियों से ही बनता है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समुदाय होगा। कमजोर सूत का बना हुआ कपड़ा कभी मजबूत नहीं हो सकता।”

शर्मा जी किञ्चित् उत्तेजित हो कर बोले—“क्या व्यर्थ की बातें बक रही हो।”

“व्यर्थ की बातें ! तुम्हारे विरुद्ध पड़ती हैं इस लिए व्यर्थ की बातें हैं। मन्त्र परसे कुछ कहना, पुस्तकों में कुछ लिखना और आचरण उसके विपरीत करना और उस पर तुरीय यह कि सारा दोष स्त्रियों की खोपड़ी पर लादना। इस कपटवेश का कोई ठिकाना है। परन्तु अब स्त्रियाँ पुरुषों के इस कपटवेश को जान गई हैं। समझ गई हैं कि पुरुष स्त्री को बन्धन में रख कर स्वयं बन्धन मुक्त रहना चाहता है। इसी कारण अब स्त्रियाँ पुरुषों के बताये हुए मार्ग पर आँखें बंद करके नहीं चलना चाहतीं। वे अपना मार्ग स्वयं बनायेंगी।”

“पुरुष के बताये हुए मार्ग पर चल कर स्त्री की गौरव-वृद्धि ही हुई है।” शर्माजी ने कहा।

“क्या जाने वृद्धि हुई या हास ! मार्ग बनाने वाले भी तुम्हीं, वृद्धि-हास का निर्णय करने वाले भी तुम्हीं—जिसमें चाहो वृद्धि बता दो, जिसमें चाहो हास समझा दो।”

“खैर मैं इस बिषय पर वाद-विवाद नहीं करना चाहता ! परन्तु मैं तुम्हें सावधान अवश्य कर देना चाहता हूँ।”

“काहे के लिये सावधान करते हो ?”

“राजा साहब के प्रति सावधान करता हूँ ?”

“केवल राजा साहब के प्रति ? अपने प्रति नहीं ?” स्नेहलता ने व्यंग्य किया।

शर्माजी इस व्यंग्य की चोट से तिलमिला गये। कुछ क्षण तक मूर्ति बने बैठे सोचते रहे तदुपरान्त लज्जा तथा खेद पूर्ण स्वर में बोले—“ठाक कहती हो स्नेह ! मेरी भूल थी, क्षमा करना।”

यह कह कर शर्माजी उठकर चलने लगे। स्नेहलता भी उठ खड़ी हुई और लपक कर शर्माजी से लिपट गई—“इतने भावुक मत बनो मदन ! यह जब्त भावुकताका समर्थन नहीं करता। हम संसार में आनन्द तथा सुख लूटने के लिए आये हैं—भावुक बनकर क्लेश भोगने के लिये नहीं। अतः व्यर्थ झगड़ों का त्याग करके जीवन का सुख लूटो।”

शर्माजी उसे अपने से अलग करने का प्रयत्न करते हुए बोले—“पर यदि नारी उपदेश नहीं सुनना चाहती तो उसे उपदेश देने का भी कोई अधिकार नहीं है।”

“नारी उपदेश के तो तुम पुरुष पात्र ही नहीं हो, और न नारी तुम्हें उपदेश देना आवश्यक समझती है। तुमसे काम लेने के लिये नारी के पास दूसरी शक्ति है—यदि वह शक्ति असफल होती है तो फिर नारी के पास तुम पर विजय पाने का कोई साधन नहीं रह जाता। और उपदेश का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। पुरुष उपदेश देना जानता है, लेना नहीं जानता।”

शर्मा जी ने कोई उत्तर न दिया—स्नेहलता के बाहु पाश से अपने को मुक्त करके वह शीघ्रतापूर्वक कमरे के बाहर हो गये।

(३०)

कोठी पर आकर शर्मा जी ने कुछ जलपान किया । इसके पश्चात् हाकिम परगना के बंगले पहुँचे । हाकिम परगना कचेहरी से वापस आकर आराम कुर्सी पर लेटे अँग्रेजी का समाचार पत्र पढ़ रहे थे । शर्मा जी को देखते ही प्रसन्न होकर बोलें—“आइये, शर्माजी ! कहिये, सब कुशल !”

“सब आपकी कृपा है । आप तो आनन्द पूर्वक हैं ?” शर्माजी ने बैठते हुए कहा ।

“हाँ, आनन्द ही है । राजा साहब भी आये हैं क्या ?”

“आये थे, कल चले गये !”

“आप उन्हीं के साथ आये होंगे ?”

“जी नहीं ! मैं तो अपने काम से आया हूँ ।”

“अच्छा ! इस बार राजा साहब मुझ से नहीं मिले । वैसे जब आया करते थे तो यथा सम्भव मिलते अवश्य थे ।”

“हाँ ! मौज है !”

“इधर अनिरुद्धसिंह से अधिक घनिष्टता हो गई है ।” हाकिम परगना ने मुस्कराकर कहा ।

शर्मा जी को वह मुस्कान कुछ रहस्यमय प्रतीत हुई । उन्होंने पूछा—“आप मुस्कराये क्यों ?”

“कुछ नहीं । वहाँ राजा साहब का स्वागत-सत्कार करने के लिए

अनिष्टसिंह की सुशिक्षता पत्नी है। बड़े शिष्टाचार की स्त्री है। अनिष्ट की किस्मत जाग गई।”

“हाँ ! है तो बड़ी चतुर और समझदार !”

“सूरत शकल की भी अच्छी है।”

“वह तो कहना ही क्या है।” शर्मा जी ने साँस छोड़कर कहा।
कुछ क्षण दोनों मौन रहे। शर्मा जी पुनः बोले—“अभी स्वभाव में अल्हड़पन बहुत है। डिप्टी साहब को कुछ अकुश रखना चाहिए। परन्तु मैंने देखा कि वह बिल्कुल निरंकुश हो रही है।”

“अच्छा तो आप भी गये थे ?”

“हाँ गया था। डिप्टीसाहब ने तो उसे पूरी स्वाधीनता दे रखी है।”

“हाँ भई दूसरा विवाह है। स्त्री पढ़ी-लिखी योग्य मिली है। उस पर डिप्टी साहब का रुआब नहीं जम सकता।”

“रुआब न जमे परन्तु कुछ अंकुश तो होना ही चाहिए।” शर्मा जी ने कहा।

“आपने ऐसी क्या बात देखी जिससे आप इस नतीजे पर पहुँचे ?”

शर्मा जी की इच्छा हुई कि राजा साहब के साथ स्नेहलता के धूमने-फिरने की बात कह दें। परन्तु फिर कुछ सोच कर उन्होंने इरादा बदल दिया। अतः वह बोले—“उनके पारस्परिक व्यवहार से मेरा ऐसा विचार हुआ।”

“परन्तु आप को यह न भूल जाना चाहिए कि जो व्यक्ति इस अवस्था में ऐसी तन्त्रिणी से विवाह करता है वह बहुधा पत्नी से दबा ही रहता है।”

“सम्भव है ऐसा होता हो। मुझे तो इसका अनुभव नहीं है।”

“होजायगा। अभी आपकी उम्र ही क्या है। परन्तु एक बात मैं

अवश्य कहूँगा कि राजासाहब का डिप्टी साहब के यहाँ अधिक आवागमन अच्छा नहीं ! अनिष्ट बहुत सीधा और सच्चा आदमी है । पत्नी को इतना स्वाधीन बनाने में उसकी सरलता भी कारण है । वह अकारण ही अविश्वास करके कोई रोक टोक नहीं करना चाहता ।”

“परन्तु इतना अधिक मुक्त भी न कर देना चाहिए ।”

“खैर ! यह अपनी अपनी समझ है । हाँ तो ऐसा सरल और सच्चा आदमी जब किसी कारण से भड़क उठता है तो वह शीघ्र शान्त भी नहीं होता । सरल तथा सच्चा व्यक्ति जितना शान्त होता है क्रोध आने पर उतना ही भयानक हो जाता है । प्रकृतिविम

“हाँ ऐसी बात तो है । मेरी भी ऐसी ही प्रकृति है । मुझे जल्दी क्रोध नहीं आता परन्तु जब आता है तो भयानक आता है । फिर मैं अंधा हो जाता हूँ । मुझे कुछ सुझाई नहीं देता ।”

“बेशक ! ऐसा ही होता है । शान्त प्रकृति व्यक्ति को बड़ा भयानक क्रोध आता है ।”

थोड़ी देर वार्तालाप करके शर्मा जी विदा हुए । वह सोच रहे थे—
“हाकिम परगना भी राजासाहब का आना-जाना पसन्द नहीं करते । उन्हें भी कुछ सन्देह है । और सन्देह होना स्वाभाविक है । राजा साहब को जो जानता है ; वह सन्देह किये बिना रह नहीं सकता । परन्तु यह स्नेह बड़ी पतित है । इधर मुझसे प्रेम सम्बन्ध जोड़ना चाहती है उधर राजा साहबको भी फँसाये रखनेका प्रयत्न कर रही है । कैसी बिकट नीति है । अच्छा हुआ, मेरा इससे विवाह नहीं हुआ । कहाँ सरस्वती और कहाँ यह ! सरस्वती कितनी सौम्य, शान्त, गम्भीर, पतिपरायणा है । संसार में उसका कोई निजी स्वार्थ तो जैसे है ही नहीं । ऐसी पत्नी से विश्वासघात करना, डिप्टी अनिष्टसिंह जैसे सीधे सच्चे व्यक्ति को धोखा देकर उसकी वस्तु पर डाका डालना बड़ा जघन्य कार्य है । अब मुझे स्नेह से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिए—प्रत्युत उसके पास आना-जाना एक दम बन्द कर देना चाहिये ।

इसी प्रकार विचार करते करते उनके मन में आया कि 'ईश्वर ने ही उन्हें वचाया अन्यथा वह तो लगभग फिसल ही पड़े थे।' यह विचार आते ही उनका कलेजा काँप गया।

वह उसी दिन घर लौट आये।

दूसरे दिन मिथीलाल से मिले तो उन्होंने पूछा—“कहो, हो आये ?”

“हाँ, हो आया।”

“कोई खास काम था ?”

“हाँ था भी और नहीं भी।”

“अच्छा ! यह कैसी बात ?”

शर्माजी कुछ क्षण विचार करके बोले—“श्वर तुम से क्या छिपाऊँ ! जब कोई बात नहीं छिपाई तब इसे भी न छिपाऊँगा। डिप्टी अनिरुद्धसिंह की पत्नी जानते हो कौन है ?”

“नहीं ! कौन है ?”

“स्नेहलता !”

“स्नेहलता कौन ?”

“भूल गये ? वही जिस से विवाह करने का मैं स्वप्न देखा करता था।”

“अच्छा वह, कालेजवाली ?”

“जी हाँ !”

“अच्छा ! यह तो तुमने एक विचित्र बात बताई।”

“भाग्य की विडम्बना तो देखिये, यहीं छाती पर आकर डटी है।”

“तुमसे क्या मतलब ! आने देखो। तुम्हारा तो विवाह हो ही गया।”

“यही बात होती तो फिर क्या था।”

“तब फिर क्या बात है ?”

“वही तो बता रहा था ।” यह कहकर शर्मा जी ने सन्देश में सब कह दिया । सब सुन चुकने पर मिश्रीलाल नेत्र विस्फारित करके बोले—
“यहाँ तक नौबत पहुँच गई ?”

“हाँ यार !”

“पहिले परामर्श न लिया । अब जब सब समाप्त कर आये तब बताया । विचित्र आदमी हो । खैर ! लेकिन बचे खूब !”

“भगवान् ने बचाया ।”

“खैर भगवान् तो मुख्य ही है, परन्तु निमित्त राजा साहब होगये । यदि वह न पहुँच गये होते तो आप तो फिसल ही पड़े थे ।”

“नहीं ! ऐसी बात तो नहीं थी । उसका गले पड़ना मुझे बुरा लगा था और उसकी ओर से मेरा मन बिगड़ चुका था ।”

“वह सब ठीक हो जाता । जहाँ तुम उससे एकान्त में मिलते और वह एक बार पुनः प्रयत्न करती तो मुझे सन्देह है कि आप उससे बच पाते ।”

“संभव था ।”

“इसीसे मैं कहता हूँ कि राजा साहब का पहुँच जाना आपके लिए हितकारक ही हुआ ।”

“हाँ, हितकारक तो हुआ, यह मैं भी मानता हूँ, परन्तु मैं यह भी नहीं सहन कर सकता कि अपने पति के अतिरिक्त स्नेहलता किसी लंपट का शिकार बने ।”

“वह स्वयं शिकार कभी नहीं बनेगी, वह दूसरों का शिकार करेगी ।”

“अपने सतीत्व को खतरे में डाल कर ?”

“सतीत्व का वहाँ कोई मूल्य ही नहीं है, मूल्य क्या कदमचित्त उसकी भावना भी नहीं है ।”

“इतनी ऊँची शिखा प्राप्त करके भी यह दशा !”

“इसमें शिखा का कोई दोष नहीं, प्रकृति का दोष है । ‘प्रकृतिं यान्ति भूतानि !’ मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है, चाहे

शिक्षित हो अथवा अशिक्षित ! स्नेह के प्रकृतिवाली स्त्री यदि मूर्ख भी रखी जाय तब भी वह ऐसा ही करेगी । यही कारण है कि मूर्ख लोग भी सच्चरित्र और विवेकशील मिलते हैं और सुशिक्षित भी दुष्चरित्र तथा विवेकहीन होते हैं ।”

“परन्तु सुशिक्षा का भी तो कुछ प्रभाव होना चाहिए था ।”

“देखिये ! मेरा विचार तो यह है कि दुष्ट स्वभाव वाला आदमी सुशिक्षा पाकर पाखण्ड रचने की कला जान जाता है इस कारण वह अपनी दुष्टता का प्रयोग बड़ी सावधानी तथा कलात्मक ढंग से करता है । सुशिक्षा ऐसी है जैसे तलवार पर खूब तेज धार रख दी गई है । वह काट खूब करने लगती है—चाहे उससे किसी निरपराध को हत्या कीजिए अथवा किसी अपराधी को दण्ड दीजिए । चाहे शत्रु को मारिये चाहे मित्र को, चाहे आत्म—हत्या कीजिए । सब काम बड़ी पूर्ण रीति और सफाई से चटपट कर देगी । ऐसी ही सुशिक्षा है । सुशिक्षा सच्चरित्रता की जननी नहीं है । और न सच्चरित्रता का ठेका सुशिक्षा के नाम है ।”

“ठीक कहते हो । यह सुशिक्षा का नहीं प्रकृति का दोष है ।”

“अतः यदि आप अपनी भलाई चाहते हैं तो अब उसके पास फटकियेगा भी नहीं ।”

“सो तो मैं निश्चय कर चुका हूँ ।”

“अपने निश्चय पर अटल रहियेगा ।”

“ईश्वर ने चाहा तो ऐसा ही होगा । परन्तु राजा साहब का क्या होगा ।”

“उन्हें छोड़िये ! वह कुछ हमारे बस के थोड़े ही हैं । और न वह अन्य किसी के बस के हैं । जब तक मौज है तब तक ही यह खेल है तत्पश्चात् उसके बंगले के सामने से भी न निकलेंगे । यदि ऐसे ही होते तो उनकी रानियां किस बात में कम हैं । उन्हें छोड़कर दूसरी स्त्री की आकांक्षा करते ?”

“और मैंने समझा था कि अब राजा साहब सुधर गये।”

“इन्हें ब्रह्मा भी नहीं सुधार सकता। यह तो जब सुधरेंगे तब अपने आप सुधरेंगे। और यह सुधार तो अस्थायी था। यह भी एक सनक ही थी वास्तविक सुधार नहीं था। राजा के चित्त को दैव भी नहीं जान सकता—मनुष्य किस गिनती में है। अब यह समझ लीजिये कि फिलहाल तो राजा साहब हैं और स्नेहलता है—भविष्य की राम जाने।”

अन्तिम वाक्य सुनकर शर्मा जो के हृदय में एक टीस सी हुई। स्नेहलता तथा राजा साहब का प्रसंग उनके रक्त को गर्म कर देता था।

शर्मा जी ने इस प्रसंग को बदलने के लिए दूसरी बात छेड़ दी।



अयोध्या में सरयू के तट पर राजा साहब की एक विशाल कोठी है । इस कोठी में राजगुरु टिके हुए थे । उनके आराम का पूरा प्रबन्ध था । कोठी के चारों नौकर तथा प्रबन्धक महाशय उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे ।

ठाकुर दलजीत सिंह तथा चन्द्रशेखर सिंह आये हुए थे और कोठी में ठहरे हुए थे ।

रात के नौ बज चुके थे । राजगुरु के शयनागार में दोनों व्यक्ति उपस्थित थे । राजगुरु शय्या पर अर्द्धशयनावस्था में तकिये के सहारे बैठे हुए थे—ये दोनों व्यक्ति आराम कुर्सियों पर विराजमान थे । चन्द्रशेखर सिंह बोल रहा था—“हम दोनों तो आप के ही आदेश पर निर्भर हैं । जैसा आप कहते जाँय वैसा करते जाँय ॥”

“मैंने राजा साहब को लिखवाया था कि मैं अब वहाँ आना चाहता हूँ । इस पर राजा साहब का उत्तर आया कि अभी कुछ दिन और वही रहिये ।”

“वहाँ अब आपका रहना नहीं हो सकता । आपके ठहरने के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा । आपकी कुटी भी अस्त-व्यस्त हो गई ।” सेके-दरी साहब ने कहा ।

“वह रानियों के अधिकार में चली गई ।” चन्द्रशेखर सिंह बोला ।

“उसमें कोई रहता है ?” संन्यासी महाराज ने पूछा ।

“रहता तो कोई नहीं है । कुछ सामान भर दिया गया है ।”

“तो इसके अर्थ तो यह हुए कि अब मैं वहाँ नहीं जा सकता ।”

“बिल्कुल ! आपको वहाँ से हटाने के लिए ही तो यह सब किया गया ।” चन्द्रशेखर सिंह ने कहा ।

संन्यासी जी विचार में पड़ गये । ये दोनों बैठे उनका मुँह ताकते रहे । कुछ देर बाद चन्द्रशेखर पुनः बोला—“मेरे सामने कई बार इस प्रकार का वार्तालाप हुआ जिससे प्रकट हो गया कि अब आपके लिए वहाँ स्थान नहीं है । केवल इतना ही नहीं, आपको यहाँ से हटाने की भी युक्ति सोची जा रही है ।”

“यह मैं समझता हूँ । यह सब शर्मा और छोटी रानी की बदमाशी है । यही दोनों मेरे पीछे पड़े हैं । बड़ी रानी तो पहिले से ही प्रतिकूल है । परन्तु मुझे आश्चर्य राजा पर होता है । यह उनकी बातों में कैसे आ गया । स्त्री के कहने से गुरु का अनादर । इसीलिए तो आदि जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने कहा है—‘नारी नरकस्य द्वारम् ।’ नारी नरक का द्वार है । जिसने नारी की बात मानी वह नष्ट हुआ ।”

“तो अब हमारे लिए क्या आदेश है ?”

“यही तो सोचना है कि अब क्या करना चाहिए, चुपचाप बैठे रहने से तो उन लोगों का चक्र चलता रहेगा । यदि राजा साहब अनुकूल हो जाय तो अभी सब काम बन जाय ।”

“सो वह अनुकूल होने वाले नहीं हैं ।” चन्द्रशेखर ने कहा ।

यह सुनकर संन्यासी महाराज का मुखमण्डल तमतमा उठा । वह सीधे हो कर बैठ गये और गम्भीर स्वर में बोले—“यदि ऐसी बात है तो राजा साहबको जीने का भी कोई अधिकार नहीं है । चन्द्रशेखर सिंह ! तुम राज्य के कर्त्ता-धर्त्ता बनना चाहते हो ?”

चन्द्रशेखर सिंह दौत निकाल कर बोला—“जैसी आपकी आज्ञा होगी—वैसा करूँगा। मैं स्वयं तो कुछ भी नहीं चाहता।”

“शासन सूत्र तुम्हारे तथा दलजीत के हाथ में रहेगा, परामर्श मेरा रहेगा।”

“केवल परामर्श ही नहीं वरन् आपकी ही नीति के अनुसार सब कार्य होगा।”

“तो जो हम कहें वह करोगे?”

“निश्चय।”

“क्यों दलजीतसिंह ! तुम क्या कहते हो?”

“आपकी आज्ञा ही मेरा धर्म है।”

“तो राजा साहब को खत्म करो। और यदि ऐसा हो सके कि राजा साहब की हत्या का अपराध शर्मा के गले मढ़ा जा सके तो अन्युत्तम ! एक ढेले से दो शिकार मारे जायेंगे। रह जायँगी रानियाँ तो वे हम लोगों के सामने क्या कर सकेंगी। त्रिवेदी मेरा भक्त है और मुझ से भय करता है इस कारण उसे मैं संभाल लूँगा।”

“तो महाराज इस कार्य में हमारे लिए तो कोई जोखिम नहीं है?”

“यह तो तुम्हारे कार्य कौशल पर निर्भर है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। और यदि तुम लोगों पर कोई बात आयगी भी तो मैं सब ठीक कर लूँगा। आखिर इतने दिन जो तपस्या की है वह किस दिन काम आयगी।”

“आप चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं।” चन्द्रशेखर ने हाथ जोड़ कर कहा।

“करूँगा ! केवल तुम्हारे लिए करूँगा ! मैं तो संन्यासी हूँ, मुझे अपने लिए कोई आकांक्षा नहीं है।”

“सो तो हम जानते हैं। आपको राज्य-वाज्य से क्या मतलब।”

“आप जो कुछ करेंगे, हम दोनों के लिये करेंगे।” दलजीत सिंह ने कहा।

“मेरे लिए तो यह जगत वृणवत् है। वृत्तोऽहम् कृतकृत्योऽहम्। मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।”

“तो फिर सब आपको ही सँभालना पड़ेगा—हम केवल आपकी आज्ञा का पालन करेंगे ।”

“सब ठीक हो जायगा—कुछ चिन्ता न करो । जो कुछ हो रहा है प्रभु की इच्छा से हो रहा है । जब उसकी इच्छा है तब फिर भय किस बात का । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कदाचन ! ब्रह्मज्ञानी कभी भयभीत नहीं होता ।”

वेदान्त की उपर्युक्त उक्ति को इस प्रकार ग्रहण करके संन्यासी जी नेत्र मूँद कर कुछ क्षण के लिए समाधिस्थ से हो गये । ये दोनों भक्तिपूर्वक उनका मुँह ताकते रहे ।

कुछ क्षण पश्चात् संन्यासी महाराज नेत्र खोल कर बोले—

“मैंने ध्यान लगाकर देख लिया । सब काम चौकस होना, डरने की कोई बात नहीं ।”

“तो ठीक है । जब महाराज ने सब सोच विचार लिया तब क्या चिन्ता है ।”

दूसरे दिन यह युगल जोड़ी लखनऊ में राजा साहब की कोठी पर उपस्थित थी ।

दोपहर को भोजन करके एक ही कमरे में दोनों लेटे । कोठी के प्रमुख भृत्य नन्दलाल को बुलाकर चन्द्रशेखर ने पूछा—“राजा साहब तो नहीं आये थे ?”

“हाँ आये थे ! दो दिन ठहर कर चले गये ।”

“दो दिन क्या करते रहे ?”

“इधर तो डिप्टी अनिस्ट्रिबल सिविल के यहाँ की दौड़ अधिक रही ।” नन्दलाल ने किंचित् मुस्कराकर कहा ।

“अकेले थे ?”

“नहीं, एक अर्दली साथ था, परन्तु वह अकेले ही जाते थे । बल्कि शर्मा जी भी आये हुए थे, उन्हें भी साथ नहीं ले जाते थे ।”

“शर्मा जी आये थे?”

“जी हाँ!”

“अलग से या राजा साहब के साथ?”

“अलग से! शर्मा जी एक दिन पहिले आगये थे।”

“डिप्टी साहब से इतना स्नेह क्यों हुआ, जानते हो?” चन्द्र-
शेखर से दलजीत सिंह ने पूछा।

“इस में जानने की कौन बात है। डिप्टी साहब का नया विवाह
हुआ है—पत्नी सुन्दर है।” चन्द्रशेखर ने कहा।

“क्या तुमने देखी है?”

“हाँ जब हमारे वहाँ हाकिम परगना के साथ डिप्टी साहब गये
थे—तब दोनों की पत्नियाँ भी गई थीं। मैं किसी काम से अन्दर जीजी के
पास गया था तब मैंने देखा था। मुझे उसी समय ध्यान आया था कि
यदि जीजा जी इन्हें देख लें तो…………वही बात हुई।”

नन्दलाल बोला—“शर्मा जी भी तो वहीं लसे रहे।”

“डिप्टी साहब के यहाँ?”

“हाँ!”

“अच्छा! शर्मा जी का उन से क्या सम्बन्ध?” नन्दलाल
मुस्कराया।

“क्या मुस्कराये! तुम सब जानते हो! बड़े बने हुए हो। क्या मामला
है जरा बताओ तो।”

“मामला क्या सरकार! यह संसार बड़ा विचित्र है। शर्माजी को मैं
बड़ा सीधा और नेक आदमी समझता था। परन्तु वह भी बड़े महात्मा
निकले।”

“अरे भले आदमी मामला तो बता, व्यर्थ की भूमिका बाँधता है।”
चन्द्रशेखर ने विकल हो कर कहा।

“जब एक औरत के दो गाहक होंगे तब मामला क्या होगा—
समझ लीजिये।

“अच्छा ! तो क्या शर्मा जी भी डिप्टियाइन पर फिदा हैं ?”

“हाँ ! और मतलब क्या है ? एक दिन डिप्टियाइन और शर्माजी में झगड़ा भी हुआ । शर्मा जी राजा साहब और डिप्टियाइन का मेल पसंद नहीं करते थे । इसी पर डिप्टियाइन और शर्माजी में कुछ कहा सुनी भी हुई । तब से शर्माजी डिप्टी साहब के यहाँ नहीं गये ।”

“यह कहो ! लेकिन यह सब तुम्हें मालूम कैसे हुआ ?”

“डिप्टी साहब के एक नौकर ने बताया ।”

“उससे तुम्हारा परिचय है ?”

“राजा साहब के पास डिप्टियाइन की चिट्ठी लेकर दो-तीन बार आया था तब से जान-पहचान हो गई । वही सब बताता था । उसने चलते-फिरते डिप्टियाइन और शर्मा जी की कुछ बातें सुन ली थीं ।

“उस नौकर का नाम क्या है ?” दलजीत ने उत्सुक हो कर पूछा ।

“सरकार कहीं ऐसा न हो कि मैं गरीब मारा जाऊँ ।”

“क्या बात करते हो ! ऐसा कभी हो सकता है । हम किसी से कहने थोड़े ही जाते हैं ।”

“नौकर का नाम हरीराम है ।”

“हूँ ।”

दोनों कुछ क्षण तक विचार मग्न रहे । सहसा दलजीत ने पूछा—
“डिप्टियाइन तो बेपर्दा स्वतन्त्र घूमती होगी ? ”

“मोटर लिये घूमा करती है । कभी कभी तो बिल्कुल अकेली ही निकल जाती है ”

“मोटर चला लेती है ?”

“हाँ ! खूब चलाती है ।”

“अच्छा विवाह किया डिप्टी साहब ने ।”

“डिप्टी साहब, सरकार, आदमी अच्छे हैं । बेचारे फँस गये तो क्या करें । वह बेचारे हैं, अंधेड़, डिप्टियाइन की नई जवानी है, इस लिए बेचारे दबे रहते हैं । डिप्टियाइन उन्हें कुछ गिनती ही नहीं ।”

“खैर जी होगा—अपने को क्या ।” दलजीत ने लापरवाही से कहा ।

“हाँ सरकार अपनेको क्या करना है । राजा साहबके कारण अपना भी कुछ उन से वास्ता पड़ता है—बस इतनी बात है ।”

यह कहकर नन्दलाल चला गया । उसके जाते ही दलजीत सिंह ने चन्द्रशेखर से कहा—“शर्मा जी की बात खूब मानूँ हूँ । इस से बड़ा काम निकलेगा ।”

“भला कैसे ?” चन्द्रशेखर ने पूछा ।

दलजीत ने समझाना आरम्भ किया ।



उपर्युक्त घटना के एक मास पश्चात् एक दिन ज्योत्सना शर्मा जी से बोली—“ शर्मा जी, इधर राजा साहब फिर लखनऊ आने जाने लगे हैं और उनके व्यवहार में भी कुछ रूखापन है। मेरा माथा ठनकता है कि कहीं फिर कोई रोग तो नहीं पाल लिया। क्या बताऊँ मैं तो इनकी आदत से दुखी हो गई।”

शर्मा जी का चेहरा उतर गया, परन्तु वह शीघ्र ही स्वयंको सँभाल कर बोले—“हाँ, इधर उनका लखनऊ आना-जाना फिर बढ़ गया है। परन्तु मेरी समझ में ऐसी कोई बात न होनी चाहिए।”

“आप नहीं समझ सकते। इसे मैं समझती हूँ। मुझे ज्ञान हो जाता है। मेरा मन बोलता है कि कुछ दाल में काला अवश्य है।”

“परन्तु राजा साहब तो इधर बहुत कुछ सुधर गये थे और आशा थी कि अब ऐसी बात न होगी।”

“इनका कोई भरोसा नहीं। आदत तो बिगड़ी हुई है, भय किसी का है नहीं—ऐसी दशा में यह कब क्या करने लगेँ इसका कोई निश्चय नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि इनकी लम्पटता छूट नहीं सकती। क्या बताऊँ ! मेरे पिता ने बड़ी भूल की जो राजसुख के लोभ में मेरा व्याह इनके साथ कर दिया। इससे तो किसी सच्चरित्र साधारण व्यक्ति से मेरा व्याह हुआ होता तो मैं बहुत खुश होती।” यह कहते कहते ज्योत्सना के नेत्र छलछला आये

शर्मा जी सिर झुका कर रह गये, कुछ उत्तर न दे सके ।

ज्योत्सना फिर बोली—“कभी कभी तो इतना जी कुढ़ता है कि मैं भी इन्हें दिखा दूँ कि यदि यह मनमानी कर सकते हैं तो तो मैं भी उसका प्रत्युत्तर दे सकती हूँ !”

“यह नीति तो कोई अच्छी नीति नहीं है रानी जी ! आप जो कुछ करेंगे, वह यद्यपि राजा साहब की स्वेच्छाचारिता के प्रत्युत्तर में करेंगी, परन्तु उसका उत्तरदायित्व आप पर ही होगा, उमका परिणाम आपको ही भोगना पड़ेगा । अतः किसीसे बदला लेनेके लिए अपनेको पतन के गर्त में गिरा देना बहुत ही बुरी नीति है । बुद्धिमान और विवेकशील व्यक्ति ऐसा कभी नहीं करते ।”

“मैं यह बात समझती हूँ शर्मा जी, यही कारण है कि मैं बदला लेनेकी भावनाका दमन किया करती हूँ, परन्तु कभी कभी मन इतना विद्रोह करने लगता है कि बुद्धि और विवेक उसके सामने निर्बल पड़ जाते हैं ।”

“हाँ, ऐसा अवश्य होता होगा, परन्तु निराश और धैर्यच्युत होनेका कोई कारण नहीं । ईश्वर चाहेगा सब ठीक हो जायगा । बुरी आदत क्रमशः ही छूटती है ।”

“अच्छा एक बात तो कीजिए !”

“कहिये !”

“इस बार जिस दिन राजा साहब लखनऊ जाँय तो आप भी गुप्त रूप से लखनऊ जाइये और जहाँ देखिये कि यह क्या करते है, कहाँ जाते हैं ।”

“अच्छी बात है । जाऊँगा ।”

“आप ही केवल एक ऐसे व्यक्ति है जिन पर मैं विश्वास और भरोसा कर सकता हूँ, और यहाँ कोई नहीं है । मुझे अपने सगे भाई तक का विश्वास नहीं ।”

“रानीजी की मुझ पर असीम कृपा है।”

“कृपा की बात नहीं, आप की सज्जनता की बात है।”

“मैं अवश्य आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।”

“जिस दिन वह जाँयेंगे, मैं आपको बता दूँगी।”

“क्या आप से कह कर जाते हैं?”

“हाँ ! अब कह देते हैं। पहिले तो बिना बताये ही चले जाया करते थे, परन्तु अब एक दिन पहिले से ही कह देते हैं कि कल लखनऊ जाना है।”

“बस केवल इतना ही या कारण भी बताते हैं?”

“कभी कह देते हैं कि गवर्नर साहब से मिलना है, कभी चीफ सेक्रेटरी का नाम लेते हैं, कभी कुछ ! परन्तु मैं समझती हूँ कि यह सब बढ़ाना है।”

शर्माजीने ज्योत्सनासे वादा तो कर लिया, परन्तु बड़े असमझसमें पड़ गये। कारण तो वह जानते ही थे और यद्यपि स्नेहलता के सम्बन्ध से उनको भी राजा साहब पर क्रोध आता था, परन्तु यह सोच कर, कि जब स्नेहलता ही भ्रष्ट है तो राजा साहब का क्या दोष ! यदि राजा साहब न होते तो स्नेहलता किसी दूसरे से सम्बन्ध जोड़ लेती, वह राजा साहब के प्रति अपनी दुर्भावना को प्रबल नहीं होने दे रहे थे। स्नेहलता के साथ क्षणिक प्रेमावेश में उन्होंने जो व्यवहार किया था उस पर उन्हें पश्चात्ताप था और ऐसे अवसर पर जब कि स्नेहलता के प्रेमपाश में फँस कर वह पतनोन्मुख हो रहे थे, राजा साहब के आ कूदने को वह अपने लिए ईश्वरीय सहायता समझते थे। परन्तु जब वह ज्योत्सना का ख्याल करते थे तो उन्हें राजा साहब के लिए खेद होता था। साथ ही वह किर-त्त व्यमूढ़ भी हो रहे थे—यह सोचकर कि यदि छोटी रानी ने उन्हें लखनऊ भेजा तो वहाँ से लौटकर वह उनको क्या उत्तर देंगे। अन्त को उन्होंने सोचा कि इस सम्बन्ध में मिश्रीलाल से परामर्श करना चाहिए।

मिश्रीलाल को सब वृत्तान्त बताकर उन्होंने ने पूछा—“अब बताओ, ऐसी परिस्थित में मेरा क्या कर्तव्य है ?”

मिश्रीलाल कुछ देर विचार करने के पश्चात् बोले—“बड़ी जटिल समस्या है। यदि आप छोटी रानी से सब बताते हैं तो ठीक नहीं और यदि नहीं बताते तो अनुचित है। और यदि यह कहो कि तुम्हें ठीक पता नहीं लग लका तो या तो वह तुम्हें नालायक समझेंगी या यह खयाल करेंगी कि तुम उन्हें धोखा दे रहे हो।”

“यही तो समस्या है। समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय।”

मिश्रीलाल पुनः विचारमग्न हो गये पश्चात् बोले—“क्या ऐसा नहीं हो सकता कि एक बार तुम स्नेहलता से फिर मिलो और उसे समझाओ कि वह राजा साहब से मिलना-जुलना छोड़ दे।”

“वह मानेगी ?”

“प्रयत्न तो करना ही चाहिए।”

“मेरी इच्छा उसकी सूरत देखने तक की नहीं होती।”

“ऐसा घृणा हो गई ?”

“घृणा तो हो ही गई, साथ ही अपनी दुर्बलता की दृष्टि से भी मैं उससे नहीं मिलना चाहता। संभव है उसका जादू मुझ पर भी चल जाय। न जाने क्यों उसको देखकर मेरा चित्त चंचल हो उठता है। अन्य स्त्री को देखकर मेरा चित्त तनिक भी नहीं डिगता।”

“इसका कारण यह है कि उस पर तुम्हारा अनुराग पहिले से ही है। हृदयपटल पर प्रथमप्रेम की रेखा कुछ गहरी हो जाती है। किन्तु एक बार मिलने में कोई हर्ज नहीं है। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा चित्त उसके सन्मुख द्रवित न होगा।”

“अच्छी बात है। एक बार प्रयत्न करके देखूँगा—आगे हरि इच्छा।”

“हाँ, मेरा भी यही परामर्श है।”

“तो मैं इसबार राजा साहबके जानेके पूर्वही स्नेहलतासे मिल लूँ।”

“हाँ ! परन्तु कोठी पर न ठहरना।”

“नहीं जी, मैं किसी होटल या धर्मशाला में ठहरूँगा।”

“ठीक ! ईश्वर तुम्हें सफलता दे।”

दूसरे दिन शर्मा जी ने ज्योत्सना से कहा—“मैं राजा साहब की अनुपस्थिति में ही वहाँ जाकर पता लगाना अधिक ठीक समझता हूँ।”

ज्योत्सना बोली—“जैसा आप उचित समझें।”

“हाँ ! राजा साहब की उपस्थिति में कार्य कुछ कठिन हो जायगा।”

“जिस प्रकार आप उचित समझे कार्य करें, सुझे तो कार्य होने से मतलब है।”

“तो बस ठीक है। मैं कल चला जाऊँ।”

“राजा साहब से क्या कहोगे ?”

“कह दूँगा कि मेरे श्वसुर बहुत बीमार है, चिट्ठी आई है उन्हें देखने जाना है।”

“ठीक है।”

दूसरे दिन छुट्टी का प्रार्थनापत्र देकर शर्माजी लखनऊ जाने के लिए तैयार हो गये।

लखनऊ पहुँच कर वह अपने साले नर्मदाशङ्कर के पास ठहरे। नर्मदाशङ्कर से इनका परिचय इनके श्वसुर त्रिवेणीशङ्कर करा गये थे। अपनी कन्या सरस्वती से मिलने के पश्चात् त्रिवेणीशङ्कर चले गये थे और थोड़े ही दिन बाद पुनः नर्मदाशङ्कर का साथ लेकर आये थे। तब से नर्मदाशङ्कर का शर्माजी से परिचय हो गया था।

संध्या समय शर्माजी स्नेहलता के बँगले पहुँचे। डिप्टी साहब से भेंट हुई। डिप्टी साहब ने पूछा—“कहिये शर्माजी ! क्या हाल चाल है ?”

“हाल चाल सब अच्छे हैं। अपने एक काम से लखनऊ आया था—सोचा, आप से भी भेंट करता चलूँ।”

“बड़ी कृपा है आपकी ! मैं दो मास की छुट्टी जा रहा हूँ।”

“अच्छा ! कब ?”

“बीस तारीख को चला जाऊँगा !”

“अभी बारह दिन हैं।”

“जी हाँ !”

“श्रीमती जी अच्छी तरह हैं ?”

डिप्टी साहब की मुख मुद्रा जो अभी तक सरल तथा स्वाभाविक था गम्भीर होगई ! वह बोले—“हाँ ठीक हैं।”

शर्माजी समझ गये कि डिप्टी साहब स्नेहलता से प्रसन्न नहीं हैं। उन्हो ने पूछा—“कहीं बाहर गई हुई हैं वया ?”

“हाँ, सिनेमा गई होगी या किसी सखी-सहेली के यहाँ।” डिप्टी साहब ने उपेक्षापूर्वक कहा।

“आपको बताकर नहीं जाती कि कहाँ जा रही हैं।”

डिप्टी साहब मुखपर विषादपूर्ण मन्द मुस्कान लाकर बोले—
“सुशिक्षित स्त्रियाँ इसकी आवश्यकता नहीं समझती।”

“ऐसी बात तो नहीं है कि सब सुशिक्षित स्त्रियाँ ऐसा करती हों।”

“हाँ—आँ ! सब नहीं करती; परन्तु स्नेहलता सुशिक्षित होने का अर्थ यही समझती है कि उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त रहे।”

“यदि उनका ऐसा खयाल है तो यह उनकी भूल है। दाम्पत्य-जीवन के लिये ऐसे बिचार घातक हैं।”

“हुआ करें, उनकी वला से।”

“आप उन्हें समझाते नहीं ! गार्हस्थ्य जीवन में भी अनुशासन की आवश्यकता है—स्त्री और पुरुष दोनों के लिए। अनुशासनहीन गार्हस्थ्य जीवन प्रायः सुखी जीवन नहीं होता।”

“आरम्भमें मैंने कहा—सुना था, परन्तु उसका प्रभाव उलटा पड़ा। उसने यह दलील पेश की कि मुझे उस पर विश्वास नहीं है, मैं उस पर सन्देह करता हूँ। उसकी धारणा है—धारणा क्या भ्रम है कि मुझे उस पर सन्देह करने का कोई अधिकार नहीं है।”

“यह तो कोई बात नहीं। अविश्वास तथा सन्देह के कारण उत्पन्न होते हुए भी यदि वह चाहें कि उन पर सन्देह न किया जाय तो यह उनकी हठधर्मां है।”

“शिक्षा दोधारी तलवार है शर्मा जी ! शिक्षा से अच्छी प्रकृति के आदमी और अधिक अच्छे हो जाते हैं और बुरी प्रकृति के मनुष्य और भी बुरे। छल, कपट, भ्रष्टता इत्यादि का व्यवहार करने में वे अपनी शिक्षा से लाभ उठा कर दूसरों की आँखों में धूल भोंकने का प्रयत्न करते हैं। शिक्षा मनुष्य को ढोंग रचने में प्रवीण बना देती है। यही कारण है कि अशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षित लोग अधिक ढोंगी होते हैं।”

“ठीक है !” शर्मा जी समझ गये कि डिप्टी साहब स्नेहलता के आचरण से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है।

“घरेलू शान्त जीवन को कलहपूर्ण बनाने की अपेक्षा मौन रहना ही अच्छा है। यह सोच कर मैंने अब कहना—सुनना बंद कर दिया है।” डिप्टी साहब ने कहा।

शर्मा जी ने कोई उत्तर न दिया। कुछ देर इधर-उधर की बात करके वह विदा हुए।

(३३)

एक दिन का बीच देकर तीसरे दिन दोपहर में, भोजन करने के पश्चात् शर्मा जी डिप्टी साहब के बँगले पहुँचे । रास्ते भर उनकी उधेड़-बुन जारी रही । ‘स्नेहलता से क्या कहेंगे, किस प्रकार कहेंगे । क्या वह उनकी बात मान लेगी ? यदि कुछ न कहा जाय तब भी कोई हानि नहीं । डिप्टी साहब दो मास के लिए छुट्टी जा ही रहे हैं—दो मास में सँभव है राजा साहब का ध्यान स्नेहलता की ओर से दृष्ट जाय’ इत्यादि बातों पर विचार करते हुए वह डिप्टी साहब के बँगले पहुँचे । बेरा ने शर्माजी के आने की सूचना दी । कुछ ही क्षण पश्चात् स्नेहलता आ गई । शर्माजी को देख कर क्षण मात्र के लिए उसके मुख पर भेष का भाव प्रस्फुटित होकर विलीन हो गया—“कहिये शर्माजी सब कुशल !”

“ सब ईश्वर की दया है । ” शर्मा जी ने कुछ शुभकता से उत्तर दिया ।

“कहिये, इस बार कैसे ?”

“ एक कार्य से आया था । ”

“अभी रहियेगा ?”

“कार्य हो जायगा तो चला जाऊँगा, अन्यथा रहना पड़ेगा ।”

“ज्योत्सना बहिन तो सानन्द हैं ।”

“वैसे तो आनन्द ही है, परन्तु कभी कभी वे ही लोग जिन्हें वह अपना हितैषी समझती हैं उनके आनन्द में व्याघात पहुँचाते हैं ।” यह कहकर शर्मा जी ने स्नेहलता के मुख को ध्यानपूर्वक देखा ।

स्नेहलता शर्मा जी की दृष्टि सहन न कर सकने के कारण दूसरी ओर ताकती हुई बोली—“यह बुरी बात है ।”

“हाँ, परन्तु लोग बुरी बात को बुरा समझते हुए भी उसका त्याग नहीं करते।”

“यही तो सारा भगड़ा है।” स्नेहलता उपेक्षापूर्ण स्वरसे बोली। कुछ क्षण दोनों मौन रहे। सहमा शर्मा जी बोले—“स्नेहलता, क्या मेरी एक बात मानोगी?”

“कौनसी बात?” स्नेहलता ने गम्भीरता पूर्वक पूछा।

“मानोगी?”

“क्या बच्चोंकी सी बात करते हो। पहिले बात भी तो मालूम हो।”

“बात यह है कि यदि तुम छोटी रानीसे स्नेह का व्यवहार रखना चाहती हो तो राजा साहब से मिलना—जुलना बन्द कर दो।”

शर्मा जी पर तीव्र दृष्टि डाल कर स्नेहलता बोली—“क्या मतलब? क्या राजा साहब से यह कह दूँ कि वह मेरे बँगले न आया करें?”

“ऐसा कहने का परामर्श मैं कदापि नहीं दे सकता और न ऐसा कठोर व्यवहार करने की आवश्यकता ही है।”

“तब तुम्हारा क्या अभिप्राय है?”

“मेरा अभिप्राय तुग भली भाँति समझती हो स्नेहलता।”

“हम स्त्रियोंको पुरुषों का अभिप्राय समझनेमें देर नहीं लगती।” स्नेहलता व्यग्रपूर्वक हँस कर बोली।

“तब तो तुम राजा साहब का अभिप्राय भी समझती होगी।”

स्नेहलता कुछ सकुचा गई परन्तु पुनः पूर्वावस्था पर आकर बोली—“डिप्टी साहब से राजा साहब का मेल है। वह उनसे मिलने आते हैं। इस कारण हमें उनका स्वागत करना पड़ता है। कभी कभी उनके साथ सिनेमा अथवा घूमने-फिरने चली जाती हूँ।”

“यह कभी कभी सिनेमा और घूमने-फिरने जाना ही तो ठीक नहीं। वैसे घर पर आवें तो उनका स्वागत करना आवश्यक है, परन्तु इससे आगे नहीं बढ़ना चाहिए।”

“तुम मुझे यह उपदेश किस हैसियत से दे रहे हो, पहिले यह बताओ।”

“तुम्हारे और राजा साहब के शुभैषी की हैसियत से।”

“तुम राजा साहबके शुभैषी बन सकते हो; क्योंकि उनके आश्रित हो; परन्तु मेरे प्रति तुम्हारी यह शुभैषणा व्यर्थ है। क्योंकि, तुमने मेरे साथ यह व्यवहार किया जो मेरे हित के प्रतिकूल था।”

शर्माजी के मुख पर मानो तमाचा लगा। वह इस चोट से तिल-मिला गये। कुछ क्षण हतबुद्ध रहने के पश्चात् वह सँभल कर बोले—
“वह मेरे हृदय की दुर्बलता थी स्नेह ! मैं अपराध स्वीकार करता हूँ परन्तु अब मैं शुद्ध हृदय से तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ।”

“यदि यह बात है तो मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ मदन !”

“परन्तु केवल कृतज्ञता ही पर्याप्त न होगी। तुम्हें मेरी बात पर ध्यान देना चाहिये।”

“मैं अपना भला-बुरा सोचने की योग्यता रखती हूँ। इस कारण तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।” स्नेह ने शुष्कतापूर्वक कहा।

शर्मा जी अप्रतिभ हो कर चुप हो गये। वह सोचन लगे—‘कितना अभिमान है इस स्त्री को। तृणवन्मन्यते जगत् वाला हिसाब-किताब है।’ आज स्नेहलता शर्माजी को खूबसूरत बला के समान दिखाई पड़ रही थी। स्नेहलता पुनः बोली—“तुम पुरुष लोग अपनेको ही बड़ा योग्य, बड़ा शक्ति शाली समझते हो। परन्तु तुम लोगों को अपने हृदयसे यह धारणा निकालनी पड़ेगी और मानना पड़ेगा कि स्त्री भी कुछ शक्ति रखती है।”

सहसा शर्माजी का चेहरा तमममा उठा, और वह कुछ उत्तेजना पूर्ण स्वर में बोले—नारी ! मैं तुम्हारी शक्ति जानता हूँ। तुम शक्तिशालिनी ही नहीं शक्तिरूपा हो। अनुकूल त्वमृतलता, प्रतिकूल विषबल्लरी ! तुम निर्माण तथा ध्वंस दोनों कार्य पुरुष की अपेक्षा अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती हो। परन्तु याद रखो तुम से भी बड़ी कोई शक्ति है और वह है

कर्मविपाक । उससे बचना तुम्हारी शक्ति के भी बाहर की बात है । अतः सावधान ! इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता ।”

यह कह कर शर्माजी चल दिये ।

शर्माजी के कमरे से निकल जाने पर स्नेहलता खिलखिलाकर हँसी और अपने ही आप बोली—“वेकूफ़ मुझे उपदेश देता है । मैं चाहती तो उँगलियों पर नचा देती ।”

स्नेहलता से भेंट होने के तीसरे दिन शर्मा जी ने सोचा कि अब चलना चाहिए । अधिक ठहरने से कोई लाभ नहीं । यह सोच कर वह नर्मदाशङ्कर से बोले—“आज घर जाना चाहता हूँ ।”

“क्यों ? अभी दो चार दिन और रहते ।” नर्मदाने कहा ।

“इतनी छुट्टी कहाँ है ।”

“अच्छा तो आज और ठहर जाओ, कल जाना । सरस्वती के लिए बृद्ध सामान देना है वह लेते जाना ।”

“अच्छी बात है ।”

उसी दिन शर्माजी संध्या समय घूमने निकले तो यह सोच कर कि जरा कोठी से हालचाल लेते चलें कोठी की ओर चले । जब कांटों का फाटक थोड़ी दूर रह गया तो सहसा अन्दर से राजासाहब की कार निकली । शर्माजी ठिठक गये । कार शर्माजी के सामने से निकल गई । शर्मा जी ने दूरसे देखा कि राजा साहब स्वयं कार ड्राइव करके ले जा रहे हैं । यह देख कर शर्माजी ने सोचा—“स्नेहलता के पास जा रहे हैं ।”

सहसा उनके मनमें आया कि गुप्त रूपसे जाकर देखें कि राजा साहब स्नेहलता के यहाँ ही गये हैं अथवा कहीं और ! यह सोचकर उन्होंने सबक पर जाता हुआ एक खाली ताँगा लेकर स्नेहलता के बँगले की ओर प्रस्थान किया । जब बँगला थोड़ी दूर रह गया तो उन्होंने ताँगा बिदा कर दिया और स्वयं बँगले के फाटक पर पहुँच कर भीतर देखा । बाहर बिल्कुल सन्नाटा था—केवल राजा साहब की कार दिखाई पड़ रही थी । अतः

उन्हें यह निश्चय हो गया कि राजा साहब यही आये हैं। उन्होंने सोचा—‘राजा साहब स्नेहलता को अपने साथ ले जाने के लिए ही अकेले कार लेकर आये हैं।’ यह सोच कर वह वहाँ से प्रस्थान करने लगे परन्तु सहसा उन्हें ध्यान आया कि यह भी देख लेना चाहिये कि स्नेह उनके साथ आती है या नहीं। सम्भव है उस पर उनके उपदेश का कुछ प्रभाव पड़ा हो और वह राजा साहब से खिच जाय। यह सोच कर वह उसी स्थान पर रुक गये।

जहाँ शर्मा जी खड़े हुए थे, वह स्थान फाटक से कुछ हटकर बँगले की प्राचीर से मिला हुआ था। उस स्थान पर तीन चार वृत्तों का झुरमुट था—अतः संध्या समय कुछ अंधकार हो जाने पर वहाँ सर्वथा एकान्त हो जाता था, सबक पर चलने—फिरने वालों की दृष्टि वहाँ तक न पहुँच सकती थी और उस ओर से कहीं का रास्ता न होने के कारण कोई उधर आता भी नहीं था। शर्मा जी एक वृत्त के सहारे पीठ लगा कर खड़े हो गये।

बीस मिनट तक खड़े रहने के पश्चात् उनका चित्त ऊबने लगा। सोचने लगे—“अपनी ऐसी-तैसी मैं जाय; तुम क्यों प्राण दे रहे हो। बुलबुल ने जब चमन से लिया आशियाँ (घोंसला) उठा, उसकी बला से बूम (उल्लू) रहे या हुमा (माङ्गलिक पक्षी) रहे।” यह सोच कर वह वहाँ से प्रस्थान करने के लिए उद्यत हुए। परन्तु जैसे ही उन्होंने चलने का निश्चय किया वैसे ही उन्हें बँगले के बरामदे से आदमियों के बात करने का शब्द सुनाई पड़ा। वह रुक गये। उन्होंने दीवार के सहारे उच्चर कर देखा राजा साहब तथा डिप्टी साहब धीरे धीरे कार की ओर बढ़ रहे थे—दोनों के बीच में स्नेहलता थी। वहाँ से हटकर कुछ वह आगे ऐसे स्थान पर आ गये जहाँ से कि फाटक दिखाई पड़ता था।

सहसा उनके कानों में डिप्टी साहब का कण्ठ स्वर ‘हाँय ! हाँय !’ और उसके पश्चात् ही स्नेहलता की एक चीख सुनाई पड़ी। वह घबराकर फाटक की ओर दौड़े। इसी समय डिप्टी साहब का कंठ स्वर पुनः सुनाई

पड़ा कि—“पकड़ो ! पकड़ो ! जाने न पाये !” फाटक के अन्दर से एक व्यक्ति भागता हुआ निकला । शर्मा जी फाटक के निकट पहुँच गये थे अतः उन्होंने तुरन्त उस व्यक्ति को छाप लिया ।

पलायनेच्छु व्यक्ति यथेष्ट दृष्ट-पुष्ट तथा बलवान था । अतएव वह स्वयं को शर्मा जी के बाहुपाश से मुक्त करने में सफलमनोरथ हो जाता परन्तु इसी समय डिप्टी साहब के दो-तीन आदमियों ने आकर उसे जकड़ लिया । शर्मा जी अपने वस्त्र ठीक करते हुए बंगले के अन्दर भागे । भीतर पहुँच कर उन्होंने देखा कि राजा साहब तथा डिप्टी साहब एक अर्दली की सहायता से स्नेहलता को उठा कर कार पर लाद रहे हैं । राजा साहब शर्मा जी को देख कर बोले—“शर्मा जी, आप है ?”

“जी राजा साहब ! क्या मामला है ?”

“स्नेहलता पर आक्रमण !”

यह कहकर राजा साहब फाटपट अगली सीट पर जा बैठे और उन्होंने कार स्टार्ट की । शर्मा जी से वह बोले—“मैं इसे अस्पताल लिये जा रहा हूँ ।”

“मैं भी चलता हूँ ।” यह कह कर राजा साहब के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शर्मा जी कार का द्वार खोल कर राजा साहब की बगल में बैठ गये । पिछली सीट पर डिप्टी साहब स्नेहलता को लिये बैठे थे ।
कार चल दी ।

“आप कब आये ?” राजा साहब ने शर्मा जी से पूछा ।

“मैं आज ही वापस आया हूँ । अपने साले से मिलने के लिए ठहर गया था । इस समय सोचा कि चलो डिप्टी साहब से मिल आऊँ ! जैसे ही फाटक पर आया तो एक चीत्कार सुनी और डिप्टी साहब की पकड़ो ! पकड़ो ! की आवाज ! उसी समय एक आदमी अन्दर से भागता हुआ निकला । मैंने उसे पकड़ लिया । बड़ा बलवान् आदमी है—यदि डिप्टी साहब के आदमी न आ जाते तो वह छूट कर भाग जाता ।”

“आपने बड़ा काम किया अन्यथा साफ निकल जाता ।”

शर्मा जी ने गर्दन घुमाकर पिछली सीट पर दृष्टि डाली । परन्तु अन्धकार होने से केवल इतना देख सके कि स्नेह को डिप्टी साहब सँभाले हुए बैठे है—स्नेह वेहोश है ।

उन्होंने पूछा—“मामला क्या हुआ ?”

“मैं अपनी कार की ओर आ रहा था, डिप्टी साहब और स्नेह मुझे पहुँचाने मेरे साथ साथ आ रहे थे । इसी समय वह व्यक्ति लान के किनारे लगी हुई झाड़ी में से निकला और उसने छुरी से आक्रमण किया । डिप्टी

“कुछ कहा नहीं जा सकता। भाड़ी की ओर मैं था, मेरे बाद स्नेह और उसके बाद डिंटी साहब ! डिंटी साहब के चिल्लाते ही मैं एकदम रुक गया था—स्नेह एक कदम आगे बढ़ गई थी। क्षणमात्र में यह सब हो गया। कुछ समय में नहीं आया कि कैसे क्या हो गया। देखो वह कहता क्या है ?”

“पुलीस सब पूछ लेगी। पुलीस को खबर की ?”

“हम तो इधर चले आये।”

डिंटी साहब बोल उठे—“अर्दलीने पुलीसको फोन कर दिया होगा।”

कार अस्पताल पहुँच गई।

स्नेह भटपट परीक्षा-गृह में पहुँचाई गई। राजा साहब इत्यादि बाहर खड़े रहे। दस मिनट बाद डाक्टर परीक्षा-गृह से निकल कर इन लोगों के पास आया और डिंटी साहब से अंग्रेजी में बोला—“मुझे अक्सोस के साथ कहना पड़ता है डिंटी साहब कि आपकी पत्नी का घाव सांघातिक है। रक्तस्राव रुक नहीं सकता। अधिक से अधिक आध घण्टा चलेंगी—बस !”

डिंटी साहब मौन तथा गम्भीर रहे ! शर्मा जी का मुख श्वेत पड़ गया। राजा साहब घबड़ा कर बोले—“क्या रक्तस्राव बन्द नहीं किया जा सकता ?”

“विदेशों में तो यह सम्भव हो गया है। इस प्रकार के कुछ केस अच्छे किये गये हैं, परन्तु यहाँ यह सम्भव नहीं है। वैसे साधन ही हम लोगों के पास नहीं हैं। चाकू की केवल नोक मर्मस्थल को छेद सकी है, इस कारण रक्तस्राव की गति मन्द है और वह अभी जीवित हैं। यदि चाकू आध इंच और चला गया होता तो तत्काल मृत्यु हो जाती। हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि यथा सम्भव उन्हें अधिक से अधिक समय तक जीवित रख सकें। अच्छा, हम उन्हें अलग कमरे में पहुँचाये देते हैं—आप लोग वहीं चले।” यह कह कर डाक्टर चल दिया।

डाक्टर साहब के साथ एक नर्स थी। राजा साहब ने उससे पूछा—
“वह कमरा किधर है ?”

“आइये !” कहकर नर्स चली । ये तीनों उसके पीछे हो लिये ।

उक्त कमरे में पहुँचने पर इन लोगों ने देखा कि स्नेह एक लोहे के पलँग पर लेटी है । एक डाक्टर तथा दो नर्स उस के पास उपस्थित हैं । डाक्टर इन्जेक्शन दे रहा है । इन्जेक्शन देने के पश्चात् डाक्टर बोला—
“रक्तस्राव कम करने का प्रयत्न किया है । रक्तस्राव जितना रुक कर होगा उतनी ही देर इनका जीवन चलेगा ।”

“यह क्या अब होश में न आवेंगी ?”

“आ तो जाना चाहिए—कुछ देर के लिए तो होश अवश्य आयगा ।” यह कहकर डाक्टर चला गया ।

ये तीनों व्यक्ति कुर्सियों पर बैठ गये ।

पाँच मिनट पश्चात् स्नेह की पलकें हिलीं । नर्स धीमे स्वर में बोली—“अब होश में आ रही हैं ।”

कुछ क्षणोंपरान्त स्नेह ने आँखें खोलीं और इधर उधर दृष्टि दौड़ाई । पश्चात् पानी माँगा । नर्स ने पानी पिलाया । पानी पीकर उस ने पुनः इन लोगों की ओर देखा । डिप्टी साहब स्नेह के निकट पहुँच कर बोले—“स्नेह घबराओ नहीं, तुम अच्छी हो जाओगी । तुम्हें किसी पर सन्देह है—ऐसा कौन व्यक्ति हो सकता है जो तुम पर आक्रमण कराये ?”

स्नेह कुछ क्षण सोचकर क्षीण स्वर में बोली—“मेरी जान—मैं तो ऐसा—कोई आदमी नहीं है । मेरी किसी—से शत्रुता भी नहीं है ।”

स्नेहलता के होश में आते ही पुलिस को सूचना दी गई पुलिस ने उसी समय स्नेहलता के बयान करवाये । अपने बयान में स्नेहलता ने न किसी पर अपना संदेह प्रकट किया और न वह आक्रमणकारी की शिनाख्त कर सकी । इस कार्य में आध घंटा लगा ।

इस कार्य के समाप्त होने तक स्नेहलता और अधिक शिथिल हो गई, यद्यपि चेतना शक्ति ठीक थी । डाक्टर ने एक इन्जेक्शन और दिया ।

इंजेक्शन देने के कुछ मिनट पश्चात् ही स्नेहलता पुनः कुछ अधिक चैतन्य हो गई। उसने डिप्टी साहब से कहा—“मैं शर्मा जी से कुछ बात करना चाहती हूँ—एकान्त में।”

“अच्छा !” कहकर डिप्टी साहब ने शर्मा जी को स्नेहलता से बात करने के लिये कहा। शर्मा जी सिर झुकाये ध्यान मग्न थे। वह चौक कर बोले—“मुझसे बात करना चाहती हैं ?”

“हाँ ! सुन लीजिये ! हम लोग बाहर बरामदे में चलते हैं।” यह कह कर डिप्टी साहब राजा साहबको साथ लेकर बाहर चले गये। राजा साहब शर्माजी को ध्यानपूर्वक देखते हुए गये।

इन दोनों के बाहर चले जाने के पश्चात् दोनों नर्सों भी कमरे के अन्तिम द्वार पर जाकर खड़ी हो गईं और परस्पर वार्त्तालाप करने लगीं। शर्माजी स्नेहलता के पास बैठ कर बोले—“क्या कहना चाहती हो स्नेह ?”

स्नेहलता ने अपना हाथ शर्मा जी के हाथ पर रखा—शर्मा जी ने उसका हाथ अपने दोनों हाथों में दाब लिया। स्नेह बोली—“मदन ! मुझे क्षमा कर दो।”

किंचित गद्गद कंठ से शर्मा जी बोले—“क्या क्षमा कर दूँ स्नेह ? कोई बात भी हो।”

“मैंने तुम्हारा मूल्य नहीं समझा मदन ! बस इसीकी क्षमा चाहती हूँ। उफ ! कितनी भ्रांति, कितना अध्यास ! आँखों परसे पर्दासा उठ गया। संसार के संबंध में दृष्टिभ्रमाक्रान्त के लिए मृत्यु दृष्टिशोधक होती है—ऐसा मुझे प्रतीत होता है।”

“मृत्यु ! मृत्युका नाम मत लो स्नेह ! तुम अच्छी हो जाओगी।” शर्माजी ने स्नेह को प्रोत्साहन देने के लिए कहा।

“नहीं मदन ! मुझे बहकाओ मत ! मैं जानती हूँ कि मैं मर रही हूँ। संसार की कोई शक्ति मुझे नहीं बचा सकती। बोलो ! तुमने क्षमा प्रदान किया ?”

“क्षमा ! मैं तुम्हें अपने प्राण तक प्रदान कर सकता हूँ स्नेह ! क्षमा तो एक बहुत छोटी वस्तु है । उसके लिये तुम्हें याचना करने की आवश्यकता नहीं है । वह तो तुम्हें पहिले से ही प्राप्त है ।”

“आह यदि मैं तुम्हारे साथ किये गये अपने वादे पर स्थिर रहती——! अपने जीवन के साथ मैंने बलात्कार किया—और प्रवृत्तियों के प्रति प्रमाद ! खैर ! तुमने मुझे क्षमा कर दिया—अब मैं सुख से मरूँगी । जरा डिप्टी साहब को बुला लो उनसे भी क्षमा माँग लूँ ।”

मदन ने उठकर डिप्टी साहब को बुलाया । डिप्टी साहब के आने पर स्नेह उनसे बोली—“मैं तुम्हारे प्रति बहुत बड़ी अपराधिनी हूँ । मैंने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया । यद्यपि तुमसे क्षमा माँगने का मुझे अधिकार नहीं रहा; परन्तु फिर भी मैं तुम से क्षमा याचना करती हूँ, तुम्हारी सज्जनता पर निर्भर करके यह दुस्साहस कर रही हूँ ।”

डिप्टी साहब के मुख पर दयाभाव उत्पन्न हुआ । वह बोले——
“पहिला अपराध तो मेरा है स्नेह ! मैंने इस वयसमें तुम्हारे जैसी नवयौवना के साथ विवाह करके बड़ी भूल की, केवल भूल ही नहीं वरन् अपराध ! अतएव पहिले तो मुझी को तुमसे क्षमा माँगना चाहिए ।”

“तुम्हारे शब्द ठीक तुम्हारे अनुरूप ही हैं । उफ ! कितना बड़ा धोखा ! सच्चे प्रेमी तथा सज्जन पति—दोनों का अनादर ! अपनी शिक्षा—दीक्षा के अभिमान में मैं यह सोचती थी कि केवल मैं ही संसार का वास्तविक रूप देख रही हूँ ! तो तुमने क्षमा कर दिया ?”

“हृदय से ! और इसका प्रमाण यह है ।”

यह कह कर डिप्टी साहब ने स्नेह का मुख चूम लिया । स्नेह के मुख पर प्रसन्नता प्रस्फुटित हो आई !

“और मदन तुम ?”

“मैंने भी क्षमा कर दिया स्नेह ! और——और ।” मदन ने एक

क्षण के लिए संकोच किया परन्तु दूसरे ही क्षण उसने स्नेह के माथे को अपने होठों से स्पर्श करके कहा— “उसका प्रमाण यह है।”

स्नेह के दोनों नेत्रकोण से अश्रु के दो बड़े बड़े बूँद ढलक पड़े। उसने एक बार आँख भरके डिप्टी साहब तथा मदन को देखा—एक पति, दूसरा प्रेमिक ! जीवन काल में दोनों अनाहत, दोनों अपेक्षित ! परन्तु इस अन्त समयमें दोनों आहत, दोनों अपेक्षित ! सहसा स्नेह चिल्ला उठी—“यदि मुझे एक बार पुनः अवसर मिलता तो —”।”

उसकी चिल्लाहट सुन कर दोनों नर्स दौड़ पड़ी।

स्नेहकी आँखें पथरामे लगीं। एक नर्स दूसरी से बोली—“डॉक्टर को बुलाओ—जल्दी।”

डिप्टी साहब बोले—“कोई आवश्यकता नहीं। इसे शांतिपूर्वक मरने दो।”

स्नेहलता ने अपने दोनों हाथ इन दोनों की ओर बढ़ाये। डिप्टी साहब ने उसका एक हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया। स्नेह अपना दूसरा हाथ फैला कर बोली—“मदन !” मदन ने उसका दूसरा हाथ अपने हाथों में ले लिया।

एक मिनट तक स्नेह दोनों की ओर ताकती रही। इसके पश्चात् उसका सिर एक ओर ढलक गया हाथ शिथिल पड़ गये और दो-तीन हिचकी के साथ उसकी इहलोकलीला समाप्त हो गई।

डिप्टी साहब तथा मदन दोनों रूमाल से आँखें पोंछते हुए बाहर निकले। राजा साहब यह देखकर कुछ घबराहट के साथ बोले—“क्या बात है ?”

“सब समाप्त हो गया।” डिप्टी साहब ने गद्गद् करण से कहा।

राजा साहब स्तब्ध रह गये। इन्हें आशा थी कि स्नेह इन्हें भी धुलवायगी। वह सोचने लगे कि—“आखिर वह स्नेह के कौन हैं जो वह उन्हें बुलवाती। परन्तु शर्मा जी भी तो उसके कोई नहीं हैं—उन्हें क्यों बुलवाया ?”

डिण्टी साहब की कार भी आ गई थी। डिण्टी साहब राजासाहब से बोले—“मैं तो घर जाता हूँ। मेरे कपड़े रक्त में सने हैं—जाकर स्नान करूँगा।”

“अच्छी बात है। मैं भी कोठी जाता हूँ। सबेरे आऊँगा। शब तो सबेरे उठेगा।”

“हाँ! नौ—दस बजे तक उठ जायगा।”

डिण्टी साहब अपनी कार पर चले और राजा साहब शर्मा जी सहित अपनी कार पर!

अस्पताल के बाहर आकर राजा साहब शर्मा जी से बोले—“जरा थाने होते चले। देखें पुलिस ने क्या किया।”

शर्माजी विषाद पूर्वक बोले—“हाँ! हाँ! चलिये।”

कुछ क्षण मौन रह कर राजा साहब बोले—“समझ में नहीं आता कि स्नेहलता की हत्या क्यों की गई। उसने भी किसी पर सन्देह नहीं किया।”

“हाँ! यह रहस्य मेरी समझ में भी नहीं आ रहा है।” शर्मा जी ने कहा

“जान पड़ता है स्नेह कोई बात छिपा गई।”

“उसकी बातों से तो ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वह कोई बात गोपन रख रही है।”

राजा साहब सन्देहपूर्ण मुद्रा से केवल सिर हिला कर रह गये—कुछ बोले नहीं। उन्हें शर्मा जी की बात कुछ जँची नहीं; परन्तु साथ ही उसका खण्डन करने के लिए उनके पास कोई तर्क नहीं था। इस कारण वह मौन रहे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी भय था कि इस सम्बन्ध में अधिक वार्तालाप करने से कहीं उनके और स्नेहलता के संबंध पर कुछ प्रकाश न पड़ जाय। अतः उन्होंने इस संबंध में अधिक कुछ कहने—सुनने की अपेक्षा मौन रहना ही उचित समझा।

कार थाने पहुँची। राजा साहब को कार से उतरते देख थाने के इन्चार्ज साहब, जो बरामदे में मेज कुर्सी लगाये बैठे थे उठकर खड़े हो गये और उन्होंने कुछ आगे बढ़ कर बड़े आदर पूर्वक राजा साहब से कहा—
‘आइये ! तशरीफ लाइये !’

राजा साहब ने इन्चार्ज साहब से हाथ मिलाया। इन्चार्ज ने उन्हें कुर्सी पर बिठाया—शर्मा जी भी राजा साहब के बगल में दूसरी कुर्सी पर बैठ गये। इन्चार्ज साहब अपनी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—“कहिये ! क्या हालत है ?”

“सब खत्म हो गया।” राजा साहब शोकपूर्ण स्वर में बोले।

“चे—चे—चे ! अफसोस ! बेचारी बेगुनाह मारी गई।”

“कुछ समझ में नहीं आता कि क्यों मारी गई।” राजा साहब ने कहा।

इन्चार्ज साहब किञ्चित मुस्कराये और अपनी खिचड़ी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—“मैं आपको एक खुशखबरी सुनाता हूँ राजा साहब।”

“खुशखबरी।”

“जी ! आपके लिए तो खुशखबरी ही है।”

“क्या ?”

“वह हमला मुसम्मात पर न था, बल्कि आप पर था ! बोंच मे डिप्टी साहब की बीबी आ गई, इसलिए आप बच गये और वह आप पर कुर्बान हो गई।”

राजा साहब नेत्र विस्फारित करके बोले—“ऐं ! मुझ पर !”

शर्माजी भी विस्मित होकर बोले—“राजा साहब पर ?”

“जनाब ! लेकिन बड़े आदमियों पर तो खुदा का साया होता है। उनकी जान लेना मजाक नहीं है।”

“यह आपको कैसे पता लगा ?”

“मुल्जिम ने अपना जुर्म कुबूल कर लिया और सब राज बता दिया।”

“अच्छा ! इतनी जल्दी ?” शर्मा जी ने पूछा ।

“हाँ ! मुलजिम को खुद मुसम्मात के मारे जाने का निहायत अफसोस है । कुछ उस अफसोस की वजह से और कुछ हमारी तरकीब से उसने सब मामला बता दिया ।”

“ मुझ पर हमला करने की वजह ?”

“ कुछ लोगों ने इसे आपका खून करने के लिए मुकर्रर किया था । पाँच हजार पर सौदा तय हुआ था । एक हजार इसे पेशगी दिया गया और चार हजार काम हो जाने के बाद देना तय किया गया था । पहिले तो इम आदमी ने आपकी कोठी में ही आपका खून करने की कोशिश की; लेकिन वहाँ पहरे-चौकी की सख्ती की वजह से इसका दाँव न लगा । तब यह आज डिप्टी साहब के यहाँ आकर लगा रहा । जिस वक्त इसने हमला किया उसी वक्त डिप्टी साहब चिल्ला उठे और आप फौरन ही रुक गये । कातिल का हाथ छुट चुका था लिहाजा आप तो बच गये और मुसम्मात सामने आ गई—इसलिए वह बेचारी मार खा गई ।”

यह सुनकर राजा साहब तथा शर्मा दोनों स्तम्भित रह गये । कुछ क्षण तक हतबुद्ध रहने के पश्चात राजा साहब ने पूछा—“तो अब क्या होगा ?”

“उन आदमियों की गिरफ्तारी का वारन्ट आने ही वाला है । उसके आते ही मैं उनकी गिरफ्तारी के लिए रवाना हो जाऊँगा ।”

“इसी वक्त ?”

“जी ! देर करने से तो उनके फरार हो जाने का अन्देशा है ।”

“लेकिन वह लोग कौन हैं—यह तो बताइये ।”

“राजा साहब मुझे माफ करें—यह मैं अभी नहीं बता सकता ।

“ क्यों ?”

“दीवार के भी कान होते हैं । अगर यह खबर उन तक पहुँच गई तो वे फरार हो जायेंगे ।”

“आपको मुझ पर यकीन नहीं है ?” राजा साहब कुछ आवेश के साथ बोले ।

“आप इतनी जल्दी क्यों करते हैं । अभी सब मालूम हुआ जाता है । आपको भी तो मेरे साथ चलना पड़ेगा ।”

“कहाँ ?”

“उन्हें गिरफ्तार करने में मेरी मदद करने के लिए ।”

“क्या मेरी भी मदद की जरूरत है ?”

“बेशक ! वे आपही के आदमी हैं ।”

“मेरे आदमी !”

“जी हुजूर ।”

राजा साहब शर्मा जी की ओर देखकर बोले—“ऐसे कौन आदमी हो सकते हैं !”

“कहा नहीं जा सकता !”

“तो आप मेरे साथ चलेंगे ?” इन्चार्ज ने पूछा ।

“लेकिन मुझे सवेरे यहाँ आकर.....।”

“मुसम्मात की मिट्टी में शामिल होना है ।” इन्चार्ज साहब राजा का तात्पर्य समझ कर बोले ।

“जी हाँ !”

“तो आप मेरे साथ वापस आ सकते हैं ।”

“मजबूरन यही करना पड़ेगा । आप कितनी देर में चलेंगे ?”

“बस मैं तैयार ही बैठा हूँ ।”

“तो मैं अपनी कोठी चलता हूँ, आप उधर से मुझे ले लीजिएगा ।”

“बहुत अच्छा ! आप बिल्कुल तैयार मिलें ।”

● राजा साहब शर्मा सहित कोठी की ओर चले । रास्ते में राजा साहब ने पूछा—“स्नेहलता ने आपको क्यों बुलाया था ?”

शर्मा जी ने सोचा — ‘राजा साहब पर अपना स्तस्य प्रकट करना

उचित नहीं।' यह सोच कर वह बोले—“छोटी रानी के संबंध में पूछा था कि वह अच्छी तरह हैं।”

राजा साहब इस उत्तर से सन्तुष्ट हो कर बोले—“ज्योत्सना से उसका बड़ा स्नेह हो गया था।”

जी हाँ !”

*

*

*

*

इश्बार्ज साहब राजा साहब तथा शर्मा जी सहित चल दिये। राजा साहब शर्मा जी सहित अपनी कार में थे और इश्बार्ज साहब छः कास्टेबलों सहित एक लारी पर। वहाँ पहुँचते ही इश्बार्ज साहब ने सब से पहिले प्राइवेट सेक्रेटरी दलजीत सिंह को उनके मकान पर ही गिरफ्तार कर लिया। उन्हें कान्स्टेबलों की हिरासत में देकर इश्बार्ज साहब राजा साहब की कोठी पर पहुँचे और राजा साहब से बोले—“चन्द्रशेखर सिंह को बुलवाइये !”

“क्या वह भी है ? राजा साहब ने पूछा।”

“जी सरकार !”

राजा साहब के अश्चर्य की सीमा न रही।

चन्द्रशेखरके गिरफ्तार होने पर बहुत रोया-चिल्लाया। राजा साहब की उसने बड़ी खुशामद की। उधर छोटी रानी ने भी अपने भाई को छुड़वा देने के लिये राजा साहब से प्रार्थना की। अन्त को राजा साहब विवश होकर इश्बार्ज साहब से बोले—“क्या चन्द्रशेखरको आप छोड़ सकते हैं।”

“यह बात मेरे इमकान के बाहर है। मुलजिम के बयान कलमबन्द हो चुके हैं। उस बयान में चन्द्रशेखर का भी नाम है—इसी बिना पर वारन्ट गिरफ्तारी निकला है।”

“कोई तरकीब निकालिये !” राजा साहब आप्रहपूर्वक बोले।

इश्बार्ज साहब कुछ क्षण सोचकर बोले—“सिर्फ यह तरकीब हो सकती है कि मैं इसे गिरफ्तार न करके रिपोर्ट दे दूँ कि चन्द्रशेखर फरार हो गया। लेकिन इन्हे छिप कर रहना पड़ेगा; क्यों कि वारन्ट गिरफ्तारी तो जारी ही रहेगा।”

“इस वक्त आप इसे छोड़ दें फिर चाहे यह जहन्नुम में जाय हमारी बला से।”

इश्मार्ज ने चन्द्रशेखर को छोड़ दिया। चन्द्रशेखर उसी रातको वहाँ से चला गया। चलते समय उसने ज्योत्सना से भेंट करना चाही; परन्तु उसने कहला दिया कि ‘वह ऐसे पापी भाई का मुँह भी नहीं देखना चाहती।’

उपर्युक्त घटना के चौथे दिन शर्मा जी ने अपना त्याग पत्र लिख कर राजा साहब के सन्मुख उपस्थित किया। राजा साहब त्याग पत्र देख कर बोले—“यह क्या शर्माजी! आप इस्तीफा क्यों दे रहे हैं?”

शर्मा जी बोले—बात यह है श्रीमान् कि अब मेरा चित्त उचाट हो गया।”

“क्यों?”

शर्मा जी मौन रहे।

राजा साहब बोले—“अब जब कि आपके लिए यहाँ क्षेत्र तैयार हुआ है तब आप जा रहे हैं। देखिये शर्मा जी, मैं अपने प्राण बचने में आपको निमित्त मानता हूँ। यदि आप हत्यारे को पकड़ न लेते तो वह साफ निकल जाता। उस दशा में हम लोग इसी भ्रम में रहते कि स्नेहलता पर ही आक्रमण किया गया। अतः षडयन्त्रकारियों को पुनः मेरी हत्या करने का अवसर मिलता और अपने इस दूसरे प्रयत्न में वे अवश्य सफल हो जाते। हत्याकारी के पकड़ जाने से यह सम्भावना जाती रही। अब दलजीत सिंह गिरफ्तार हो गया है। मुझे प्राइवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप यह पद स्वीकार कर लें।

“मुझे विचार करने का अवसर दीजिए।”

“हाँ! हाँ! विचार कर लीजिए।”

शर्मा जी ने मिश्रीलाल तथा त्रिवेदी जी से परामर्श किया।

उन्होंने पद स्वीकार कर लेने की सलाह दी। त्रिवेदी जी बोले—“इससे आपका तथा राज साहब दोनों का हित होगा।”

शर्मा जी ने कहा—“अच्छी बात है। यदि आप लोगों की सलाह है तो स्वीकार कर लूँगा।”

त्रिवेदी जी के यहाँ से लौटते हुए रास्ते में मिश्रीलाल ने कहा—“स्वामी जी तो उत्तराखण्ड चले गये, आपने सुना ही होगा।”

“नहीं ! यह कब ?”

“कल समाचार आया है।” इस प्रकार अब बिल्कुल मैदान साफ हो गया।

“यह आपने बड़ा शुभ समाचार सुनाया।” शर्मा जी ने प्रसन्न होकर कहा।

* * * *

शर्मा जी ने त्यागपत्र वापस लेकर पद स्वीकार कर लिया।

अब शर्मा जी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनका अनिश्चित जीवन अपना निश्चित मार्ग पा गया। समुद्र में तूफान से युद्ध करने के पश्चात् जब नाविक तट पा जाता है तब जैसा जैन और सुख उसे प्राप्त होता है वैसा ही शर्मा जी ने भी अनुभव किया।

शर्मा जी ने अपने पद तथा अधिकारों का पूर्ण सदुपयोग किया। थोड़े दिनों में ही राजा साहब ने राज्य का शासन सूत्र एक प्रकार से शर्मा जी को ही सौंप दिया। राजा साहब में भी बहुत कुछ सुधार हो गया। लम्पटता से तो उन्हें विराग हो ही गया साथ ही उनका मदिरापान भी बहुत कम तथा सीमित हो गया।

शर्मा जी की प्रेरणामे राज्य में भी बहुत कुछ सुधार हुए। किसानों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी गईं। उनके लिए अस्पताल तथा पाठशालाएँ खोली गईं। आधुनिक ढङ्ग से खेतीबारी करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता दी गई।

अब उक्त राज्य एक बहुत उन्नतिशील राज्य है और राजासाहब के पश्चात् शर्मा जी ही राज्य के प्रमुख अधिकारी हैं।

शर्मा जी सुखी हैं, परन्तु कभी कभी ~~स्नेहिल~~ की स्मृति उन्हें कुछ क्षण के लिए विचलित कर देती है।

* समाप्त *

